इस्लाम की गोद में

(एक नव-मुस्लिम की इस्लाम लाने की कहानी)

लेखक

मुहम्मद असद (पूर्व ल्युपोल्ड)

अनुवादक

डा० कौसर यज़दानी नदवी

प्राक्कथन

'इस्लाम की गोद में' एक नव-मुस्लिम के इस्लाम लाने की कहानी है, जो आपके हाथ में है।

ल्युपोल्ड यहूदी परिवार में जन्मा, पला, बढ़ा, पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगा, जवानी को पहुंचा। वह एक जागरूक व्यक्ति था, सीने में धड़कता दिल रखता था, उसकी आंखें खुली हुई थीं। उसने महसूस किया उसे शान्ति नहीं है, कुछ बुझा-बुझा-सा रहता है। यहूदी धर्म उसे शान्ति न दे सका, ईसाई मत उसकी प्यास न बुझा सका, 'लाउत्सी' दर्शन उसे सन्तुष्ट न कर सका, पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक और रंगा-रंगी में भी उसे शान्ति न मिली।

वह व्याकुल था, बहुत व्याकुल।

फिर उसे मध्य पूर्व की यात्रा का अवसर मिला। वह बहुत-से देशों में घूमा-फिरा। पूरब की स्वाभाविक संस्कृति देखी, सादी सभ्यता देखी, चेहरों पर शान्ति की झलक देखी, पूरब के रहने वालों से मिला, विचारों का लेन-देन हुआ, ख़ूब सोचा-समझा, हर पहलू से जांचा-परखा और अन्त में इस्लाम की गोद में आ गिरा; वह इस्लाम जिसमें अध्यात्म और भौतिकता का बेहतरीन मेल है; वह इस्लाम जिसने इसी संसार में रहकर, और उसका उपभोग कर मानव-जीवन को ईश्वर के आज्ञापालन के मार्ग पर लगाया; वह इस्लाम, जिसकी व्यवस्था पूरे जीवन पर छायी हुई है और जिसके आधीन व्यक्ति, समाज और राज्य तीनों आ जाते हैं।

ल्युपोल्ड उसी इस्लाम की गोद में आ गिरा।

ल्युपोल्ड ने इस्लाम की बुनियादी तालीम समझी, एक ईश्वर में उसकी आस्था दृढ़ हुई, उसने उसे दयालु व कृपालु पालनहार ही नहीं

समझा, बल्कि जीवन-मृत्यु का अधिकारी, शासक और सम्प्रभु भी समझा, उसने उसी एक ईश्वर की भक्ति व आज्ञापालन को अपना जीवन-ध्येय बनाया।

उसने अपने मन व मस्तिष्क में यह बात पूरी तरह बिठा ली कि मरने के बाद उसे अपने कर्मों का उस न्यायी शासक के आगे जवाब भी देना है। जो अच्छे कर्म करेंगे वही सफल होंगे और जिन्होंने अच्छे कर्म नहीं किये होंगे, वे सफल नहीं हो सकते।

उसने यह भी अनुभव किया कि अच्छे-बुरे कर्मों का व्यावहारिक आदर्श पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का चरित्र व आचरण ही है। सन्मार्ग पाने के लिए आप ही का अनुपालन होना चाहिए। इसी से ख़ुदा भी ख़ुश होता है।

उसने पश्चिमी संस्कृति व सभ्यता का गहरा अध्ययन किया था, उसे उसका खोखलापन मालूम था, उसने दूसरे धर्मों को भी समझने की कोशिश की थी, उसे कहीं सन्तोष न मिला था, पर इस्लाम ने उसे सुख व आनन्द दिया, उमंग व हौसला दिया, अडिग विश्वास दिया, ईश-प्रसन्नता प्राप्त करने की विधि बताई, जीवन सफल बनाने की पद्धति से अवगत कराया, इबादत का स्वाभाविक तरीक़ा बताया, जीवन के एक-एक भाग में रहनुमाई की।

फिर वह इस्लामी संस्कृति व सभ्यता के रंग में रंगता चला गया। अब उसका मन व मस्तिष्क बदल गया था। उसके जीवन में एक क्रान्ति आ चुकी थी, एक अनोखी क्रान्ति। पुराना ल्युपोल्ड मर गया था नया ल्युपोल्ड जन्म ले चुका था।

यह नव-मुस्लिम ल्युपोल्ड अब मुहम्मद असद था। उसे शान्ति मिल चुकी थी, उसकी प्यास बुझ चुकी थी और उसके लिए 'मुक्ति-द्वार' खुल चुका था।

उसी मुहम्मद असद की कहानी 'इस्लाम की गोद में' आपके हाथ में है।

यह कहानी स्वयं उसकी अपनी लिखी हुई है। अंग्रेज़ी में रचित पुस्तक का नाम The Road to Mecca है, जिसका उर्दू रूपान्तर व सार 'तूफ़ान से साहिल तक' के नाम से 'मज्लिसे तहक़ीक़ात व नशरियात, लखनऊ' ने प्रकाशित किया। उर्दू संस्करण के रूपान्तरकार हैं मौलाना मुहम्मदुल हसनी, सम्पादक 'अल-बअसुल इस्लामी'। 'इस्लाम की गोद में' इसी उर्दू संस्करण का हिन्दी रूपान्तर है जिसमें कुछ संशोधन करके प्रकाशित किया जा रहा है।

हम मौलाना सैयद अबुलहसन अली नदवी के आभारी हैं कि हमें प्रकाशन-आज्ञा प्रदान कर इस्लामी शिक्षाओं को कहानी-रूप में प्रकाशित करने का सुअवसर प्रदान किया।

हम अपने विद्वान पाठकों से निवेदन करेंगे कि इसमें अगर उन्हें कुछ त्रुटियाँ मिलें तो वे हमें उनसे अवगत अवश्य करायें। आभारी होंगे।

इससे पूर्व यह पुस्तक 'और आत्मा जाग उठी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है।

डॉ० कौसर यज़दानी नदवी

विषय सूची

क्रम

एक कहानी की कहानी

इस पुस्तक में जो कहानी मैं कहने जा रहा हूं वह वास्तव में किसी ऐसे व्यक्ति की कहानी नहीं है जिसने जन-साधारण में अपने कारनामों से एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया हो; यह कोई युद्धों की कहानी भी नहीं है क्योंकि अपने जीवन में यद्यपि मुझे अनेकों लड़ाइयों का सामना करना पड़ा है, पर इन लड़ाइयों का महत्व मेरे नज़दीक इससे अधिक नहीं कि ये वाहय रूप से उस क्रान्तिपूर्ण स्थिति का साथ देती रही हैं, जिनका मुझे सामना करना पड़ रहा था और न यह ईमान की खोज ही की कोई कहानी है जो इरादा करके की गई हो, क्योंकि ईमान तो मुझे धीरे-धीरे स्वयं ही, बिना किसी परिश्रम के, मिल गया। मेरी कहानी वास्तव में कहानी है एक अंग्रेज़ के इस्लाम धर्म को पा लेने और फिर इस्लामी समुदाय में गुम हो जाने की।

इस कहानी के लिखने का मेरा कोई इरादा नहीं था, क्योंकि मैंने ऐसा कभी सोचा ही नहीं था कि मेरा अपना जीवन मेरे अलावा किसी और के लिए भी कोई आकर्षण रखता है। पर पश्चिमी जगत से कम-व-बेश बीस साल की अनुपस्थिति के बाद जब मैं १९५२ के आरम्भ में पहले पेरिस और उसके बाद न्यूयार्क आया तो मुझे अपना विचार बदलना पड़ा। मैं तब संयुक्त राष्ट्र-संघ में पाकिस्तान सरकार के साधिकारिक मंत्री के रूप में पद-भार संभाले हुये था। उन दिनों स्वभावतः मैं जन-साधारण के ध्यान का केन्द्र और अपने यूरोपीय और अमरीकी मित्रों और परिचितों की खोज का विषय

बना रहा। शुरू-शुरू में उनका यह विचार था कि मुझे एक यूरोपीय विशेषज्ञ के रूप में किसी पूर्वी राज्य ने एक विशेष उद्देश्य के लिए सेवा में ले लिया है और मैंने केवल आसानी के विचार से उस पूर्वी राष्ट्र का रहन-सहन अपना रखा है। पर राष्ट्र संघ में मेरी दौड़-धूप ने जब उन पर यह बात स्पष्ट कर दी कि मैंने अपने को न केवल पदाधिकारी के रूप में, बल्कि मानसिक व भावनात्मक रूप से भी इस्लामी जगत के राजनीतिक व सांस्कृतिक उद्देश्यों से समरस कर लिया है, तो उन्हें थोड़ी-सी उलझन महसूस हुई। अब मुझ से मेरे बीते हुये अनुभवों के बारे में प्रश्न होने लगे और प्रश्न करने वालों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती गई। बहरहाल उन्हें यह जल्द ही मालूम हो गया कि मैंने बहुत ही कम उम्र में महाद्वीपीय पत्रों के विदेश-संवाददाता के रूप में अपने जीवन का आरम्भ किया। सम्पूर्ण मध्य-पूर्व के क्षेत्र में वर्षों घूमा-फिरा। अन्ततः सन् १९२६ में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। धर्म-परिवर्तन के बाद भी लगभग छः वर्ष अरब में ठहरा रहा। वहां सुलतान इब्ने सऊद का सान्निध्य प्राप्त हुआ। फिर अरब को छोड़कर मैं भारत आया। वहां महान मुस्लिम विचारक व कवि मुहम्मद इक़बाल से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जब सन् १९४७ में पाकिस्तान बना तो पाकिस्तान की ओर से एक नया विभाग "इस्लामी नव-निर्माण" का खोला गया। उसके संगठन व संरक्षण' के पद पर मेरी नियुक्ति हुई, इस का उद्देश्य था राज्य और समुदाय के बारे में इस्लामी उच्चस्तरीय धारणा का विस्तृत विवेचन व व्याख्या, ऐसी व्याख्या कि यह नवोदित राष्ट्र लाभ उठा सके। इस सम्बन्ध में मैंने दो वर्ष की बड़ी हलचलपूर्ण कोशिशें कीं। फिर मुझे पाकिस्तान के विदेशी मामलों के विभाग में भेज दिया गया और मेरी नियुक्ति वहां मध्यपूर्व के उच्च अधिकारी

के रूप में हो गई। अतएव पाकिस्तान और दूसरे इस्लामी देशों के आपसी संबंधों को मज़बूत बनाने के लिए स्वयं को मैंने पूरी तरह लगा दिया। और अन्ततः संयुक्त राष्ट्र के लिए न्यूयार्क में मुझे पाकिस्तानी प्रतिनिधिमंडल और उसकी कार्यवाहियों से सम्बन्धित कर दिया गया।

इन सारी घटनाओं से इतना-भर ही नहीं मालूम हुआ कि इस्लामी समुदाय ने एक यूरोपीय को अपनी गोद में बिठा लिया और उस समुदाय के व्यक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से एक व्यक्ति और बढ़ा, बल्कि यह बात भी मालूम हुई कि उस व्यक्ति ने सोच-समझकर और स्वयं को एक विशेष सांस्कृतिक वातावरण से हटा कर अपने मन की गहराइयों के साथ दूसरे बिल्कुल ही भिन्न वातावरण में घुला-मिला लिया। यह एक ऐसी सच्चाई थी जिसने मेरे बहुत-से पश्चिमी मित्रों को चकित कर रखा था। उन की समझ में यह बात नहीं आती थी कि एक व्यक्ति जिस का जन्म और जिसका पालन-पोषण पूर्ण रूप से पश्चिमी वातावरण में हुआ था, वह किस प्रकार इस चाव और इस मुस्तैदी के साथ, बिना किसी आन्तरिक संघर्ष के, स्वयं को इस्लामी जगत के सुपुर्द कर सका। उसके लिए कैसे सम्भव हो सका कि अपनी उस सांस्कृतिक विरासत को, जो उसे पश्चिम से मिली थी उसने इस्लामी संस्कृति से बदल दिया और आख़िर वह क्या बात थी जिसने उसे एक ऐसा धार्मिक और सामाजिक उद्देश्य अपनाने पर मजबूर किया जो उन पश्चिमवासियों की नज़र में यूरोपीय मान्यताओं व विश्वासों के मुक़ाबले में कहीं तुच्छ और निम्न श्रेणी का है।

मैं अपनी जगह पर सोचने लगा कि आख़िर हमारे पश्चिमी मित्र ऐसा क्यों सोच लेते हैं कि इस्लामी मान्यताएं पश्चिमी मान्यताओं से हीन श्रेणी की हैं। क्या इन में से किसी ने कभी इस्लाम

और उसकी आत्मा से स्वयं परिचित होने का कष्ट किया है या उन्होंने इस्लाम के बारे में अपनी रायें मात्र उन घिसे-पिटे वाक्यों और विकृत धारणाओं पर क़ायम की हैं जो अगली नस्लों से लगातार उन्हें मिलती आ रही हैं? क्या ऐसा संभव नहीं है कि वह यूनानी-रूसी चिन्तन-पद्धति, जिस ने संसार को इस प्रकार दो भागों में बांट रखा था कि एक भाग की नुमाइन्दगी यूनानी और रूमी करते थे और शेष भाग बर्बर व असभ्य जातियों का संसार कहा जाता था, अब भी पश्चिमवासियों के मस्तिष्क में इस मज़बूती से घर बनाये हुये है कि वे सिद्धान्त रूप में भी, संसार की किसी भी वस्तु को, जो उन के अपने सांस्कृतिक क्षेत्र के बाहर हो, कोई मूल्य देने को तैयार नहीं हैं।

रूसी, बल्कि यूनानी युग से ही यूरोपीय इतिहासकार व विचारक, विश्व-इतिहास पर मात्र यूरोपीय इतिहास और पश्चिम के सांस्कृतिक अनुभवों के दृष्टिकोण से ही विचार करते रहने के आदी रहे हैं। ग़ैर पश्चिमी सभ्यतायें इन पश्चिम वासियों के नज़दीक उसी समय कोई अर्थ रखती हैं जबकि उन के भीतर के कार्यशील तत्त्व पश्चिम की किसी मान्यता पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाल रहे हों। अतएव पश्चिमवासियों की दृष्टि में संसार का इतिहास, और संसार की विभिन्न संस्कृतियां परिणामस्वरूप पश्चिम सभ्यता के विस्तार से अधिक महत्त्व नहीं रखतीं।

स्पष्ट है कि दृष्टिकोण की यह संकीर्णता एक ग़लत चित्र और एक अधूरे दृश्य के अलावा और क्या सामने ला सकती है। चूंकि वे ऐसी पुस्तकों के पढ़ने के शुरू से आदी रहे हैं, जो उन की अपनी सभ्यता की समस्याओं को बड़े विस्तार से सामने लाती हैं और उनकी संस्कृति को बड़े शीर्षकों से और पूरी व्याख्या के साथ प्रस्तुत करती आई हैं और शेष जगत पर कहीं-कहीं मात्र विहंगम दृष्टि

डाल लेती हैं, इसलिए स्वभावतः एक साधारण यूरोपीय या अमरीकी इस भ्रम में आसानी से पड़ जाता है कि पश्चिम के सांस्कृतिक अनुभव शेष जगत से न केवल श्रेष्ठ बल्कि व्यापक भी हैं और इसलिए उनके निकट पश्चिमी जीवन-सिद्धान्त ही उचित रूप से वह स्तर जुटाने का हक़दार है जिस पर संसार के दूसरे जीवन-सिद्धान्त तोले जा सकते हैं अर्थात् दूसरे शब्दों में जो शास्त्रीय सिद्धान्त, सांस्कृतिक मूल्य या नैतिक मानदन्ड पश्चिम के स्तर पर पूरा नहीं उतरता है, निश्चय ही उनका स्थान निम्न होगा।

यूनानी और रूमी चिन्तन पद्धति का पालन करते हुये एक पश्चिमी स्वभावतः ऐसा सोचने लगता है कि दूसरी तमाम सभ्यतायें, प्रगति के उस मार्ग में, जिसे पश्चिमवासियों ने बड़ी सफलता के साथ तै कर लिया है, एक अधूरे और रुकावट पैदा करने वाले अनुभव से अधिक मूल्य नहीं रखती हैं, या अधिक से अधिक इन सभ्यताओं को वह वही स्थान देने के लिए तैयार होता है जो नस्ली एतबार से वर्तमान पश्चिमी सभ्यता के मुक़ाबले में उसके पहले की सभ्यताओं को प्राप्त है, अर्थात् हमारी जीवन पुस्तक में संसार की दूसरी तमाम सभ्यताएं एक-एक करके विभिन्न अध्यायों की तरह हैं जो अन्तिम अध्याय पर ख़त्म होती हैं और इस अन्तिम अध्याय की नुमाइन्दगी पश्चिमी सभ्यता करती है।

मैंने जब इस दृष्टिकोण को अपने एक अमरीकी मित्र के सामने रखा, जो एक विद्वान व विचारक हैं तो शुरू में वे कुछ सन्देह व भ्रम में पड़ गये। उन्होंने कहा कि मैं माने लेता हूं कि यूनानियों और रूमियों ने दूसरी सभ्यताओं को एक अपूर्ण दृष्टिकोण से देखा है, पर क्या यह सही नहीं है कि इस अधूरेपन और कमी का कारण आने-जाने की वे कठिनाइयां हैं जो उनके और संसार के दूसरे भागों के बीच रुकावट बनी रही हैं और क्या यह सच नहीं हैं कि वे

कठिनाइयां आज बड़ी हद तक ख़त्म हो चुकी हैं। बहरहाल हमारे सांस्कृतिक क्षेत्र के बाहर जो कुछ हो रहा है उससे हम आज ज़रूर दिलचस्पी रखते हैं। क्या आप उस सच्चाई को भूल नहीं रहे हैं कि पिछली चौथाई सदी के भीतर अनेकों पुस्तकें पूर्वी चिन्तन व कला पर यूरोप और अमरीका में लिखी जा चुकी हैं, और छप चुकी हैं, अलावा उन पुस्तकों के जिनसे पता चलता है कि आज के राजनीतिक दृष्टिकोण पूर्वी राष्ट्रों के मस्तिष्क को किस ढंग से सोचने पर मजबूर कर रहे हैं। निश्चय ही आज उस इच्छा को त्यागा नहीं जा सकता है जो हर पश्चिमी के मन में यह जानने के लिए मौजूद है कि दूसरी सभ्यताओं से क्या कुछ सीखा और प्राप्त किया जा सकता है।

मैंने उत्तर में कहा कि जो कुछ आप कहते हैं, हो सकता है कि वह किसी हद तक सही हो और इसमें सन्देह भी नहीं कि यूनान व रूम का आरम्भिक दृष्टिकोण इस समय अपनी पहले जैसी तेज़ी खो चुका है, उसकी कठोरता बड़ी हद तक ग़ायब हो चुकी है और यह सब कुछ इसलिए है कि पश्चिमी विचारकों का गम्भीर स्वभाव वाला वर्ग अपनी संस्कृति व सभ्यता के अनेकों पहलुओं की ओर से सन्देह और निराशा की दशा को पहुंच चुका है और अब वह एक शुद्ध संस्कृति के निर्माण के लिए दूसरे भागों से ज्योति प्राप्त करना चाहता है। इनमें कुछ पर यह सत्य धीरे-धीरे खुल रहा है कि मनुष्य की प्रगति की एक से अधिक कहानियां और एक से अधिक पुस्तकें हो सकती हैं, मुख्य रूप से इस स्थिति में कि मानव-जाति ऐतिहासिक अर्थ में 'एक' नहीं है, बल्कि वह विभिन्न विचार वाले गिरोहों का एक योग है, फिर भी मेरे नज़दीक दूसरी सभ्यताओं के बारे में पश्चिम का रवैया यूनानियों और रूमियों के रवैये के मुक़ाबले में किसी भी प्रकार कम हीनतापूर्ण नहीं है। हां, आप यह कह सकते हैं कि उदारता अधिक आ गई है, पर याद रहे कि यह

उदारता इस्लाम के लिए नहीं, बल्कि उन दूसरी पूर्वी सभ्यताओं के लिए है, जो आत्मविहीन पश्चिमवासियों के लिए मात्र आध्यात्मिक आत्मरुचि व मनोविहार की सामग्री जुटाती हैं, जो इतनी ढीली-ढाली और पश्चिम के 'व्यापक' दृष्टिकोण से इतनी दूर हैं कि उनकी ओर से पश्चिमी मानदण्डों को मुक़ाबला और संघर्ष की कोई आशंका पैदा नहीं हो सकती।

"आप क्या कहना चाहते हैं?" मेरे मित्र ने झुंझलाकर पूछा।

मैंने गम्भीर होकर कहा, यहां जिस समय एक पश्चिमवासी हिन्दू धर्म या बौद्ध मत की बात करता है तो उसके मन में सदैव यह बात रहती है कि मेरे और उनके दृष्टिकोणों में मौलिक अन्तर है। यह भी सम्भव है कि वह उनके विचारों की कहीं-कहीं सराहना भी कर दे, पर यह असम्भव है कि वह इन पर कभी इस दृष्टिकोण से भी विचार करे कि इनकी धारणायें उसकी अपनी धारणाओं का अच्छा बदल भी हो सकती हैं। चूंकि वह यह कल्पना करके चलता है कि इन दूसरी सभ्यताओं में पश्चिम की वर्तमान सभ्यता का स्थान लेने की क्षमता मौजूद ही नहीं है, इसलिए वह इन पर बड़ी सन्तोषभरी दृष्टि डालता है और इनकी ओर उसका रवैया प्रायः सौहार्दपूर्ण रहा करता है, पर जहां मामला इस्लाम का आया उसी समय वह अपना धैर्य व सन्तुलन खो बैठता है, और वह एक भावनात्मक संकीर्णता का शिकार हो जाता है। कभी-कभी मैं सोचने लगता हूं कि ऐसा इसलिए तो नहीं है कि पश्चिमी मानदण्डों से श्रेष्ठ होने के कारण इस्लामी मानदण्ड अपने भीतर पश्चिम के आध्यात्मिक व सामाजिक सिद्धान्तों से मुक़ाबले व संघर्ष की पूरी-पूरी शक्ति व क्षमता रखते हैं।

अतएव मैंने अपने मित्र के सामने अपना एक दृष्टिकोण रखा जिसे मेरे मस्तिष्क ने कुछ साल पहले अनुभव किया था, जो शायद

इस्लाम के साथ उस कठोर पक्षपात का समुचित कारण बता सके, जो पश्चिमी साहित्य और पश्चिमी दृष्टिकोण द्वारा प्रदर्शित किया जाता रहता है।

मैंने कहा कि इस पक्षपात का उचित कारण जानने के लिए पुराने इतिहास के पन्ने उलटने होंगे, इस्लाम और पश्चिम के दो भिन्न-भिन्न संसारों के आरम्भिक संबंधों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझने की ज़रूरत होगी। इस्लाम के बारे में पश्चिमवासियों के विचारों व उद्गारों का पता उन चिन्हों से चलेगा जो धर्म युद्धों के समय में उभर आये थे।

"धर्मयुद्ध! क्या आप यह कहना चाहते हैं कि लगभग एक हज़ार वर्ष पीछे की घटनाएं आज बीसवीं शताब्दी के मुनष्यों को प्रभावित कर सकती हैं?" मेरे मित्र ने चौंककर कहा।

"मैंने उत्तर दिया, अवश्य कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि यह बात अकल्पनीय जान पड़ती है, पर क्या आप भूल गये कि मनोविज्ञान के विशेषज्ञों की आरम्भिक खोज के साथ शुरू में कैसी उदासीनता और अविश्वास दर्साया गया था, जबकि उस खोज ने हमारे सामने यह रहस्योद्घाटन किया था कि एक व्यस्क व्यक्ति के भावनात्मक जीवन के अधिकांश उत्प्रेरक तत्व, जिन्हें हम 'स्वभाव' और 'तबीयत' कहकर आगे बढ़ जाते हैं, उस व्यक्ति के लड़कपन में अर्थात् उस के जीवन के रचनात्मक युग में मिलते हैं? फिर क्या राष्ट्र और सभ्यताएं व्यक्तियों ही का योग नहीं हैं? इनका निर्माण व विकास भी इनके आरम्भिक युगों के अनुभवों से संबद्ध है। बच्चों ही की तरह गिरोहों और राष्ट्रों के ये आरम्भिक अनुभव प्रिय या अप्रिय हो सकते हैं। हो सकता है कि उनका कोई औचित्य हो और यह भी हो सकता है कि बच्चों जैसे कच्चे विचारों और बेसोचे कार्यों के कारण उनका कोई औचित्य न हो। धर्मयुद्धों

के पहले की शताब्दी अर्थात् ईसवी साल के आरम्भिक हज़ार वर्षीय युग के उस भाग के बारे में सही तौर पर कहा जा सकता है कि वह पश्चिमी सभ्यता का बचपन था।

मैंने अपने मित्र को, जो स्वयं एक इतिहासकार है, याद दिलाया कि यह वह युग था जबकि सभी साम्राज्य के ख़ात्मे पर "अन्धकारमय शताब्दियों" के बीतने के बाद, पहली बार यूरोप ने स्वयं अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर विचार करना शुरू किया। लगभग भुलायी गई इस सभी विरासत से हटकर यूरोप स्वयं अपनी भाषाओं में एक नया साहित्य जन्म दे रहा था। ललित कलायें धीरे-धीरे उस नींद से जाग रही थीं जो अलमानियों और दूसरी यूरेशियायी असभ्य जातियों के कारण बुरी तरह छा गयी थी। मध्ययुगीन भोंडे और भद्दे तौर-तरीकों से संस्कृति व सभ्यता की एक नई दुनिया बसाई जा रही थी। यही वह नाज़ुक घड़ी और निर्माण व विकास की दृष्टि से भावुकतापूर्ण युग था, जबकि धर्म-युद्धों के रूप में यूरोप को कठोर आघात लगा जिसको आज की भाषा में "चरका" कहना अधिक उपयुक्त होगा।

एक ऐसी सभ्यता के लिए जो अभी-अभी स्वाभिमान का अनुभव कर रही थी, इन धर्म-युद्धों का होना एक कटु स्थिति को जन्म देता था। परिणामस्वरूप पूरा समाज 'एकता' की कोशिशों में लग गया। इन धर्म-युद्धों ने पूरे यूरोप में एक नया हौसला भर दिया। पूरे महाद्वीप में एक जोश, एक उमंग पैदा हो गई, यहां तक कि पहली बार प्रान्तीय, वर्गीय व साम्प्रदायिक दीवारें टूटने लगीं। इससे पहले तो यूरोप अगणित टुकड़ों में बंटा हुआ था। अलमानी, ट्युटानी, बरगंडी, सिसलिवी, लोमबार्डियन, सेक्सन, फ्रेंक, तारतन, तात्पर्य यह कि नस्ल व जाति का एक विचित्र योग था, जिनमें कठिनाई ही से एकता का कोई आधार मिल सकता था। जागीरदारी

के आधार पर बने ये राज्य व देश, अधिकतर रूमी साम्राज्य की बची-खुची यादगार ही थे। हां, इनमें एक चीज 'मिली-जुली' थी, वह यह कि ये सब के सब ईसाई मत के मानने वाले थे। धर्म-युद्धों ने इसी 'एका' को वह मोड़ दिया कि पूरे यूरोप को 'संयुक्त लक्ष्य' मिल गया अर्थात् ईसाई मत की अर्ध-राजनीतिक और अर्ध-धार्मिक धारणा, जिसने अंततः यूरोप के सांस्कृतिक दृष्टिकोण की रचना की। जब नवम्बर १०९५ ई. में पापा अरबन द्वितीय (PAPA URBADN II) ने कलरमोण्ट (Clermont) के स्थान पर अपने विश्व प्रसिद्ध भाषण में ईसाईयों को उस 'दुष्ट जाति' से संघर्षरत होने के लिए ललकारा था, जिसने 'पवित्र भूमि' पर कब्जा कर लिया था, तो उस समय उन्होंने वस्तुतः अनजाने में पश्चिमी सभ्यता की दस्तावेज (Charter) ही का एलान किया था और उसका सिद्धान्त प्रस्तुत किया था।

'धर्म-युद्धों' के इन घावों ने ही यूरोप को सांस्कृतिक चेतना दी और एकता की राह पर लगाया, पर उसी के साथ-साथ यह भी तै हो गया कि भविष्य में जब भी किसी पश्चिमवासी के सामने इस्लाम पेश किया जाये तो ये कटु अनुभव इस धर्म को अपने मूल रूप में न सामने आने दें।

इसका कारण मात्र इतना ही नहीं था कि धर्म-युद्धों ने कत्ल व खून और लूट-मार का बाज़ार गर्म किया था। व्यक्तियों के बीच न जाने कितनी लड़ाइयां और रक्तपात पहले भी हुए हैं और फिर समय बीतने के साथ-साथ इन्हें भुला दिया गया है; कितने ही झगड़े और बैर-भाव पैदा हुए हैं, जिनके बारे में समझा जाता था कि वे कभी न मिट सकेंगे, पर अन्त में मैत्री-भाव में बदल गये।

बल्कि 'धर्म-युद्धों' ने जो प्रभाव डाला, वह युद्ध-शस्त्रों के आपसी टकराव तक सीमित नहीं था, बल्कि वह एक मानसिक क्षति

थी, इस प्रकार कि इस्लामी शिक्षाओं और धारणाओं को जान-बूझकर, तोड़-मरोड़कर पेश किया गया और इस्लामी जगत के बारे में ग़लतफ़हमियां फैलाई गईं। खुली हुई बात है कि धर्म-युद्धों को सही साबित करने के लिये कोई दलील नहीं लाई जा सकती थी, अलावा इसके कि पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को ख़ामख़ा ही हज़रत ईसा अलै० का विरोधी और शत्रु कहा जाये और इस्लाम को अति घिनौने रूप में पेश करके उसको दुराचार और दुश्चरित्र का उद्गम बता दिया जाये। इन्हीं 'धर्म-युद्धों' ही के समय में इस हास्यास्पद विचार ने पश्चिम में जड़ पकड़ी कि इस्लाम बर्बरता की शिक्षा देता है और बजाय मन की शुद्धि के कुछ रस्मों के अदा करने पर ज़ोर देता है और यह उसी समय का लज्जास्पद पहलू है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के नाम को— वही मुहम्मद जिन्होंने अपने अनुयायियों को दूसरे धर्मों के नबियों का आदर करना सिखाया— जलील व रुसवा करने के लिए यूरोपवासियों ने "माहाउन्ड" कर दिया (जिसके सांकेतिक अर्थ न बताये जायें, तभी बेहतर है। —अनुवादक)

वह युग यूरोप में बहुत दूर था जब स्वतन्त्र होकर खोज और शोध कार्य करने की भावना पैदा हो, अतएव सत्ताधारियों के लिए यह बात बड़ी आसान थी कि उस संस्कृति व सभ्यता के विरुद्ध घृणा के बीज बो दिये जाये जो उनकी अपनी संस्कृति व सभ्यता से भिन्न हों। इसीलिए तो वह प्रसिद्ध उत्तेजनापूर्ण कविता CHANSON DE ROLAND, जिसमें दक्षिणी फ्रांस में 'मुस्लिम बर्बरों पर ईसाई मत की काल्पनिक विजय व सफलता की कहानी गढ़ी गयी है, तीन शताब्दियों के बाद प्रकाशित होते ही पूरे यूरोप का 'राष्ट्रीय गान' बन गयी। यहां तक कि इस 'वीर-रस-काव्य' पर पूरे साहित्य की नींव पड़ी जो पिछले स्थानीय साहित्यों से एक भिन्न और श्रेष्ठ

स्थान रखती है, इसलिए कि इस्लाम-शत्रुता यूरोपीय सभ्यता की घुट्टी में पड़ चुकी थी।

इतिहास का यह भी एक बड़ा उपहास है कि इस्लाम से पश्चिमवासियों का पुराना द्वेष धर्म के रास्ते से पैदा हुआ और अब जब कि बड़ी हद तक उनके मत, और विचार धर्म की पकड़ से आज़ाद हो चुके हैं, वह विद्वेष-भाव अब भी अनजाने रूप से बाक़ी है। बहरहाल यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह बात अनुभव में आ चुकी है कि एक व्यक्ति अपने धर्म-विश्वासों को, जो उसने अपने लड़कपन में सीखे थे, बिल्कुल ही छोड़ बैठता है, पर इन विश्वासों से संबंधित कोई विशिष्ट भावना अनजाने रूप में उसके पूरे जीवन में बाक़ी रहती है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि यही घटना उस सामूहिक व्यक्तित्व के साथ घटित हुई जिसका नाम 'पश्चिमी सभ्यता' है। झूठ न होगा, अगर यह कहा जाये कि आज भी पश्चिम के सिर पर धर्म-युद्धों की परछाईं मौजूद है और आज भी इस्लाम और मुसलमान के प्रति उसके जो विचार व उद्गार हैं, उनमें इसी के स्पष्ट लक्षण देखे जा सकते हैं।

मेरा मित्र बड़ी देर तक चुप रहा।

मैं अब भी अपने मन की आंखों से देख रहा हूं कि वह अपने लम्बे और दुबले-पतले क़द के साथ, अपने हाथों को कोट की जेबों में डाले हुये, अपने सिर को परेशानी की हालत में मटकाते हुये कमरे के भीतर इधर से उधर चल रहा है और इस प्रकार मुझ से कह रहा है—

'आपकी बातों का कुछ मूल्य हो सकता है और निश्चित रूप से है। यद्यपि मैं आपके विचार और दृष्टिकोण के प्रति, बिना कुछ ग़ौर किये, कोई निर्णय नहीं दे सकता। पर इन बातों की रोशनी में

जो आप ने स्वयं ही मुझ से कही हैं, क्या आपने अनुभव नहीं किया कि आपका अपना जीवन जो आपके नज़दीक बड़ा सादा और सरल है, पश्चिमवासियों के लिए बड़ा विचित्र और असाधारण जान पड़ेगा? क्या आप अपने जीवन के कुछ अनुभवों में उन्हें शरीक नहीं कर सकते? आप अपनी जीवनचर्या स्वयं क्यों नहीं लिख डालते? —मुझे विश्वास है कि यह बड़ी दिलचस्प होगी।

ठहाका लगाते हुए मैंने उत्तर दिया कि हां, कोई ऐसी बात नहीं। मैं अपने-आपको इस बात पर तैयार कर सकता हूं कि विदेश विभाग से त्याग-पत्र दे दूं और एक ऐसी पुस्तक लिख डालूं—लिखना-पढ़ना तो मेरा आरम्भिक पेशा रहा है।

आने वाले सप्ताहों और महीनों में मेरा यह हास्यपूर्ण उत्तर अनजाने ही अपना उपहास खो बैठा और मैं गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा कि अपने जीवन की कहानी लिख डालूं, और उसके द्वारा, जिस सीमा तक भी सम्भव हो उस भारी परदे के उठाने में मदद करूं, जो पश्चिम और इस्लाम के मध्य रुकावट बना हुआ हैं।

मैंने इस्लाम धर्म को विचित्र ढंग से पाया है। मैं इसलिए नहीं मुसलमान हुआ हूं कि मैंने अपने जीवन का बड़ा भाग मुसलमानों के बीच बिताया था, बल्कि इसके विपरीत मैंने उनके बीच रहने का फ़ैसला इसलिए किया कि मैं सच में मुसलमान हो चुका था।

मैंने सोचा—क्या यह शक्ल अधिक बेहतर न होगी कि मैं अपने निजी अनुभवों व उद्‌गारों को पश्चिमी पाठकों तक पहुंचाकर इस्लामी और पश्चिमी जगत के बीच एक-दूसरे के समझने में सहायक सिद्ध हूं, इसके बजाय कि मैं राजदूत-पद पर आसीन रहकर उन कामों क़ो पूरा करता रहूं, जिनको बेहतर तरीक़े से मेरे दूसरे देशवासी भी पूरा कर सकते हैं। बहरहाल कोई भी विवेकी व्यक्ति

संयुक्त राष्ट्र के लिए पाकिस्तान का दूत हो सकता है, पर कितने लोग हैं जो पश्चिमवासियों से इस्लाम के बारे में मेरी तरह बात कर सकते हैं? मैं मुसलमान हूं और साथ ही साथ नस्ली लिहाज़ से पश्चिमी हूं, इसलिए मैं इस्लाम और पश्चिम दोनों की ही ज्ञानपूर्ण भाषाओं में बातें कर सकता हूं।

इन विचारों के साथ मैं सन् १९५२ ई० के अन्त में पाकिस्तान के विदेश मंत्रालय की सेवाओं से पदमुक्त हो गया और पुस्तक के लिखने में लग गया। मैं नहीं कह सकता कि यह पुस्तक उतनी ही दिलचस्प है, जितनी दिलचस्प होने की आशा मेरे अमरीकी मित्र को थी– इसके अलावा मेरे पास कोई शक्ल नहीं थी कि मैं अपनी स्मृति पर बल देते हुये और कुछ पुराने नोटों और अपनी डायरी के कुछ बेजोड़ पन्नों और कुछ अख़बारी लेखों की सहायता से, जो मैं पहले लिख चुका था, अपनी कहानी के कुछ ऐसे उलझे हुये सिरों को सुलझाऊं, जिसमें वर्षों की मुद्दत सिमट आती थी और जो विशाल भौगोलिक क्षेत्रों पर फैली हुई थी।

बहरहाल पुस्तक आपके हाथ में है। यह मेरे पूर्ण जीवन की कहानी नहीं है, बल्कि उस युग की कहानी है जब मैं अरब त्यागकर भारत नहीं आया था। वह एक उत्साहवर्द्धक युग था जिसे मैंने उन तमाम देशों के घूमने में लगाया था, जो एक ओर तो लीबिया मरुस्थल से पामीर की बर्फ़ से लदी चोटियों तक और दूसरी ओर बासफ़ोरस से अरब सागर तक स्थित है। इस बात को याद रखा जाये कि इस कहानी की पृष्ठभूमि समय और स्थान के एतबार से मेरा आख़िरी रेगिस्तानी सफ़र है जो मैंने अरब के आस-पास से, मक्का-मुअज़्ज़मा तक सन् १९३२ की गर्मियों के अन्त में तै किया, इसलिए कि इन्हीं २३ दिनों की मुद्दत में अपने जीवन का रूप मुझ पर भली-भांति प्रकट हुआ था।

वह अरव, जिसका चित्र आगे के पृष्ठों में अंकित किया जायेगा, अब नहीं रहा। उसकी शुद्धता और मानवता को तेल की सुनहरी धारायें बहा ले गईं। उसका शानदार आडम्बरहीन जीवन सपना बन कर रह गया और इसी के साथ वे बहुत-से सद्गुण भी 'बीती हुई कहानी' बनकर रह गये जो मानवता की महान विशेषता समझे जाते हैं।

आज मैं अपने इस आख़िरी लम्बे रेगिस्तानी सफ़र को याद करता हूं तो मेरा मन दर्द से भर उठता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे कोई बहुमूल्य वस्तु खो जाये और वह न मिल सके। मन दुःखी हो उठता है। हां, मेरा वह आख़िरी सफ़र था जिसमें हम दो व्यक्ति दो तेज़ रफ़्तार ऊंटों पर तैरती हुई रोशनी में चलते रहे, चलते रहे।.......

शांति की खोज में

मेरा परिवार और वातावरण

मेरे लड़कपन के शुरू का समय पोलैण्ड के शहर "लवो" (Lwow) में बीता जो उस वक़्त आस्ट्रिया के क़ब्ज़े में था। मेरा मकान उतना ही मौन और शान्त था, जितनी कि उसके सामने वाली सड़क। यह एक लम्बी सड़क थी जिसके दोनों किनारों पर शाह बिलूत के पेड़ लगे हुये थे और जो लकड़ी की चपट्टियों से ऐसी ढकी रहती थी कि उस पर घोड़ों की टाप सुनाई नहीं देती थी, इसकी वजह से पूरा दिन ऐसा जान पड़ता था मानो ऊंघती हुई शाम हो।

मुझे उस सड़क से एक विशेष प्रकार का लगाव और प्रेम हो गया था जो मेरी उम्र को देखते हुये 'वक़्त से पहले' की बात थी। इसकी वजह यह न थी कि मेरा मकान उसी सड़क पर स्थित था, बल्कि जहां तक मेरा विचार है गम्भीरता और आन-बान से भरी हुई उस सुन्दर छटा ने, जो उस चमकते-दमकते और झिलमिलाते हुये शहर के बीच से होती हुई जंगलों के शान्त और उस कब्रिस्तान की चुप्पी तक दीख पड़ती थी (जो जंगल के भीतर स्थित था), उसने मुझ पर जादू कर रखा था।

ख़ूबसूरत घोड़ा-गाड़ियां जब इन रास्तों पर तेज़ी के साथ गुज़रतीं, तो घोड़ों की टापों से एक सुन्दर रागिनी फूट पड़ती, या अगर जाड़ों का जमाना होता और सड़क पर बर्फ की एक फुट मोटी तह जमी होती और उस पर फिसलने वाली गाड़ियां गुज़रतीं तो उस वक़्त घोड़ों के नथनों से बादल की टुकड़ियों की तरह भाप निकलती दीख पड़ती और सनसनाती हुई तेज़ ठण्डी हवा की वजह से घोड़ों

की घंटियां बजने लगतीं। अगर आपको इस जैसी सवारी पर बैठने का मौक़ा मिला होता और अपने चेहरे पर ठंडी हवा की चपेटें लगतीं, तो उस समय आप भी ऐसा ही महसूस करते कि हवाओं का मुक़ाबला करने वाले घोड़े आप को खुशी की एक ऐसी दुनिया में पहुंचा देना चाहते हैं, जिसका न कोई आदि है, न कोई अन्त।

गर्मियों का समय हम लोग देहात में बिताया करते थे, जहां मेरे नाना का मकान था। वे एक महाजन थे, इसके अलावा उनके पास अच्छी भली जायदाद थी जो उनके बड़े परिवार के सुख-वैभव और मन-बहलावे के लिए बहुत काफ़ी थी। एक छोटा-सा अठखेलियां करता हुआ चश्मा भी वहीं से गुज़रता था, जिसके किनारे-किनारे सनोबर के पेड़ लगे हुये थे। गोदाम और मालघर गम्भीर और मौन गायों से भरे रहते थे, जिसमें पशुओं के देह की गन्ध के साथ-साथ किसान-लड़कियों के गुल-गपाड़े की गूंज (जब वे संध्या समय दूध दूहने के लिए आती थीं) भी सुनाई देती थी। यह भी ज़रूरी था कि ताज़ा-ताज़ा दूध उसी वक़्त बालटियों से लेकर पिया जाये—प्यास-भूख की वजह से नहीं, बल्कि इसलिए कि मनुष्य की एक कामना यह भी होती है कि वह प्रकृति से निकटतर होकर इन नेमतों का आनन्द लूटे।

अगस्त के ये गर्म दिन मैंने उन किसानों के साथ बिताये, जो गेहूं काटने में लगे रहते थे, फिर उनकी औरतें बड़ी दिलचस्पी और बड़े लगन के साथ उसे एक ओर बटोर देतीं, जवान और उभरती हुई लड़कियां, जो नज़रों को बहुत भली दीख पड़ती थीं, गदराये शरीर, गर्म-गर्म कठोर बांहें, जिनकी शक्ति का अन्दाज़ा आपको उस समय होता, जब वे खेल करती हुई आपको अपनी बांहों में जकड के गेहूं के ढेरों के पास खींचतीं। यद्यपि मेरी उम्र उस समय ऐसी थी कि मैं इस हंसी-मज़ाक़ से कोई और नतीजा नहीं निकाल सकता था।

मैंने अपने पिता के साथ वियाना, बर्लिन और आल्प्स (Alps) के पहाड़ी सिलसिले बोहेमिया (Bohemia) के जंगलों उत्तरी सागर और बाल्टिक सागर सरीखे दूर-दूर के स्थानों की यात्रायें भी कीं जो मेरे लिए कैसे भी एक नई दुनिया से कम न थे। हममें से जिस किसी को भी इस यात्रा का अवसर मिलता, रेल सीटी देती और उसके पहिये हरकत में आने लगते, तो ऐसा जान पड़ता कि हमारी यह उल्लसित कामना हमारे दिल की धड़कनों को बन्द कर देगी।

वहां मेरे साथ खेल के साथी भी होते, एक भाई, एक बहन और बहुत-से चचेरे भाई। रविवार को जब सप्ताह-भर के कामों से छुट्टी मिलती तो शहर से बाहर पैदल सफ़र के प्रोग्राम बनते और अपनी ही उम्र की सुन्दर लड़कियों से चोरी-छिपे मुलाकातें होतीं, अनोखा नशा था जिसमें घंटों हम लोग मदमत्त रहते।

यह लड़कपन का एक अनजाना हर्षीला और सुन्दर युग था जिसकी याद भी आज बड़ी सुन्दर जान पड़ती है और जी को ढारस बंधता है।

मेरे माता-पिता बड़े ही सुखी और धनी थे। सच पूछिए तो वे अपने लिए नहीं, बल्कि अपनी औलाद के लिए जी रहे थे, इसलिए कि उनका पूरा ध्यान हमारी ही ओर था। शायद यह मेरी मां की नम्रता और शान्तिप्रियता का प्रभाव था कि मैं आने वाले कुछ वर्षों में अपने को नये वातावरण और नई (और बड़ी हद तक अशुभ) परिस्थितियों का आदी बनाने में आसानी के साथ कामियाब हो गया। ऐसे ही मेरे पिता के भीतरी असन्तोष और बेचैनी की छाया भी मुझ पर पड़े बिना न रही।

कुछ अपने पिता के बारे में

मेरे पिता की बात आ गई है तो उचित जान पड़ता है कि उनका कुछ परिचय करा दिया जाये। वह एक हंसमुख और

मुस्कराते रहने वाले व्यक्ति थे, कमज़ोर देह, सांवला रंग, काली और भावुक आंखें, जो उनके वातावरण से कैसे भी मेल नहीं खाती जान पड़ती थीं। जवानी में उन्हें गणित और भौतिकशास्त्र (Physics) से बड़ी दिलचस्पी थी, पर उनकी यह कामना कभी पूरी न हुई। फिर उन्होंने विवश होकर वकालत पढ़ी और इसके बावजूद कि वह इसमें बड़े कामियाब रहे, उन्होंने कभी भी इसमें कोई दिलचस्पी महसूस न की, शायद इसका कारण उनकी यह कुढ़न रही हो कि अब उनका प्रिय विषय और उनकी वास्तविक रूचि उनके वश में न थी, जिससे उन पर सदा ही अकेलेपन का अहसास छाया रहता था।

उनके पिता (Czervowitz) नगर के, जो उस समय आस्ट्रिया के क़ब्ज़े में था, एक यहूदी विद्वान थे। मुझे अभी तक उनका रंग-रूप अच्छी तरह याद है, हंसमुख व खिलता चेहरा, पतली उंगलियां, अधिक भावुक चेहरा, जिस पर उनकी भावनायें तत्काल ही उभर आतीं, उजली लम्बी ढाढ़ी, वह ज्योतिष शास्त्र (Astronomy) से गहरा लगाव और बड़ी दिलचस्पी रखते ही थे, साथ ही साथ अपने ज़िले में शतरंज के ऊंचे खिलाड़ियों में गिने जाते थे और शायद यही वह चीज़ थी जिससे उनमें और रूम के कट्टर पादरी (Orthodox Arch Bishop) में घनिष्ठ मित्रता पैदा हो गई थी, जो स्वयं भी शतरंज के पक्के खिलाड़ी थे। दोनों न जाने कितनी रातें खेलकर बिता देते थे और अपने अपने धर्मों के सिद्धान्तों पर वाद-विवाद भी करते थे। हो सकता है कोई ऐसा सोचे कि जब मेरे दादा को भौतिक शास्त्र से इतनी दिलचस्ती थी तो उन्होंने अपने लड़के में इस रुचि व रुझान को पैदा करने की ज़रूर ही कोशिश की होगी। पर बात ऐसी न थी। उन्होंने शुरू ही में यह फ़ैसला कर लिया था कि उन्हें अपने परिवार की उस धार्मिक मीरास की रक्षा

करनी है जो क्रमागत नस्लों में सुरक्षित चली आ रही है। उन्होंने मेरे लिए कोई और काम पसन्द ही न किया। उनकी इस राय और इरादे में उनके चाचा की एक दु:खद याद का भी हाथ रहा होगा, जिन्होंने परिवार की परिपाटी और इतिहास से विचित्र रूप में विद्रोह कर दिया था, यहां तक कि अपने पुरखों के धर्म को भी तिलांजलि दे दी थी।

हमारे इन ऐतिहासिक चचा ने,.जिनका नाम भी हमारे घर में कभी ऊंची आवाज़ से नहीं लिया गया, वह किसी ऐसे ही वातावरण में पले-बढ़े थे जहां "धार्मिकता" छाई हुई थी। नौजवानी ही में वह पूरे "रिब्बी" (महन्त) हो गये थे, फिर उनका विवाह एक ऐसी औरत से कर दिया गया, जिससे (जहां तक मेरा अन्दाज़ा है) उनको तनिक भी लगाव न था।

चूंकि रिब्बी के पेशे में इतनी आमदनी नहीं थी जो उन दिनों उनके लिए काफ़ी होती, इसलिए उन्होंने समूर बेचने का कारोबार शुरू कर दिया। इसके लिए वे हर साल यूरोप में समूर के केन्द्रीय बाज़ार Lepzig की यात्रा किया करते थे। एक बार यथानियम, ज़ब उनकी उम्र २५ साल की थी, वह ऐसी ही एक लम्बी यात्रा की नीयत से सवारी पर बाहर निकले। यह १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध की घटना है। Lepzig में उन्होंने पहले की तरह समूर बेचा पर घर वापस आने के बजाए उन्होंने अपनी गाड़ी भी बेंच दी और घोड़ा भी। उन्होंने ढाढ़ी भी मुड़ा दी और अपनी पत्नी को भुलाकर, जिससे उन्हें पहले भी कोई लगाव न था, इंग्लैंण्ड चले गये। वहां कुछ दिनों तक मज़दूरी आदि करके अपना ख़र्च चलाते रहे और साथ ही गणित व ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन भी शुरू कर दिया। अनुमान है कि उनके मालिक ने अध्ययन की उनकी इस रुचि को देखकर उनकी मानसिक क्षमताओं का अनुमान किया होगा और

आक्सफोर्ड में रहकर अधिक शिक्षा व अध्ययन को जारी रखने में मदद की होगी। बहरहाल आक्सफ़ोर्ड में उन्होंने इस संबंध की पूरी शिक्षा प्राप्त कर ली और ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। फिर अपनी पत्नी को तलाक़नामा भेजने के कुछ दिनों बाद इन ''काफ़िरों'' की किसी लड़की से विवाह कर लिया। इसके बाद हमारे घर वालों को उनका कोई पता न चल सका। हां, इतना ज़रूर मालूम हुआ कि वह यूनिवर्सिटी में ज्योतिष शास्त्र के प्रोफ़ेसर थे, फिर 'नाइट' हो गये और इसी हालत में उनके जीवन का अन्त हो गया।

इस शिक्षाप्रद अन्त ने मेरे दादा के मन को इस बात पर सन्तुष्ट कर दिया था कि वह मेरे पिता के मामले में जिनको 'काफ़िरों' के शास्त्रों' से लगाव था, बड़ी ही कठोर और बिना लचक की पालिसी अपनायें। उनके लिए रिब्बी होना ज़रूरी था, किसी विशेष ध्येय या भावना से नहीं, बल्कि इसलिए कि होना चाहिए था, पर मेरे पिता जी आसानी से हथियार डाल देने वाले नहीं थे। इस तरह होता तो यह था कि दिन में तो वह तलमूद का अध्ययन करते, और रात को छिपे-चोरी एक सिकेण्डरी स्कूल की किताबें पढ़ते रहते। एक समय बाद उन्होंने अपनी माता से इस चोरी की पढ़ाई की बात बता भी दी। यद्यपि यह हरकत उनकी माता के मन पर बड़ा बोझ बन गई, पर अपनी नम्रता के कारण उन्होंने यह सोचा कि लड़के को पढ़ने का जो एक अच्छा मौक़ा मिल गया है, उसमें रुकावट डालना एक तरह का जुल्म है।

२२ साल की उम्र में उन्होंने यह पूरा पाठ्यक्रम जो आठ साल का था, चार साल ही में पूरा कर लिया, इसके बाद बी० ए० की परीक्षा में बैठ गए और विशेष पोज़ीशन से कामियाबी हासिल की। सर्टीफ़िकेट उनको मिल गई तो उनकी माता ने यह 'भयानक सूचना'

उनके दादा को दे दी। मैं अपनी कल्पना की आंखों से उस दृश्य को देख सकता हूं, जो उस समय पैदा हो गया होगा, बहरहाल अन्त में मेरे दादा को 'नरम' होना पड़ा और वे इस बात पर तैयार हो गए कि पिता जी अपनी धार्मिक शिक्षा को रोककर यूनिवर्सिटी में दाखिला ले लें, पर परिवार की आर्थिक कठिनाइयों की वजह से उन्हें इसका मौका न मिला कि वह अपने प्रिय विषय भौतिक शास्त्र (Physics) की शिक्षा जारी रख सकते, उन्हें किसी ऐसे पेशे को अपनाना पड़ा जिसमें आमदनी ज़्यादा हो, जैसे वकालत। अन्त में वह वकील हो गये और लवो (Lwow) में अधिकृत रूप से रहने-सहने लगे। वहीं उनसे मेरी मां का विवाह हुआ, जो एक धनी महाजन की बेटी थीं और वहीं सन् १९०० में मेरा जन्म हुआ। मैं अपने माता-पिता का दूसरा लड़का था।

मेरे पिता की विज्ञान से दिलचस्पी (जो मन ही में घुट कर रह गई थी।) उनके विज्ञान के सविस्तार अध्ययन और अपने लड़के के लिए इस विषय के चयन ही से ज़ाहिर थी, जिसका निज का रुझान भी ऐसी चीज़ो की ओर अधिक था, जिनसे आर्थिक लाभ की कोई उम्मीद न थी। पर जो आशाएं उनकी मुझसे थीं, वे कभी पूरी न हो सकीं। यद्यपि मैं मूर्ख और बुद्धिहीन नहीं था, पर बस औसत दर्जे का और लापरवाह छात्र था,गणित और भौतिक शास्त्र में मेरा कभी भी मन न लगा, हां, Sienkiurez के भड़काने वाले ऐतिहासिक उपन्यास Jules verne और James Fenimore cooper की लिखी हुई रेड इण्डियनों की कहानियां और उसके बाद Rilk आदि की कविताएं मुझे ज़्यादा पसन्द थी। बिजली और आकर्षण की विचित्र बातें मेरे लिए लेटिन और यूनानी व्याकरणों से कुछ कम न थीं, जो मेरे मन में कैसी भी भावना जगा नहीं पाती थीं। इसका फल यह निकलता कि बड़ी कठिनाइयों से परीक्षा पास कर पाता था।

निश्चय ही यह मेरे पिता के लिए बड़ी निराशा और दुःख की बात थी, परं शायद इस बात से उन्हें तसल्ली होती थी कि जर्मन और पोलस्तानी साहित्य और इतिहास से मेरी दिलचस्पी पर मेरे मास्टर लोग बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं।

शिक्षा और अध्ययन

परिवार की परिपाटी के अनुसार मैंने प्राइवेट तौर पर मास्टरों से इब्रानी धर्म-शास्त्रों की विस्तार में, शिक्षा प्राप्त की। इसका कारण मेरे पिता की 'धार्मिकता' न थी, बल्कि वह उस नस्ल से सम्बन्ध रखते थे जो सिर्फ़ ज़ुबानी ही उन धार्मिक विश्वासों को मानती थी जो एक समय में उनके पुरखों के जीवन पर पूरा प्रभाव डाले हुये थे उसने इन विश्वासों को अपने व्यावहारिक जीवन में हाथ डालने की कभी इजाज़त नहीं दी, यहां तक कि नैतिक चिन्तन पर भी उसका कोई प्रभाव न था। इन सिद्धान्तों व रुझानों के अनुसार जो इस सोसाइटी में चालू थे, 'धर्म' का अर्थ अपनी जगह से नीचे उतर चुका था। अब उसके केवल दो अर्थ रह गये थे, या तो उसकी हैसियत कुछ बेजान रस्मों की थी। जिसे लोग धर्म की मीरास समझ कर अपने सीने से चमटाए बैठे थे, या उपेक्षित बेपरवाई (Cynical Insouciance) जो स्वतन्त्र विचार वालों की रीति जैसी थी, जिनके नज़दीक धर्म एक पुरानी कहानी थी, जिसे एक व्यक्ति ऊपर-ऊपर ज़रूरत या मसलहत के तरीक़े पर बरत लेता है, पर भीतर से इस पर अमल करने से उसे शर्म आती है, इसलिए कि इसका कोई तर्कसंगत प्रमाण उसकी समझ में नहीं आता, और न ही इसमें उसे कोई औचित्य ही दीख पड़ता है।

प्रत्यक्ष परिस्थितियां, पूरी की पूरी इस बात पर गवाह थीं कि मेरे पिता का सम्बन्ध पहले वर्ग से था, पर कभी-कभी मैं सोचने लगता था कि उनके मन का झुकाव दूसरे वर्ग की ओर भी था। फिर

भी अपने पिता और अपने सुसुर को ध्यान में रख कर उन्होंने मुझसे धार्मिक ग्रन्थ पढ़वाये। अभी मैं तेरहसाल का भी नहीं हुआ था कि इब्रानी भाषा आसानी से पढ़ने लगा और पढ़ने ही नहीं लगा, बल्कि बड़ी सुगमता से बोलने भी लगा। इसके बाद आरामी भाषा से भी थोड़ी बहुत जानकारी हो गई। आगे के वर्षों में मुझे अरबी पढ़ने में जो आसानी हुई, शायद इसमें इसका भी हाथ है। मैंने Old Testament के मूल ग्रन्थ का अध्ययन किया था और तलमूद का मूल व व्याख्या दोनों मेरी जानी-पहचानी चीज़ थीं। उस ज़माने में मैं बड़े ही भरोसे और इत्मीनान के साथ तलमूद, बाइबिल और पवित्र तलमूद के अन्तर पर वाद-विवाद कर सकता था। इसके बाद मैं पवित्र ग्रंथ "तारगोम" की व्याख्या में लग गया, जो रिब्बी होने के लिए एक ज़रूरी शर्त थी।

यहूदी विश्वास की मौलिक बातों से [illegible] तमाम जानकारियों और इन तमाम धार्मिक मालूमात के बावजूद बल्कि शायद इसी कारण बहुत जल्द मुझमें अपने उच्च होने और 'बड़े' होने की भावना ज़ोर पकड़ गई। स्पष्ट रहे कि मैं चरित्र सुधार के उस सिद्धान्त को पूरी तरह मानता था जो यहूदियों के धार्मिक ग्रन्थों में पूरे ज़ोर के साथ बताया गया है, ऐसे ही मैं अल्लाह के बारे में यहूदियों के नबियों के उच्च विचारों से भी सहमत था, जो वे पेश करते हैं, पर मुझे ऐसा जान पड़ता था कि जिस अल्लाह को Old Testament और तलमूद में पेश किया गया है, उसे रस्मों और धार्मिक उत्सवों से ज़रूरत से ज़्यादा दिलचस्पी है। मेरा ऐसा विचार होने लगा कि यह उपास्य असाधारण रूप से एक ही निश्चित और विशेष जाति (इब्रानियों) के परिणाम और भविष्य की चिन्ता में रहा करता है, यह Old Testament का ग्रन्थ 'जम्द' इब्राहीम की औलाद के इतिहास की हैसियत से ऐसा रुझान रखता है कि अल्लाह

को तमाम मनुष्यों के पालनहार की हैसियत से नहीं, बल्कि एक विशेष दिशा व स्थान के पालनहार की हैसियत से पेश करे, जो दूसरी जातियों के साथ, अपनी चुनी हुई और पसन्द की हुई जाति की ज़रूरतों को देखकर मामला करता है, अगर वे नेक होती हैं तो उनको विजयी करता है, अगर गुमराह होती हैं तो काफ़िरों के हाथ से उनको अज़ाब देता है। यहां तक कि जर्मिया जैसे बार-बार नबियों का आध्यात्मिक उत्साह भी मुझे विश्व-व्यापी सन्देश से ख़ाली दीख पड़ता है। इन्हीं जैसी बुनियादी कमज़ोरियों को देखकर मेरी रुचि कुछ यहूदी धर्म में जमी नहीं।

यद्यपि शुरू के इस पढ़ने व समझने का परिणाम मेरे उद्देश्य और मेरी नीयत के ख़िलाफ़ निकला और इसने मुझे मेरे पुरखों के धर्म से क़रीब करने के बजाए और दूर कर दिया। पर मैं प्रायः सोचा करता हूं कि आने वाले वर्षों में इस चीज़ ने मुझे धर्म का मूल उद्देश्य समझने में (एक जीवन-व्यवस्था की हैसियत से भले ही इसका कोई रूप हो) काफ़ी मदद दी। फिर भी यहूदी धर्म से इस निराशा का मुझ पर यह असर नहीं हुआ कि मैं आध्यात्मिक तथ्यों को कहीं और खोजूं। Agnostic वातावरण के प्रभाव से मैं भी उसी रास्ते पर पड़ गया, जिस पर दूसरे साथी पड़ गये थे और वह यह कि अमली तौर पर हरेक ऐसे "क़ानूनी" धर्म से अलग हो जाया जाये जिसमें केवल सिद्धान्तों व नियमों और रस्मों व रिवाजों पर ज़ोर दिया जाता है।

और चूंकि मेरा धर्म मेरे लिये पाबन्दियों और हुक्मों की एक बेड़ी थी, इसलिए मैंने इससे दूर हो जाने में कोई कठिनाई नहीं महसूस की। धार्मिक समस्याओं और दार्शनिक प्रश्नों ने अभी तक मेरे दिमाग़ को अपनी ओर मोड़ा तक नहीं था। मेरा दृष्टिकोण वही था जो मेरी उम्र के नौजवानों का था—कार्यशक्ति, उत्साह, आगे बढ़ना और जान पर खेल जाना।

१९१४ ई. के अन्त में जब लड़ाई छिड़ चुकी थी, तो मुझे ऐसा नज़र आया कि मेरे इन स्वप्नों के पूरा होने का समय आ गया है। मेरी उम्र उस समय १४ साल की थी। मैंने स्कूल से भाग जाना पसन्द किया और अपना नाम बदल कर आस्ट्रिया की सेना में भर्ती हो गया। मेरा क़द मेरी उम्र, को देखते हुए ज़्यादा था, इसलिए मुझे १८ साल का सोचकर भर्ती कर लिया गया। १८ साल भर्ती के लिये ज़रूरी उम्र थी, पर स्पष्ट है, मेरे पास "सिपाही का डंडा" न था, जिसका नतीजा यह हुआ कि मेरे पिता पुलिस की मदद से मेरा पीछा करने में सफल हो गये और मुझे रुसवाई व अपमान की भावना के साथ अपने वियाना लौटा दिया गया, जहां कुछ दिनों से मेरा परिवार आकर ठहरा हुआ था। पर लगभग चार वर्ष के बाद मैं दुबारा अधिकृत रूप से आस्ट्रिया सेना में शामिल हो गया, हां, उस ज़माने में मैंने फ़ौजी तरक़्क़ी और शान व शौकत के स्वप्न देखना बन्द कर दिये और,स्वाभिमान की पूर्ति के लिये किसी दूसरे रास्ते की खोज में लगा रहा। बहरहाल मेरे भर्ती होने के कुछ ही हफ़्ते बाद क्रान्ति हो गई, आस्ट्रियन साम्राज्य ख़त्म हुआ और उसके साथ लड़ाई भी ख़त्म हो गई।

पहली बड़ी लड़ाई के ख़त्म होने के बाद लगभग दो साल तक मैं वियाना यूनिवर्सिटी में किसी ख़ास पाबन्दी और इन्तज़ाम के बिना ही फ़िलासफ़ी और आर्ट की शिक्षा प्राप्त करता रहा पर कभी भी मेरा मन इन शास्त्रों में न लगा, इसलिए कि इन गम्भीर, शुष्क और विशुद्ध ज्ञानात्मक राहों में मेरे लिये कोई आकर्षण न था। मुझे इसकी कामना और इच्छा थी कि मैं ज़्यादा जानकारी और व्यावहारिकता के साथ जीवन का अध्ययन करूँ और इन बनावटी क़िलों में शरण लिये बिना जीवन के भीतर उतर जाऊँ जो उन लोगों ने अपने बचाव और आराम के लिये अपने चारों ओर बना रखे हैं। मैं व्यवहार रूप से सृष्टि की उस आध्यात्मिक व्यवस्था की

खोज में था, जिसके बारे में मुझे विश्वास था कि वह है ज़रूरत, पर इस समय मैं उसे प्राप्त नहीं कर पा रहा हूं।

यह आसान नहीं कि मैं कुछ शब्दों में आपको बता दूं कि उस समय आध्यात्मिक व्यवस्था से मैं क्या समझता था। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मेरे मन में यह विचार कभी आया ही नहीं कि मैं समस्या को विशुद्ध धर्म-परिभाषा की दृष्टि से समझने की कोशिश करूँ। मेरी यह मानसिक विकलता और मन की अस्थिरता, अगर मैं न्याय की बात कहूं, मेरे हाथों की लाई हुई न थी, सच पूछिए तो यह पूरी नस्ल की विकलता व अस्थिरता थी।

आध्यात्मिक विकलता

वीसवीं शताब्दी के शुरू के वर्षों की यह विशेषता है कि इनमें स्पष्ट रूप से एक आध्यात्मिक शून्यता (Vacuum) पाई जाती थी और आध्यात्मिक मानदण्ड, जिन्हें यूरोप शताब्दियों से जानता था, अब किसी विशेष व मिश्रित रूप में बाक़ी नहीं रह गये थे। यह उन विनाशकारी घटनाओं का फल था जो सन् १९१४ और सन् १९१८ के बीच में घटित हुई ऊपरी तौर पर इसकी भी कोई उम्मीद न दीख पड़ती थी कि मानदण्डों का कोई नया योग, इनकी जगह ले सकेगा। वहां खतरे और डर का एक एहसास था, वह एहसास जो मानसिक व सामाजिक उबाल से पहले पैदा हुआ करता है, इसी कारण मनुष्य इस शंका का शिकार था कि न जाने उसकी कोशिशों और विचार-धाराओं को कोई ठहराव मिलेगा भी या नहीं? ऐसा लगता था कि हर चीज़ तिनके की तरह एक भयानक बाढ़ में बही चली जा रही है।

इस आध्यात्मिक विकलता व असन्तोष में नव-जवानों के लिए एक कदम भी टिकाने की जगह न थी, फिर भरोसा करने योग्य नैतिक मान-दण्डों व स्तरों के अभाव के कारण यह बात किसी के वश में नहीं रही थी कि वह हमारे इन प्रश्नों का (जो हमारे दिमागों को परेशान कर रहे थे) सन्तोषप्रद उत्तर दे सकता। विज्ञान का दावा था कि खोज (Research) ही सब कुछ है, वह यह भूल गया था कि अगर ज्ञान और विज्ञान के साथ कोई नैतिक उद्देश्य न हो तो उसका नतीजा

अशांति और अराजकता के अलावा कुछ नहीं। समाज-सुधारक, क्रान्तिकारी लोग कम्युनिस्ट (और ये सभी एक बेहतर और स्वास्थ्यप्रद भविष्य लाने की कोशिश कर रहे थे) सिर्फ ऊपरी हालात (सामूहिक व आर्थिक ज़रूरतों) की रोशनी में सोचने के आदी थे। इसलिए कम्युनिस्टों ने 'भौतिक इतिहास-दर्शन' ईजाद किया जो यद्यपि अभौतिक बातों का दुश्मन था, पर खुद उसने बाद को Meta-physics की शक्ल अपना ली थी। रहे धार्मिक नेता व गुरू तो उनका अधिक प्रिय काम तो यह था कि वे ख़ुद अपने आचार-विचार और रीति-रिवाज को अपने उपास्य पर चेपते रहे और बस—वे रीति-रिवाज जो एक समय से निर्मूल और बेजान हो चुके थे। जब हम नवजवान यह देखते थे कि ये कथित ईश्वर के गुण दूर-दूर तक भी वास्तविकताओं से मेल नहीं खाते तो हम सोचते थे कि असल जो कर्ता-धरता शक्तियां हैं, वे बहुत स्पष्ट और खुले तौर पर उन गुणों से भिन्न हैं, जिनको ईश्वर से सम्बन्धित किया जाता है, इसलिए ईश्वर मौजूद नहीं है। ऐसे लोग बहुत ही कम थे जो यह समझते हों कि वर्तमान अराजकता और अशान्ति का कारण धर्म के उन दावेदारों और ठेकेदारों का अन्याय है जिन्हें यह विश्वास था कि वे नेक लोगों में से हैं और उन्हें ईश्वर का परिचय कराने और उसके गुणों का बखान करने का हक़ दिया गया है—वह ईश्वर जिसको उन्होंने अपना जामा पहनाकर मनुष्य और उसके परिणाम से अलग कर दिया है।

व्यक्ति के जीवन में इस नैतिक परिवर्तन के दो ही परिणाम थे—पूर्ण नैतिक अराजकता और 'पशुता' या फिर एक नई राह पैदा करने का रचनात्मक प्रयत्न जो सुन्दर जीवन को जन्म दे सके।

ललित कलाओं के इतिहास को मूल विषय की हैसियत से चुनने में शायद मेरे भीतर यही चेतना काम कर रही थी। कला का उद्देश्य मेरे नज़दीक यह था कि वह घटनाओं का (जो वक़्त बेवक़्त हमारे

सामने घटित होती हैं और हम उन्हें महसूस करते हैं) एक नियत व स्थायी चित्र सामने ला सके। ये घटनायें, जिनके बारे में मेरा रुझान यह है कि चिन्तन मात्र ही से इनका एक चित्र बनाया जा सकता है, यह और बात थी कि क्लास के लेक्चरार मुझे अपील नहीं कर सके। ऐसा जान पड़ता था कि मेरे कुछ मशहूर प्रोफ़ेसर तक सौन्दर्य-नियमों के सिलसिले में उसके मूल आध्यात्मिक व भीतरी कारणों की ओर ध्यान देने के बजाय उसकी कलात्मक साज-सज्जा पर अधिक बल देते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ललित कलाओं के बारे में उनका दृष्टिकोण ज़रूरत से ज़्यादा तंग था और अधिकतर उलझनों का शिकार था।

ऐसे ही मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) के वे परिणाम भा जो मानसिक अशान्ति और विकलता के समय में मेरे सामने आये मुझे सन्तुष्ट न कर सके। यह ठीक है कि उसके कारण भिन्न-भिन्न थे। इसमें सन्देह नहीं कि मनोविश्लेषण उस समय में अपने प्रकार की आप ही एक शानदार बौद्धिक क्रान्ति थी, मनुष्य अपने मन की गहराइयों से यह समझने लगा था कि ज्ञान व सत्य के दरवाज़े जो अभी तक बन्द थे और अब जाकर खुले हैं, मनुष्य के सोच-विचार पर बहुत गहरा प्रभाव डाले बिना न रहेंगे और हो सकता है कि उसे पूरी तरह बदल कर रख दें। मैं ये तमाम बातें मानने के लिए तैयार था, और सच तो यह है कि फ्रायड के विचारों ने मेरे मन व मस्तिष्क पर शराब का-सा असर किया था, कितनी रातें मैंने काफ़ी हाउस में बिताई, जहां मैं मनोविश्लेषण के पुराने विशेषज्ञों (Alfred Adler Hirmanan Stecal, Otto Gross) की गर्मागर्म बहसों को एकाग्र होकर सुना करता था, पर उस वक़्त भी, जबकि नवीन विश्लेषण के नियम व परिणाम मेरे लिए किसी सन्देह से बहुत आगे थे, मैं इस "बौद्धिक दम्भ" (Intellectual Arrogance) पर सन्तुष्ट नहीं था, जिसके

अनुसार मनुष्य के मन की तमाम विचित्रताओं को वासनाओं और काम-संबंधों की प्रतिध्वनि समझ लिया जाता है। वे दार्शनिक परिणाम कि जहां तक इस ज्ञान व शास्त्र के ज्ञाता पहुंचे थे, कभी-कभी मुझे बेक़ीमत और तुच्छ जान पड़ते थे, इसलिए कि अन्तिम वास्तविकताओं के सामने उनकी कोई हैसियत ही न थी, अलावा इसके वे किसी नये रास्ते की ओर रहनुमाई भी नहीं करते थे, जो मनुष्य को अच्छे जीवन की ओर ले जाता हो।

यद्यपि ये समस्यायें मेरे मस्तिष्क पर बुरी तरह छाई हुई थीं, पर सच तो यह है कि उन्होंने कभी मुझे परेशान नहीं किया। मैं अलौकिक (Super-natural) चीज़ों के बारे में दार्शनिक सोच-विचार या वास्तविकताओं मात्र की बहस में कभी पूरी तरह डूबा नहीं। इसका कारण यह था कि मेरा शुरू ही से उन्हीं चीज़ों की ओर रुझान अधिक था जिन्हें देखा और महसूस किया जा सकता हो, जैसे मनुष्य के आपसी सम्बन्ध, समाज की सरगर्मियां आदि। उस ज़माने में मैं नर-नारी के सम्बन्धों को समझने के लिए भी कोशिश कर रहा था।

महायुद्ध के बाद जब नैतिक मूल्यों का एक सामान्य व सर्वव्यापी पतन हुआ तो स्वाभाविक रूप से पर्दे भी उठ गये जो मर्द और औरत के बीच पड़े हुए थे। इस घटना को मेरी राय में उन्नीसवीं शताब्दी की "धार्मिकता" के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया मात्र समझना सही नहीं, यह बड़ी हद तक उस दशा या उस वातावरण से, जहां नियत नैतिक मूल्यों को समझा जाता था कि वे सदा से हैं, सदा रहेंगे और किसी सन्देह से उच्च हैं, उस दशा या वातावरण की ओर बेरोक प्रतिक्रिया थी, जहां हर चीज़ शंकित और अनिश्चित थी, वह उस विश्वास से कि मनुष्य आगे बढ़ रहा है और तरक़्क़ी कर रहा है, वापसी थी उस तीखे जागरण (Bitter Disillusionment) की ओर जिसकी ओर (Spengier ने बुलाया था, उस नैतिक सापेक्षता Moral

Relativism) की ओर जिसका आवाहक नरेश (Nietzsche) था, उस आध्यात्मिक नाशवाद (Spiritual Nihilism) की ओर जिसे विश्लेषण के विद्वानों ने पाला-पोसा था।

जब मैं युद्ध के तुरन्त बाद के कुछ वर्षों को याद करता हूं तो मुझे महसूस होता है कि वे नव-जवान लड़के और लड़कियां जिन्होंने "देह की आज़ादी" पर बहुत जोश और गर्मी के साथ लेख लिखे थे और बहसें की थीं, वे उन स्वाभाविक प्रेम-भावना से बहुत दूर थे, जिसका उन्हें दावा था। उनके काम-सम्बन्ध आमतौर से ऊपरी होते थे, जिसमें एक तरह की बेपरवाही भी शामिल होती थी, जो प्राय: उन्हें आवारापन तक ले जाकर छोड़ती थी।

यद्यपि मैं महसूस करता था कि मैं नैतिक नियमों और रीतियों का पाबन्द हूं, पर मेरे लिए यह बहुत कठिन था कि अपने आपको इस भयंकर तूफ़ान से बचा सकूं जो बहुतों को बहा ले गया। अपने दूसरे साथियों और दोस्तों की तरह मैं भी इस बात पर गर्व करता था जिसे हम "पिछले रहन-सहन के तरीक़े से द्रोह" का नाम देते थे, बहरहाल यह छेड़-छाड़ मुहब्बत में बदल जाती थी और कभी-कभी कष्टप्रद मनोवैज्ञानिक प्रभावों का कारण बन जाती थी। हां, इतना मैं ज़रूर कह सकता था कि मैं आवारा व बदचलन नहीं हुआ था, इसलिए कि मेरे पूरे रोमान्स में जो जवानी में पेश आये थे (भले ही उनकी मुद्दत और प्रभाव कम हो) एक अस्पष्ट पर बलवान विचार शामिल रहता था, यह विचार कि अकेलेपन का यह एहसास जो एक मनुष्य को दूसरे से अलग करता है, औरत व मर्द के मेल-मिलाप से खत्म किया जा सकता है।

पत्रकारिता (Journalism) के मैदान में

मेरा असन्तोष बराबर बढ़ता रहा, यहां तक कि यूनिवर्सिटी में पढ़ाई को जारी रखना मेरे लिये बहुत कठिन हो गया और अन्त में मैंने उसे छोड़ देने और पत्रकारिता के मैदान में भाग्य आज़माने का फ़ैसला कर लिया। मेरे पिता ने इसका बड़ी कड़ाई से विरोध किया और अपनी राय के हक़ में बड़ी ही भारी और उचित दलीलें रखीं, जिन्हें मैं उस वक़्त मानने के लिए तैयार न हो सका। एक बात उन्होंने यह कही कि, "पत्रकारिता के मैदान में आने से पहले इसका यक़ीन कर लेना चाहिए कि मैं यह लिखने-पढ़ने का काम कर भी सकूंगा या नहीं।" फिर अपनी एक गर्म बातचीत के बाद उन्होंने कहा, "बहरहाल डाक्ट्रेट की डिग्री ने कभी भी किसी व्यक्ति को सफल लेखन व साहित्यकार बनने से नहीं रोका।" उनकी यह बात बड़ी ही उचित थी, पर मैं जवान था, उमंगों वाला था और बहुत बेचैन भी था, जब मैंने जान लिया कि वे कैसे भी अपनी राय बदलने पर तैयार नहीं, तो फिर मेरे लिए इसके अलावा कोई रास्ता न रहा कि स्वयं अपनी सूझ-बूझ से अपनी जीवन-यात्रा शुरू करूं।

अतएव यही हुआ, किसी को सूचना दिए बिना सन् १९२० की गर्मियों में अन्ततः मैंने वियाना छोड़ दिया और प्राग के लिए ट्रेन पर सवार हो गया।

मेरा कुल संसार उस समय (निजी सामान के अलावा) हीरे की अगूँठी थी जो मेरी माता से (जिनकी मृत्यु को एक साल की मुद्दत हो रही थी) मुझे विरासत में मिली थी। मैंने इस अंगूठी को प्राग के प्रसिद्ध साहित्यिक काफ़ी हाउस के एक बेरे द्वारा बिकवा दिया। मेरा अनुमान है कि यह सौदा मुझे मंहगा पड़ा। पर जो क़ीमत इसके बदले में मुझे मिली थी, वह उस वक़्त मेरे लिए बहुत बड़ी दौलत थी। इसके बाद मैं बर्लिन चला गया, जहां मुझे वियाना के कुछ मित्रों

ने साहित्यकारों व लेखकों के उस जादुई क्षेत्र में पहुंचा दिया जो एक मशहूर और पुराने काफ़ी हाउस (Cafe, Des, Westerns) में क़ायम था।

उस समय मुझे मालूम हुआ कि किसी से मदद की उम्मीद रखे बिना मुझे अपना रास्ता आप बनाना है। घर वालों से भी मुझे किसी आर्थिक सहायता की उम्मीद न थी। कुछ महीनों के बाद जब मेरे पिता का ग़ुस्सा कुछ ठंडा हुआ तो उन्होंने अपने एक पत्र में मुझे लिखा कि, 'मुझे दीख पड़ता है कि तुम इसी तरह दर-दर की ठोकर खाते-खाते किसी गढ़े में गिर कर ख़त्म हो जाओगे।" मैंने जवाब में उन्हें लिखा कि "मेरी मंज़िल तो वह चोटी है जहां मुझे पहुंचना है।" मैं नहीं समझता था कि उस चोटी पर पहुंचूंगा कैसे, पर मैं लिखना चाहता था और मुझे विश्वास था कि साहित्य-जगत अपनी बाहों को फैलाए हुए मेरी बाट जोह रहा है। कुछ महीनों के बाद जब मेरी बची बचाई पूंजी भी समाप्त हो गयी, तो मैंने कोई काम हासिल करने का इरादा किया और एक नौजवान की हैसियत से, जिसके सीने में पत्रकारिता की बड़ी उमंगें और बड़े हौसले थे, मैंने सबसे पहले एक बड़े दैनिक पत्र से सम्बन्ध पैदा करने की कोशिश की, पर मैंने महसूस किया कि वह मुझे लेने पर तैयार नहीं। यह बात मुझे अचानक नहीं मालूम हुई , इससे पहले हफ़्तों मैंने बर्लिन की सड़कों के पैदल चक्कर काटे, इसलिए कि हांथ तंग होने की वजह से मोटरों व ट्रामों से सफ़र करना मेरे लिए असम्भव था। कितनी बार मुझे चीफ़ एडीटरों और न्यूज़ एडीटरों के अपमानजनक इन्टरव्यू सहन करने पड़े। उस समय मुझे अन्दाज़ा हुआ कि मुझ जैसे आदमी का, जिसकी एक लाइन भी कभी न छपी हो, किसी पत्र के पवित्र दरबार में प्रवेश केवल चमत्कार ही से हो सकता है। चमत्कार तो कोई न हुआ, हां, भूख और उपवास से अच्छी राह व रस्म पैदा हो

गई। कई हफ़्ते ऐसे बीते कि सिर्फ़ चाय पर गुज़ारा करना पड़ा। हां, मकान की मालकिन सुबह के वक़्त दो रोटी भी मुझे दे देती थी। मेरे काफ़ी हाउस वाले मित्र लेखक भी इस 'ज्ञानी' के लिए कुछ न कर सके, अलावा इसके इनके हालात भी मेरे हालात से कुछ भिन्न न थे। वे भी हर दिन विनाश के गढ़े की ओर बढ़ रहे थे और अपने सफ़ेद पहनावे को बाक़ी रखने के लिए अपनी कोई रचना (लेख या चित्र) बेचकर किसी पार्टी आदि का प्रबन्ध करते और मुझे भी इस 'यकायकी भोज' में शरीक कर लेते। कभी भूले भटके कोई सेठ हम "ज्ञानियों" को अपने फ्लेट में बुला लेता और जब हम शम्पीन माही अचार (Caviar) अपने ख़ाली मेदो में उडेल रहे होते तो वह चकित हो हमें देखता रहता। इस दावत के बदले हम मेज़बान के सामने अपनी योग्यताओं का प्रदर्शन करते और "आज़ाद रहने" सरीखे विचारों की खूब-खूब चर्चा करते।

पर ऐसी दावत और पार्टियां तो बहुत ही कम होती थीं आम तौर पर उपवास का ही सामना करना पड़ता था। रात को जो स्वप्न में देखता था उसमें भी मुझे भुना गोश्त, पराठे और पसन्दे दिखाई पड़ते थे। कई बार मुझे विचार हुआ कि पिता जी को इस सिलसिले में कुछ मदद के लिए लिखूँ, मुझे यक़ीन था कि वह ज़रूर तैयार हो जाते, पर हर बार मेरा अहं आड़े आ जाता और मैं यह लिख देता कि मैं एक उचित वेतन पर एक जगह नौकर हो गया हूं।

अन्त में थोड़ा-सा भाग जागा मैं मोर्नो (F.W. Murnau) से मिलने गया। यह मोर्नो वह व्यक्ति है जो उस ज़माने में फ़िल्म प्रोड्यूसर की हैसियत से प्रसिद्ध था और तरक़्क़ी की सीढ़ियां तै कर रहा था (यह उससे पहले की घटना है जब हालीवुड ने उसके नाम को बहुत आगे बढ़ा दिया और फिर उसके कुछ साल बाद अचानक मौत ने उसका अन्त कर दिया) हां तो यह मोर्नो अपनी बेतकल्लुफ़ी,

विनोदप्रिय और हंसमुख होने के कारण अपने मित्रों में अधिक प्रिय था, उस नवजवान से मिलकर बहुत ख़ुश हुआ, जो बहुत शौक़ और बेचैनी के साथ अपने भविष्य पर नज़रें जमाये हुए था। उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं यह पसन्द न करूँगा कि उसकी नई फिल्म में जिसकी शूटिंग जल्द ही शुरू होने वाली थी, उसकी मातहत्ती में काम करूँ। यद्यपि यह काम देखने में अस्थाई था, पर मैंने महसूस किया कि आसमान के द्वार मेरे लिए खुल गये हैं। मैंने कुछ लजाते, कुछ अटकते हुए कहा, जी हां, मैं तैयार हूं।

दो शानदार महीने मैंने आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त होकर उसके असिस्टेन्ट की हैसियत से बिताए। मैं उन नये तजुर्बों और अनुभवों में सिर से पैर तक डूबा हुआ था, जिसका मुझे जीवन में पहली बार तजुर्बा हो रहा था। मेरी आत्म-निर्भरता में उस समय असाधारण रूप से वृद्धि हो गयी, जब फिल्म की हिरोइन ने जो एक प्रसिद्ध फिल्म स्टार थी और अति सुन्दर भी, नौजवान असिस्टेन्ट के फ्लर्ट को अपना लिया। जब फ़िल्म का काम ख़त्म हो गया और मोर्नो को दूसरा काम करने के लिए बाहर जाना पड़ा तो मैंने उसे विदा करते हुए इजाज़त चाही। अब मुझे इस पर सन्तोष था कि मेरे मनहूस दिन ख़त्म हो चुके हैं।

इसके कुछ ही दिनों के बाद मेरे एक प्रिय मित्र अन्तोन कोह (Antonkuh) ने (जो वियाना के एक पत्रकार थे और हाल ही में थिएटर के आलोचक के रूप में बर्लिन में प्रकट हुये थे) मुझे एक फ़िल्म सिन्तराय् लिखने में शरीक होने को कहा, जो उनके सुपुर्द की गई थी। मैंने बहुत ख़ुशी से उनकी बात मान ली और मस्विदे (Script) की तैयारी में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और उसका मुआवज़ा मैंने और अन्तोनकोह ने बराबर-बराबर बांट लिया, फिर फिल्म की दुनिया में क़दम रखने की ख़ुशी में हमने बर्लिन के एक बड़े

ही फ़ैशनेबुल होटल में एक बड़ी पार्टी का प्रबन्ध किया। जब बिल आया तो मालूम हुआ कि जितनी भी रक़म मिली थी, लगभग सभी फ्रांसीसी शराबों, माही अचार (Caviar) और झींगा मछली के सालन (Lobstr) पर ख़र्च हो गई है, पर शायद मेरा भाग्य अच्छा था, हमने तुरन्त ही एक और स्टोरी लिखनी शुरू कर दी। इस कहानी का हीरो बुलजाक था। जिस दिन कहानी पूरी हुई, ठीक उसी दिन उसका ख़रीदार भी हमें मिल गया, पर हमने संभलकर क़दम रखने की वजह से इस सफलता पर कोई उत्सव नहीं मनाया बल्कि इसकी जगह पर छुट्टियां मनाने के लिए मैं Bavarian झीलों में चला गया, जहां मैंने कई हफ़्ते बिताये।

फिर एक साल के बाद, जो पूरे का पूरा मध्य यूरोप के शहरों की ख़ाक छानने और अनेकों कामों के करते रहने में बीता था। और जिसमें मैंने हर-तरह की अस्थायी नौकरियों और कामों का तुजुर्बा किया था, मैं पत्रकारिता जगत में दाख़िल होने में सफल हो गया।

युनाइटेड टेलीग्राफ़ की न्यूज़ एजेंसी

यह सन् १९२१ ई० के पतझड़ के समय की घटना है, जो आर्थिक दुर्दशा के बाद घटित हुई।.

एक शाम को जब मैं Cafe Dis westerns में थका-थका सा बैठा हुआ था, मेरा एक दोस्त मेरे पास आ कर बैठ गया। जब मैंने उसे अपनी चिन्ताओं और परेशानियों की कहानी सुनाई तो उसने एक प्रस्ताव रखा। उसने कहा तुम्हारे लिए एक बहुत अच्छा अवसर है। आमर्ट ने यूनाइटेड प्रेस आव् अमरीका की मदद से अपनी एक ख़ास न्यूज़ एजेन्सी क़ायम करने का इरादा किया है। इस एज़ेन्सी का नाम यूनाइटेड टेलीग्राफ़ होगा। स्पष्ट है कि इस संबंध में उसे अच्छी भली संख्या में सब एडीटरों की ज़रूरत पड़ेगी, अगर तुम पसन्द करो तो मैं उससे तुम्हारा परिचय करा दूं।

डा० आमर्ट बीसवीं शताब्दी की तीसरी दहाई में बर्लिन कूटनीति क्षेत्रों में अच्छी तरह जाने जाते थे, साथ ही वह कैथोलिक सम्प्रदाय की पार्टी के उच्च मैम्बर और स्वयं एक धनी व्यक्ति थे, जिसके कारण उनकी प्रसिद्धि दुगुनी हो गई थी। इन तमाम चीज़ों ने मुझे काफ़ी अपील किया, इसलिए दूसरे ही दिन मेरे दोस्त मुझे उनके दफ़्तर ले गए। उनका हम लोगों को बिठाने का ढंग ही बता रहा था कि यह अधेड़ उम्र का आदमी बड़ा ही मिलनसार और सभ्य है:—

"श्री फ़नजाल (यह मेरे दोस्त का नाम है) ने आपके बारे में मुझसे बातें की थीं, क्या आप इससे पहले भी कभी पत्रकार के रूप में काम कर चुके हैं?"

उसने पूछा।

"जी नहीं!" मैंने कहा, "इसका मौक़ा तो मुझे कभी नहीं मिला। हां, दूसरे भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में मुझे काम करने का अवसर मिला है। मैं एक हैसियत से पूर्वी यूरोप के हालात को भी अच्छी तरह जानता हूं इसके अलावा कई भाषायें भी जानता हूं।"

हालांकि बात सिर्फ़ इतनी थी कि पूर्वी यूरोप की जिस भाषा को मैं जानता था वह पोलैण्ड की भाषा थी और उस भू-भाग में जो घटनाएं घटती रही थीं, उनकी एक धुधंली-सी छाप मेरे दिमाग़ में थी, पर मैंने तै कर लिया था कि अनुचित विनम्रता दिखा कर इस क़ीमती मौक़े को किसी हालत में भी नहीं खोना है।

"ओह—यह तो बहुत अच्छी बात है, मुझे राजनीतिक स्थिति के विशेषज्ञों से सदा दिलचस्पी रही है पर इस समय पूर्वी यूरोप के मामलों के लिए कोई जानकार रखने में मैं विवश हूं।"

डाक्टर ने कुछ मुस्कराते हुये कहा—

"पर बहरहाल मैं आपको एक आरम्भिक काम दूंगा, हो सकता है कि वह आप के स्तर से नीचा हो।" डाक्टर ने मेरे चेहरे पर फैलती निराशा को देखते हुये तुरन्त ही यह बात कही।

"हां तो यह बताइये.......क्या काम है वह?"

मैंने मकान के किराये का विचार करते हुये, जो कई महीने से चढ़ गया था, बड़े चाव से पूछा।

"ठीक है, मुझे वास्तव में तो टेलीफ़ोन के लिए कुछ और आदमी चाहिएं.... ओह! आप चिन्तित न हों, मेरा तात्पर्य सुइच बोर्ड पर काम करने वालों से नहीं हैं, मैं टेलीफ़ोन के उस स्टाफ़ के बारे में बात कर रहा हूं जो प्रान्त के अख़बारों को ख़बरें भेजा करता है।'—

निश्चित रूप से यह काम मेरी बढ़ती हुई आशाओं के मुकाबले में घटिया था। मैंने डाक्टर डामर्ट की ओर देखा और उन्होंने मेरी ओर देखा, फिर एक गहरी सांस लेते और हंसते हुये मैंने कहा, "मैं इसके लिए तैयार हूं श्रीमान!"

दूसरे ही हफ़्ते मैंनें अपनी ड्यूटी संभाल ली। यह एक उबा देने वाला काम था और पत्रकारिता से जिसका मैं स्वप्न देखा करता था, उसका दूर का भी संबंध न था। बस, मेरा काम यह था Memographed काग़ज़ की शीट से ख़बरें ले कर टेलीफ़ोन द्वारा दिन में कई-कई बार प्रान्त के अनेकों अख़बारों को भेजता रहूं,जो उस न्यूज़ एजेन्सी में शामिल थे, यह बात और थी कि मैं अपने काम में आगे था और वेतन भी अधिक था।

एक महीना इसी हालत में बीता, हां महीने के अन्त में एक अप्रत्याशित सुनहरा अवसर मानो स्वयं मेरे सामने आ गया।

मैडम गोरकी

इसी साल सन् १९२१ ई० में सोवियत रूस में ऐसा अकाल पड़ा कि जिसका उदाहरण मिलना कठिन है। भूख ने लाखों आदमियों को अपने पंजे में जकड़ लिया था और लाखों उपवास से मर चुके थे। यूरोप के अख़बार बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ इस भयानक विनाश के हालात छाप रहे थे, रूस को विदेशी सहायता पहुंचाने के लिए योजनायें भी तैयार हो रही थीं। एक योजना का प्रेरक होमर था, जिसने महायुद्ध के बाद मध्य यूरोप में बहुत से 'बड़े' काम किये थे, ऐसे ही मैक्सम गोरकी रूस में एक बड़ा आन्दोलन चला रहा था और उसके प्रभावकारी वक्तव्य पूरी दुनिया को हिला रहे थे।

उसी समय यह अफ़वाहें उड़ रही थीं कि उसकी पत्नी जनमत को अधिक से अधिक अमली मदद पर तैयार करने के लिए जल्द ही

पश्चिमी और मध्य यूरोप के दौरे पर आने वाली है।

चूंकि मैं एक टेलीफ़ोनिस्ट मात्र था, इसलिए सीधे-सीधे मैं इस मन हिला देने वाली घटना में हिस्सा न ले सका, पर एक चलते हुये वाक्य ने मुझे उठा कर ज़बरदस्ती इस मंजधार में फेंक दिया जो मेरे एक मुलाक़ाती ने रास्ता चलते मुझ से बात-बात में कह दिया था। (यह मैं बताता चलूं कि अधिक लोगों से मेरा परिचय अनोखे मौक़ों पर हुआ है) मेरा दोस्त Hotle Splaned में रात का चौकीदार था। यह होटल बर्लिन के बड़े होटलों में गिना जाता था। उसने मुझसे यह कहा था कि "यह मेडम गोर्की बहुत दिलचस्प और गूढ़ औरत है, उससे मिलकर कोई यह समझ ही नहीं सकता कि यह कम्युनिस्ट है।"

"मैडम गोरकी? तुमने उसे कहां देखा??"

मेरे दोस्त ने यकायक ही अपनी आवाज़ धीमी कर दी और रहस्य के रूप में कहने लगा—

"कल ही तो शाम को हमारे होटल में आई है। और नाम बदल कर वहां ठहरी हुई है, केवल मैनेजर इस बात को जानता है। वह चाहती है कि अख़बार के रिपोर्टर उसे परेशान न करें।"

"तुम्हें ये सब बातें कैसे मालूम हुई?" मैंने पूछा।

"हम लोग होटल में जो कुछ भी होता है, सब जानते हैं।" उसने हंसते हुये मुझे बताया, "अगर हम ऐसा न करें तो क्या आप समझते हैं कि हमारी नौकरी अधिक दिनों तक बाक़ी रह सकती है?"

"अगर मैं उससे इस महत्वपूर्ण भेंट में सफल हो जाऊं तो कितनी हलचल मचा देने वाली कहानी तैयार हो सकती है।" मैंने अपने मन में सोचा, मुख्य रूप से इस स्थिति में, जबकि पूरे बर्लिन में

उसके मौजूद होने के बारे में एक शब्द भी अभी तक प्रेस में नहीं आ सका है। ऐसा विचार आते ही मैं साकार कामना बन चुका था।

"क्या किसी भी उपाय से तुम उससे मेरी भेंट करा सकते हो?" मैंने अपने दोस्त से पूछा।

"हां पर मैं कुछ नहीं कह सकता। ऊपरी तौर पर तो वह इसी पर जमी हुई है कि किसी से भेंट न करेगी, हां इतना कर सकता हूं कि जब वह रोज़ की तरह शाम के वक़्त लाबी में आकर बैठे तो तुम्हें बता दूं।"

यह सौदा बहुत अच्छा था। मैं जल्दी में अपने दफ़्तर यूनाइटेड टेलीग्राफ़ में वापस आया। लगभग पूरा स्टाफ़ उस समय घर जा चुका था, पर मेरा सौभाग्य कि न्यूज़ एडीटर अभी तक दफ़्तर में मौजूद था। मैंने उसका गला पकड़कर हिलाते हुये कहा:—

"अगर मैं तुमसे एक हलचल मचा देने वाली कहानी का वायदा करूं तो क्या तुम मुझे अपना प्रेस कार्ड दे सकते हो?"

"और किस प्रकार की कहानी होगी वह?" उसने इस ढंग से पूछा जैसे उसे विश्वास ही न हो रहा हो।

"तुम मुझे अपना कार्ड दोगे और मैं तुम्हें कहानी दूंगा, अगर मैं वायदा पूरा न करूं तो अपना कार्ड वापस ले लेना।"

अन्त में बूढ़े और अनुभवी न्यूज़ एडीटर ने हामी भर दी और बड़े ही गर्व और प्रसन्नता के साथ इस कार्ड को अपने कब्ज़े में किये हुये (जिसमें मैं यूनाइटेड टेलीग्राफ़ का प्रतिनिधि बन गया था) दफ्तर से बाहर आ गया।

इसके बाद कुछ घण्टे मुझे Splaned की लाबी में बिताने पड़े। ९ बजे मेरा दोस्त अपनी ड्यूटी पूरी करने आया और कनखियों से दरवाज़े की ओर इशारा किया, फिर स्वागत कक्ष के पीछे ग़ायब

हो गया, फिर तुरन्त ही वापस आकर मुझे बताया कि मेडम गोरकी निकल चुकी है और अगर मैं देर तक यहां बैठूं तो उसे देखने में सफल हो सकता हूं।

ग्यारह बजे के करीब फिर मैंने अपने दोस्त का इशारा पाया, जो मुझे एक औरत की ओर ध्यान दिला रहा था, जो ठीक उसी समय दरवाज़े से निकल रही थी। वह एक ठिंगनी-सी औरत थी, उम्र लगभग ४५ साल की रही होगी और उस समय काले कपड़े को बड़े ढंग से पहने हुये थी। उसके कंधों पर एक रेशमी कपड़ा पड़ा हुआ था। जो पीछे ज़मीन पर घसिट रहा था। अपनी ऊपरी साज-सज्जा में वह विशुद्ध Aristocratic type की औरत दीख पड़ती थी, इतनी ज़्यादा अरिस्टाक्रेट, कि मेरे लिए ऐसा विचार करना कठिन था कि वह "मज़दूरों के कवि" की पत्नी है, न ही वह सोवियेत यूनियन ही की निवासी मालूम हो रही थी। मैं उसके सामने आ गया और कुछ झुकते हुये बड़ी ही नम्रता और सभ्यता के साथ उससे बोला:—

"मैडम गोरकी.....!!"

एक क्षण के लिए वह निस्तब्ध हो गई, पर फिर एक सुन्दर मुस्कान ने उसकी सुन्दर काली आंखों में एक चमक पैदा कर दी, उसने जर्मन भाषा में, जिसमें Slav भाषा का प्रभाव भी था, मुझे उत्तर दिया—

"मैं मैडम गोरकी नहीं हूं, आपको ग़लत-फ़हमी हुई है। मेरा नाम यह है", (फिर उसने एक रूसी ढंग का नाम लिया, जो अब मुझे याद नहीं।)

मैं अपनी बात पर डटा रहा—

"नहीं मैडम गोरकी! मैं जानता हूं कि मुझे ग़लतफ़हमी नहीं

हुई है और यह भी मुझे मालूम है कि आप पत्रकारों से बचना चाहती हैं, पर आप के कुछ मिनट मेरे लिए बड़े मूल्यवान हैं। पत्रकारिता जगत में मुझे अपनी जगह बनाने के लिए यह पहला मौका मिल रहा है और मुझे यकीन है कि आप यह पसन्द न करेंगी कि यह मौका बर्बाद हो जाये।"

मैंने कार्ड उसके सामने बढ़ा दिया और बातचीत जारी रखी—

"मैंने इसे आज ही प्राप्त किया है और अगर मैडम गोरकी के कुछ मिनट लेने में असफल हो जाता हूं तो यह मुझे आज ही वापस करना होगा।"

वह मुस्कराती रही और कहने लगी:—

"अगर मैं आपकी इज़्ज़त की क़सम खाकर कहूं कि मैं मैडम गोरकी नहीं हूं तो आप मान लेंगे?"

"अगर आप किसी चीज़ के लिए भी इज़्ज़त की क़सम खायेंगी तो मैं उसे मान लूंगा।" मैंने कहा। वह एकदम से हंस पड़ी। फिर बोली:—

"आप बिल्कुल एक छोटा-सा बच्चा मालूम होते हैं। अब मैं अधिक आपसे झूठ न बोलूंगी, आप ही जीते, पर हम अधिक देर तक आंगन में बात नहीं कर सकते। क्या आप मुझे मेरे कमरे में साथ में चाय पीने में हर्ष प्रदान करेंगे?"

और इस तरह मुझे मैडम गोरकी के साथ चाय पीने में हर्ष प्राप्त करने का अवसर दिया गया। उसने मेरे साथ वहां एक घंटा बिताया। वह अकाल की हृदयविदारक घटनाओं और मन हिला देने वाले दृश्यों को पूरे विस्तार के साथ बयान करती रही। आधी रात के बाद जब मैंने उसे विदा किया तो मेरी जेब में काग़ज़ों का एक छोटा-सा पुलिन्दा मौजूद था।

रात क़ी ड्यूटी वाले सब एडीटरों ने इतनी देर रात में मेरे नित्य के प्रतिकूल आने को आश्चर्य के साथ नोट किया, पर मैं उन्हें यह कहानी सुनाने का कष्ट उठाना नहीं चाहता था, इसलिए कि यह काम मुझे तुरन्त ही करना था। मैंने आफ़िस में बैठकर हर संभव जल्दी के साथ उसे लिखना शुरू किया और एडीटर की मंज़ूरी के लिए बिना अर्जेन्ट तरीके पर मैंने यह सारी रिपोर्ट प्रान्त के तमाम अख़बारों को, जो हमसे संबंधित थे भिजवा दी।

दूसरे दिन सुबह यह ख़बर किसी तरह भी बम से कम न थी। उस समय जब कि बर्लिन के बड़े-बड़े अख़बारों में मैडम गोरकी के बारे में एक इशारा भी न था, प्रान्त के वे तमाम अख़बार, जो हमारी एजेन्सी से ख़बरें हासिल करते थे, अपने पहले पेज पर मैडम गोरकी से यूनाइटेड टेलीग्राफ़ प्रतिनिधि का इन्टरव्यू छाप रहे थे।

एक टेलीफ़ोनिस्ट ने प्रथम श्रेणी में बड़ी सफलता प्राप्त की थी।

उसी दिन तीसरे पहर को डा० डामर्ट के आफ़िस में सब एडीटरों की मीटिंग हुई और मुझे उसमें बुलाया गया। पहली वार्ता के बाद, जिसमें एडीटर की मंज़ूरी के बिना किसी अहम अख़बारी बयान को सीधे-सीधे भेजने से मना किया गया था, मुझे बताया गया कि मैं रिपोर्टर के पद पर पहुंचा दिया गया हूं।

और इस तरह अन्त में मैं पत्रकार हो ही गया।

वे वर्ष बड़े विचित्र थे

मध्य यूरोप के लिए इस शताब्दी की तीसरी दहाई के ये कुछ वर्ष बड़े विचित्र थे, नैतिक व सामाजिक अराजकता व अशांति की स्थिति हर ओर छाई हुई थी और इसने इन्सान में एक भयानक आशावाद को जन्म दिया था, जिसे वह नाच-गाने फ़ोटोग्राफ़ी, थियेटर आर्ट और कलचर के स्वभाव और उसके विकास के बारे में बड़े ही क्रान्तिकारी प्रश्नों व खोजों की शक्ल में प्रकट कर रहा था, पर एक आध्यात्मिक शून्यता, इन मजबूर सवालों की पृष्ठभूमि (Back-ground) में हमेशा मौजूद रहती थी। मनुष्य के भविष्य की ओर से बढ़ती हुई निराशा के कारण उसमें एक प्रकार का "जंगलीपन" पैदा हो गया था।

कम उम्र होने के बावजूद मुझसे यह बात छिपी हुई न थी कि लड़ाई के बाद अव्यवस्थित व बेचैन यूरोप के हालात सन्तोषप्रद न थे। इस संसार का उपास्य जैसा कि मैंने देखा,कोई आध्यात्मिक उपास्य न था, बल्कि सुख वैभव ही उसका उपास्य बन गया था।

इसमें सन्देह नहीं कि वहां ऐसे भी लोग थे जो धार्मिक चेतना व दृष्टिकोण रखते थे और अपने नैतिक विचारों और वर्तमान युग की आत्मा में मेल पैदा करने के लिए बड़ी हद तक बेचैनी की कोशिशें में लगे हुये थे, पर ऐसे लोगों की तायदाद बहुत कम थी। ऐसा जान पड़ता था कि एक साधारण यूरोपीय व्यक्ति, भले ही वह डिमोक्रेसी का दावेदार हो या कम्युनिस्ट मज़दूर या विचारक, केवल एक ही विचार धारा को जानता है और वह है भौतिक प्रगति

की पूजा, यह विश्वास कि संसार में इस जीवन को ज़्यादा से ज़्यादा सुखी व आनन्दमय बनाने के अलावा और कोई उद्देश्य नहीं है या जैसा कि इस ज़माने में कहा जाता था, प्रकृति से मुक्त जीवन का निर्माण ही मूलध्येय है। इस विचारधारा के पूजा घर, बड़े-बड़े कारख़ाने, शानदार सिनेमाघर, केमिकल लेब्राट्रीज़, नाच घर और हाइड्रो इलेक्ट्रिक वर्क्स की बड़ी-बड़ी योजनाएं थीं, इसके पोप और पुरोहित, बैंक के उपभोक्ता, इन्जीनियर, नेता, सिनेमा के सितारे आंकड़ों के विशेषज्ञ, उद्योगी व पाइलेट थे। इस आध्यात्मिक विकलता व विफलता का नतीजा यह था कि 'पुण्य-पाप' की परिभाषा पर 'सहमति' का वजूद था ही नहीं, सामूहिक व नैतिक समस्यायें मसलहत के अधीन होकर रह गई थीं। शहर की अच्छे वस्त्रों में सजी-सजाई नव-जवान औरत अपने को हर व्यक्ति को सुपुर्द करने पर तैयार थी जब उसे इसकी दावत दी जाए। सत्ता व विलासिता की इस भूख ने पश्चिमी समाज को कई हथियार बन्द और आपस में टकराने वाली पार्टियों में बांट दिया था, जहां हरेक ने स्वार्थों व मसलहतों के टकरा जाने के मौक़े पर एक दूसरे को कुचल देने का इरादा कर रखा था।

कलचर के मैदान में एक ऐसा मानव-आदर्श खोज निकाला गया था जिसकी पूरी श्रेष्ठता व्यावहारिक लाभ में थी और उसके सत्य-असत्य की एकमात्र कसौटी थी। मैंने देखा कि हमारी ज़िन्दगी कितनी बेचैन, नीरस और नापसन्दीदा हो गई है, मनुष्यों के आपसी सहयोग व मेल-मिलाप की कितनी कमी है, हमारी दिलचस्पी अपने सम्प्रदाय और अपनी पार्टी में रह गई है, प्राकृतिक भावनाओं से हम कितनी दूर जा पड़े हैं।

मैंने यह सब अपनी आंखों से देखा, पर यह विचार मेरे मन में नहीं आया और शायद मेरी तरह किसी और के मन में भी नहीं आया

होगा कि इन सवालों का जवाब भी मिल सकता है या कम से कम आंशिक बातों में (यूरोप के सांस्कृतिक अनुभवों का सहारा लिये बिना) इसके जवाब दिये जा सकते हैं। यूरोप हमारे सोच-विचार का आरम्भ भी था और अन्त भी।

चीन की लाउत्सी (Lao-Tse.) विचार-धारा भी, जिसका ज्ञान मुझे १७ साल की उम्र में हुआ था, भविष्य के बारे में मेरी राय में कोई तबदीली न पैदा कर सकी।

लाउत्सी विचार-धारा से परिचय

सच पूछिये, तो वह एक खोज ही थी, मैंने जीवन में कभी लाउत्सी का नाम भी न सुना था, न उसके विचार-धारा के बारे में मेरे दिमाग़ में पहले से कोई बात मौजूद थी, पर वियना की एक लाइब्रेरी में मुझे उसकी एक किताब (Tao-Te. King) का जर्मन अनुवाद संयोग से मिल गया। पुस्तक और लेखक के अनोखे नामों ने खामखाही मुझे अपनी ओर खींच लिया। जब मैं उसे उलट-पलट रहा था तो मेरी नज़र उसके एक छोटे से अध्याय पर पड़ी। मैंने देखा कि उसमें बहुत-सी गुर की बातें हैं, मैंने अपने देह में यकायकी झुरझुरी-सी महसूस की और ख़ुशी की लहर में डूब कर उस पुस्तक में ऐसा खोया कि मुझे दाहिने-बायें की भी ख़बर न रही। मैं बिल्कुल गूंगा बन गया था और पुस्तक मेरे हाथ में थी।

मैंने उसमें मानव-जीवन को शान्त और ठहराव के साथ पाया, ऐसा जीवन जो हर किस्म के झगड़ों-बखेड़ों से पाक था, जिसका लालन-पालन ऐसे शान्तिमय हर्ष में हुआ था जो हर मनुष्य के हृदय की पहुंच में है, बशर्ते कि वह अपनी इस विशेष मुक्ति को प्राप्त करना चाहता है।

यह थी हक़ीकत जिसे मैंने पहचान लिया था, हक़ीक़त जो शुरू से ही हक़ीकत है, इसके बावजूद कि हम उसे भूल चुके हैं, आज

मैंने उसे देख लिया था, सौभाग्य और हर्ष की भावना के साथ उसे पा लिया था। ऐसे हर्ष की भावना के साथ जो मनुष्य की एक लम्बी जुदाई के बाद अपना घर देख कर होती है।

उस दिन से लाउत्सी (Lao-Tse) बराबर मेरे लिए एक ऐसा रोशनदान (Window) बन गया, जिससे मैं उस जीवन को देख सकता था जो कांच की तरह उजला और तंगी व भय से बहुत दूर था, जो इस बचकानी भूलों से ख़ाली था जिसके हम कभी-कभी शिकार होते रहते हैं और वह यह कि हमें हर क़ीमत पर भौतिक प्रगति द्वारा अपने वजूद की हिफ़ाज़त करनी है। इस बात से यह विचार कदापि पैदा न होना चाहिए कि मैं भौतिक प्रगति को पाप समझता था, या अनावश्यक जानता था, इसके विपरीत मैं उसे अच्छा और ज़रूरी समझता था, पर इसके साथ ही मुझे इस बात पर यक़ीन था कि भौतिक उन्नति मनुष्य के भाग्य और हर्ष को बढ़ावा देने में सामूहिक रूप से, उस समय तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि उसमें हमारे आध्यात्म का हाथ न हो और सदा से बाक़ी, सदा रहने वाली सच्चाइयों पर ईमान न लाया जाए, पर आध्यात्म का उसमें टच कैसे हो और इन सच्चाइयों का रूप क्या हो? यह बात पूरी तरह मुझ पर स्पष्ट न हुई थी।

यह बड़ी नासमझी होती, अगर मैं लोगों से इस बात की आशा किए बैठा होता कि वे केवल एक व्यक्ति के उपदेशों से अपना उद्देश्य और अपनी मंज़िल बदल देंगे और अपनी कोशिश का रुख़ मोड़ देंगे, जैसा कि लाउत्सी का तरीक़ा था, जो यह कहता था कि मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन के लिए अपने दिल के दरवाज़े खोल दे, इसके बजाए कि उसे उचक लेने या उस पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश में उसके लिए कठोरता व सख़्ती का कारण बने, केवल उपदेश, केवल बुद्धि की मांग स्वाभाविक रूप से पश्चिमी सोसायटी

के आध्यात्मिक रुझानों में कोई तबदीली नहीं पैदा कर सकती थी, उसके लिए तो एक नये दिली ईमान और उन बुनियादों के सामने हथियार डालने की ज़रूरत थी, जिसमें "अगर और लेकिन" की गुंजाइश नहीं है, पर यह ईमान मिलता कहां से?

मुझे यह विचार कभी नहीं हुआ कि लाउत्सी की ताक़तवर चुनौती का ध्येय केवल एक सामयिक और परिवर्तन योग्य मानसिक रवैया नहीं था, बल्कि कुछ मूल विचार धाराएं भी थीं, जिन से यह रुझान या रवैया पैदा होता है। इससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि पश्चिमी कभी उस आध्यात्मिक शक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता है, जिसे लाउत्सी सामने लाता है, हां, वह मन पर पत्थर रखकर अपनी तमाम आध्यात्मिक व नैतिक बुनियादों पर संदेह करने के लिए तैयार हो, तो ऐसा हो सकता है।

उस समय मेरे बस में नहीं था कि किसी नतीजे पर पहुंच सकूं और चीनी विचार-धारा की चुनौती को, उसके तमाम अर्थों व तक़ाज़ों और उसकी पूरी महत्ता के साथ समझ सकूं। इतनी बात ज़रूर है कि उसके सन्देश ने मुझे झकझोर कर रख दिया था। उसने मेरे सामने ज़िन्दगी का एक नक़्शा रखा था, जिसे अपना कर मनुष्य अपने भविष्य और परिणाम पर विजय प्राप्त कर सकता है और उसके नतीजे में अपने मन व आत्मा से मेल खा सकता है। पर चूंकि यह बात साफ़ न थी कि यह विचार धारा सोच-विचार की मंज़िलों से आगे बढ़ सकेगी और पश्चिमी जीवन-व्यवस्था पर लागू की जा सकेगी इसलिए मैंने धीरे धीरे इस पर सन्देह करना शुरू किया कि व्यावहारिक रूप से इसका लागू किया जाना भी संभव है या नहीं? मैं इस स्थिति में नहीं था कि यह फ़ैसला कर सकूं कि क्या पाश्चात्य जीवन अपने आधारों के एतबार से एक ही सम्भव रास्ता है या यों कह लीजिए कि और लोगों की तरह मैं भी पश्चिम के अहंकारमय सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बिल्कुल घुल-मिल गया था।

और इसी तरह लाउत्सी....यद्यपि उसकी आवाज़ कभी खामोश न हुई.... धीरे-धीरे पीछे हटता गया और अन्त में तो चिन्तनपूर्ण भ्रमों व विचारों के पीछे भी पड़ गया और समय के बीतते रहने के साथ उसकी क़ीमत मेरे लिए कविताओं की एक सुन्दर पुस्तक से अधिक न रह गई। मैं वक़्त बेवक़्त उसे पढ़ लेता। और हर बार मुझे एक अच्छी आशा का एहसास होता, पर सदा मैं पुस्तक को एक ओर रख देता। मुझे इसका अफ़सोस था कि उसमें गुम्बद के भीतर रहकर सपना देखने की बात थी, यद्यपि मैं सदा यह महसूस करता था कि मैं इस तीखी, छली-कपटी दुनिया से पूरी ताक़त के साथ लड़ाई लड़ रहा हूं, पर कल्पनाओं के गुम्बद में जीवन बिताने के लिये मैं भी तैयार न था, साथ ही साथ मैं उन उद्देश्यों और कोशिशों के लिए अपने भीतर कोई उत्साह व उमंग नहीं पाता था जो यूरोप की संस्कृति व सभ्यता पर छाई हुई थीं और तीखे व तेज़ मतभेदों की भनभनाहट के साथ उसके लिट्रेचर आर्ट और राजनीति पर छा गए थे। इन उद्देश्यों या कोशिशों के सिलसिले में जितने भी मतभेद हों, पर एक बात पर सभी सहमत थे और वह थी यह भ्रान्त कल्पना कि अगर जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियां (राजनीतिक व आर्थिक) बेहतर और स्वस्थ हों तो आज की अव्यवस्था व अराजकता का अन्त हो सकता है। ठीक इसी ज़माने में मैं भी बड़ी तेज़ी से महसूस करने लगा था कि केवल भौतिक उन्नति इस समस्या को सुलझा नहीं सकती, यद्यपि मैं बिल्कुल नहीं ज़ानता था कि इसका क्या हाल हो सकता है?

इसका कारण यह न था कि मुझे ख़ुशियां न मिली थीं मैं अपने जीवन के किसी युग में भी निराश और एकान्तप्रिय नहीं रहा, बल्कि उस ज़माने में बड़ी ही मुस्तैदी और कामियाबी के साथ अपने करने के कामों में लगा हुआ था और उसी ज़माने में यूनाइटेड टेलीग्राफ़ की

नौकरी से (जहां मैं कई भाषाओं के जानने के कारण स्केनेडिनेवयन (Scandinavian) न्यूज़ सर्विस का इंचार्ज बना दिया गया था) यह बात मेरे सामने आई कि उसने मेरे सामने एक लम्बी-चौड़ी दुनिया के दरवाज़े खोल दिये हैं। मेरे अधिक मित्र प्रसिद्ध लेखक, कलाकार, पत्रकार, ऐकटर, प्रोड्यूसर थे, इसके अलावा ऐसे अनेकों लोगों से मेरी भेंट और मैत्री थी जो काफी मशहूर थे और मैं अपनी राय को (एक राय के एतबार से, मशहूर होने के एतबार से नहीं) कैसे भी उनकी राय से कम समझने पर तैयार नहीं था। इसके साथ अनेकों बार मेरे जीवन में क्षणिक व सामयिक रोमान्स के मरहले भी आये, जीवन मेरी नज़र में बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक था, मैं बिल्कुल भी निराश न था और न ही मेरा मन बैठा था।

पर, हां अपने मन की गहराइयों में बड़ा ही बेचैन व असन्तुष्ट था और मुझे अपने जीवन का सही उद्देश्य मालूम न था। यह था कि जवानी के दम्भ में मुझे इसका विश्वास था कि अपने उद्देश्य को मालूम करने में किसी दिन अवश्य ही सफल हूंगा। तात्पर्य यह कि ऐसे ही मैं इत्मीनान और बेइत्मीनानी, शान्ति और अशान्ति के बीच झूला झूलता रहा। इन विचित्र वर्षों में यही हाल और दूसरे नौजवानों का भी था। इनमें से कोई भी दीन व दु:खी न था, पर मुश्किल ही से कोई ऐसा मिलता था जो सचमुच सुखी व सन्तुष्ट हो और उसे अपने खुशी और सन्तुष्ट होने का एहसास भी हो। ठीक है मैं असन्तुष्ट और बेचैन नहीं था; पर अपने साथियों और दोस्तों की आर्थिक व राजनीतिक आशाओं व कामनाओं का साथ न दे सकने के कारण मुझ में दिन बीतते रहने के साथ, यह एहसास बढ़ता ही गया कि मैं उनमें का एक व्यक्ति नहीं हूं। इसके साथ यह अस्पष्ट इच्छा भी शामिल थी कि काश मैं व्यक्ति होता, पर किस पार्टी का? किस समाज का?

मध्य पूर्व की यात्रा

एक दिन सन् १९२२ की वसन्त ऋतु में 'मुझे' अपने मामा डोरियां (Dorian) का पत्र मिला। डोरियां मेरे मामा थे, पर हमारे ताल्लुकात मामा भांजा से ज्यादा दोस्ती के थे। वह फ्राइड के एक चेले और मनोवैज्ञानिक चिकित्सक थे और उस समय बैतुलमक़्दिस के मानसिक रोगों के अस्पताल में एक जिम्मेदार अफसर थे। वह Zeonist[1] न थे और न ही इन यहूदियों के निश्चयों और योजनाओं से उन्हें कोई हमदर्दी थी, पर चूंकि अरबों से भी उनके कोई खास ताल्लुकात न थे इसलिए उनको उस माहौल में, जहां कमाने व खाने के अलावा और कोई काम न था, अकेलेपने और एकान्त का एहसास होना जरूरी था, उनकी शादी भी अभी नहीं हुई थी, इसलिए उन्होंने सोचा कि सम्भव है मैं किसी हद तक उनका साथ दे सकूं। अपने पत्र में उन्होंने वियाना के उन सुन्दर दिनों का भी उल्लेख किया, जिसने उन्हें मनोविज्ञान की एक नई दुनिया में पहुंचा दिया था। पत्र के अन्त में उन्होंने यह लिखा, कुछ महीनों के लिए यहां आ जाओ, कुछ दिन साथ रहें, तुम्हारे आने-जाने का पूरा खर्च मेरे जिम्मे होगा। जब तुम्हारा मन कहे बर्लिन वापस चले जाना। यहां हम पत्थर के एक अच्छे मकान में, जो गर्मी में ठंडा रहता है, रहेंगे। मेरे यहां बहुत सी पुस्तकें भी हैं, अगर तुम प्राकृतिक दृश्यों से जो बहुत है ऊब जाओ, तो पुस्तकों से मन बहला सकते हो।"

मैंने बड़ी ही तेजी के साथ यहां से चलने का फैसला कर लिया। मेरा ऐसा ही स्वभाव था और मेरे अहम से अहम फैसले इसी तेजी के साथ होते थे। दूसरी सुबह मैंने डाक्टर डामर्ट को सूचना दी कि कुछ बहुत जरूरी अमली मसलहतों के कारण मुझे मध्य पूर्व की यात्रा

---

१. Zeonist यहूदियों के उस कट्टर गिरोह का नाम है जो यहूदी-देश की हिमायत करता है और कट्टर विचार रखता है।

करनी पड़ रही है और इस उद्देश्य से मुझे एजेन्सी को एक हफ़्ते के अन्दर छोड़ देना है।

अगर कोई व्यक्ति उस समय मुझसे यह कहता कि इस्लामी दुनिया से मेरा परिचय छुट्टी बिताने से अधिक आगे की बात न होगी और वह मेरे जीवन का बड़ा ही क्रान्तिकारी मोड़ होगा, तो मैं इस बात को हंस कर उड़ा देता और इसे बड़ा ही ग़लत अन्दाज़ा समझता। इसका कारण यह न था कि मैं उन लोगों में से हूं जो उन देशों की आकर्षक चीज़ों से, जिसके साथ मेरे दिमाग़ में (और यूरोपीय लोगों की तरह) 'अलिफ़ लैला' की कल्पना आ जाती थी, प्रभावित नहीं होते। ऐसी बात न थी, मैं तबदीलियों, नई-नई आदतों व तौर-तरीक़ों और अच्छी मुलाक़ातों का सदा से ही शौक़ीन रहा हूं, पर जहां तक आध्यात्मिक जगत के विचरण का सम्बन्ध है यह बात मेरी कल्पना में भी न थी। मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि यह यात्रा मेरे निज के लिए कोई महत्व रखती है।

इससे पहले जो मेरे विचार व कल्पनायें थीं, उन्हें मैं स्वाभाविक रूप से पश्चिमी जगत की विचार-धारा का परिणाम समझता था। मेरी कोशिश यह थी कि सभ्यता के जिस वातावरण के भीतर मैं जीवन बिता रहा हूं, उसी के भीतर रहते हुये मुझे अधिक चेतना और अधिक उदारता प्राप्त हो। मैं अपने विचार व चेतना से हटकर कोई बात सोच ही कैसे सकता हूं। मैं बहरहाल एक पश्चिमी नव-जवान था, जिसकी नस-नस में यह विश्वास खूब होता है कि इस्लाम और उसकी शिक्षाओं की हैसियत मानव-इतिहास के एक रंगीन बग़ली रास्ते से अधिक नहीं, जो आध्यात्मिक व नैतिक किसी भी दृष्टिकोण से कुछ अधिक मूल्यवान व मान्य नहीं, इसलिए न सिर्फ़ यह कि उसे उस दर्जे पर नहीं रखा जाता था, जिसका वह हक़दार था, बल्कि उसे दूसरे दो धर्मों ईसाई मत और यहूदी मत से (जिसे पश्चिम गम्भीरता

के साथ विचार करने योग्य समझता है) तुलना करने योग्य भी नहीं समझा जाता था।

इस्लामी सिद्धान्तों के मामले में यूरोप के इस अस्पष्ट ग़लत दृष्टिकोण को लिये हुये (यद्यपि वह स्वाभाविक रूप से उन प्रत्यक्ष बातों के खिलाफ न थी, जिन्होंने मुसलमानों के जीवन में एक प्रकार का रोमांस और खिंचाव पैदा कर दिया है।) मैंने सनं १९२२ की गर्मियों में यह यात्रा शुरू की, अगर मैं अपने साथ न्याय करते हुये यह कहने से बचूं कि मैं अपनी निजी भावनाओं में डूबा हुआ था तो इतना जरूर कह सकता हूं कि मैं इस पश्चिमी सांस्कृतिक बुद्धिवाद् का शिकार जरूर था जो अहं का ग्रास थी और ऐसी ही हर समय में पश्चिम की विशेषता रही है।

पूरब की यात्रा

अब मैं पूरब की यात्रा की नीयत से समुद्री जहाज़ पर सवार था। पहले रूमानिया के एक स्थान Constanza पहुंचा, वहां से एक बर्फ़ पड़ रही सुबह में काला सागर में आ गया। एक लाल नाव पानी को चीरती हुई हमारे जहाज़ के पास से गुज़री, जिसे हम देख सके। यह इस बात का पता दे रही थी कि सूर्य जल्द ही धुंध के पीछे से उदय होने वाला है। उसकी एकाध पीली और कोमल किरण समुद्र-तल पर पड़ने लगी, उसमें कुछ पीतल का सा पीलापन और कड़ाई दीख पड़ रही थी। इसके दबाव से दूध जैसी उजली बर्फ़ की तहें समुद्र-तल पर जम गईं फिर वे सूर्य की किरणों के दाहिने बायें इस तरह छटने लगीं जैसे चिड़ियां अपने परों को खोल रही हों।

फ़ादर फ़ेलिक्स

"Good Morning"

एक भारी आवाज़ ने मुझे चौंका दिया। जब मैं पीछे मुड़ा तो मैंने उस काले चिस्टर को पहचान लिया जिसे पिछली रात मेरे साथी ने पहन रखा था। वह मीठी मुस्कान भी मुझे याद आ गई जिससे मैं परिचय के कुछ ही घन्टों के बाद घुल-मिल गया था। यह ईसाई पादरी थे– आधे फ़्रान्सीसी, आधे पोलिस्तानी। वह स्कन्दरिया के एक कालेज में इतिहास के प्रोफ़ेसर थे और छुट्टी बिताकर वापस हो रहे थे। जहाज़ पर सवार होने के बाद देर तक रात में उनके साथ दिलचस्प बैठकें रही थीं। यद्यपि यह बात बहुत जल्द स्पष्ट हो गई थी कि हम दोनों के दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर है, फिर भी कुछ ऐसी बातें थीं जो

हम दोनों के लिए समान रूप से दिलचस्पी का कारण बनी हुई थीं। मुझे यह जानते देर न लगी कि मैं एक बुद्धिजीवी और साथ ही हंसमुख व्यक्ति के सामने खड़ा हूं।

"Good Morning फ़ादर फ़ेलिक्स (FELIX) तनिक समुद्र को तो देखिये।" मैंने उत्तर दिया।

सूर्य निकलने की वजह से काफ़ी रोशनी फैल गई थी और समुद्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग दीख पड़ रहे थे। हम लोग जहाज़ के अगले हिस्से में खड़े थे। सुबह की मन को लुभाने वाली ठंडी हवा चल रही थी। बेअख्तियार मेरा मन चाहा कि इन तमाम चीजों को अपने भीतर उंड़ेल लूं और डूबती-उभरती लहरों में रंगों के खेल को स्वयं अपने भीतर बिठा लूं—नीला, हरा, भूरा—पर मैं इस दिलचस्प खेल को, जो न जाने कब से एक विशेष ढंग से जारी हैं, क़ाबू में न ला सकने के कारण जल्द ही शारीरिक थकन महसूस करने लगा।

जब मैं समुद्र को अपने इस दृष्टिकोण से देख रहा था तो उसी समय कुछ क्षणों के लिए मुझे महसूस हुआ कि इन तमाम रंगा-रंगियों का एक पूर्ण चित्र लेने की सम्भावना मौजूद है, पर ध्यान को एक बिन्दु पर केन्द्रित करने और एक अर्थ को दूसरे अर्थ से जोड़ने से, अलावा कुछ बिखरे व फैले हुये चित्रों के कुछ हाथ न लगा, हां, इस मानसिक अशान्ति के नतीजे में एक विचार स्पष्ट रूप से मेरे मन में आया (या ऐसा कहना चाहिये कि महसूस हुआ) और स्वयं ही यह वाक्य मेरी जुबान पर आ गया कि, "जो व्यक्ति इन तमाम चीजों को अपने एहसास से समझ सकता है वह शायद अपने भाग्य को भी वश में कर सकता है।"

"मैं आपका भाव समझ गया।" फ़ादर फ़ेलिक्स ने जवाब दिया, "पर आदमी को अपने भाग्य को वश में करने की चिन्ता ही क्यों

करनी चाहिए? क्या कठिनाइयों से दूर भागने के लिए? क्या यह बेहतर नहीं है कि आदमी अपने भाग्य की चिन्ता से दूर रहे?"

"इस समय आप एक "बौद्ध" की शैली में बात कर रहे हैं, फ़ादर फ़ेलिक्स! क्या आप भी यही समझते हैं कि "मिट जाना" ही हर जीव का "ठिकाना" है?"

"ओह—कभी नहीं, हरगिज़ नहीं, हम मसीही जीवन और भावों के पतन या मिट जाने को मानते ही नहीं। हम तो बस इतना भर चाहते हैं कि इस जीवन को भौतिकता की सीमा से निकाल कर आत्मा की 'व्यापकता' की ओर ले जायें।"

"पर क्या यह इस जीवन का इन्कार नहीं है?"

"नहीं, मेरे नौजवान दोस्त! यह जीवन का इन्कार नहीं है बल्कि यही सच्चा जीवन और शान्ति का एक ही रास्ता है।"

मैंने नज़र उठाई, राम बास्फोरस ऐसा लग रहा था मानो पानी का एक चौड़ा रास्ता हो, और उसके दोनों ओर पथरीले टीले हों, बड़े-बड़े महल, मन-मोहक बाग़, बड़े लम्बे और काले सर्व और पुराने Jawssary क़िले, चुने हुये पत्थरों के बड़े बड़े ढेर, जो पानी पर ऐसे लटक रहे थे, जैसे शिकारी चिड़ियों के घोंसले।

मेरे कान से फ़ादर फ़ेलिक्स की आवाज़ टकराई जो अपनी बात कहे जा रहे थे। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे यह आवाज़ काफ़ी फ़ासले से आ रही है।

"तनिक सोचो तो, मनुष्य की रुचि और इच्छा का सबसे बड़ा रहस्य स्वर्ग है। तुम हर धर्म में इसका विचार पाओगे, भले ही इसका रूप रेखा भिन्न-भिन्न हो, पर सार सब का एक ही है और वह है वही परिणाम से भागने की इच्छा। स्वर्ग में मनुष्य का कोई परिणाम न होगा, वह स्वर्ग, जिसे उसने इस शरीर की मांगों के

सामने झुककर और पहला गुनाह करके प्राप्त किया है। आत्मा शरीर की मांगों से (जो वास्तव में मानव-प्रकृति में पशुता के बचे-खुचे चिन्हों का एक रूप है) टकराती है। मनुष्य में उसका मूल तो केवल उसकी आत्मा है। मन ज्योति की ओर लपकता है, जो आत्मा है, पर पहले गुनाह की वजह से उसके रास्ते में शरीर की भौतिक मांगों और इच्छाओं की पैदा हुई रुकावटें सामने आ जाती हैं, इसीलिये मसीही शिक्षा का ध्येय ग्रह है कि मनुष्य को उसके नश्वर शारीरिक वजूद से आज़ाद कर आध्यात्मिक विरासत से भिज्ञ कराया जाये।"

दो जुड़वां गुम्बदों वाला क़िला "रूमी हिसार" हमारी निगाहों के सामने था। उसकी एक दीवार इतनी झुक गई थी कि क़रीब था कि समुद्र-तल से छू जाये। किनारे पर क़िलों की दीवारों का एक गोला-सा बना हुआ था, उसके भीतर एक छोटी-सी शान्त तुर्की समाधि थी।

"हो सकता है, फ़ादर फ़ेलिक्स! मैं महसूस करता हूं और इस नस्ल के बहुत से लोग यही महसूस करते हैं कि मनुष्य ने आत्मा और शरीर का भेद करने में कोई ग़लती की है। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि शरीर की मांगें और संसार की तरक़्क़ियां हर भलाई से ख़ाली हैं। मेरा रुझान इसके उलट है। मैं एक ऐसे जीवन का सपना देख रहा हूं— यद्यपि मुझे स्वीकार है कि मैं इसे अच्छी तरह से समझ नहीं सका हूं— जिसमें मनुष्य शरीर और आत्मा सहित एक ऐसे पूर्ण और ठोस व्यक्तित्व को बनाने की कोशिश करे जहां आत्मा और भावनाओं में कोई टकराव न हो और वे एक दूसरे के दुश्मन न हों, जिससे कि मनुष्य अपने एकत्व को पा सके और अपने परिणाम और भाग्य से भिज्ञ हो और ऊंचाई पर पहुंचने के बाद यह कह सके:—

"मैं स्वयं ही अपना भाग्य हूं।"

"यूनानियों ने यही स्वप्न देखा था।" फ़ादर फ़ेलिक्स ने जवाब दिया, "पर देखो तो यह स्वप्न, उनको कहां-कहां भटकाता रहा—आर्फ़िक़ (Orphic) और देवनीसियन (Dionysian) रहस्यों में, अफ़्लातून और प्लेटू के झगड़ों में, फ़िर अन्त में उन्हें भी मानना पड़ा कि आत्मा और शरीर दो प्रतिकूल वस्तुयें हैं! आत्मा को शरीर के बन्धनों से आज़ाद कराना, यही मुक्ति की ईसाई धारणा है, खुद-खुदा के सूली पर चढ़ जाने का यही मक़्सद था।"

फिर यकायकी बात ख़त्म करके वह मेरी ओर मुड़े और पलक झपका कर कहने लगेः—

"ओह, मुझे सदा ही पादरी नहीं बने रहना चाहिए, माफ़ कीजियेगा, मैं आपको उस विश्वास का उपदेश देने लगा जो आपके विश्वास से बिल्कुल भिन्न है।"

"लेकिन, मेरा तो कोई विश्वास ही नहीं है।" मैंने ज़ोर देते हुये कहा।

"धर्म का यही अभाव या अधिक स्पष्ट शब्दों में ईमान का न पाया जाना हमारे ज़माने की बुनियादी कमज़ोरी है" फ़ादर फ़ेलिक्स ने जवाब दिया, "हम और तुम जैसे बहुत से लोग इस झूठे भ्रम में पड़े हुये हैं जो हज़ारों वर्ष से चला आ रहा है, यह भ्रम कि केवल बुद्धि ही मनुष्य की कोशिशों का रुख़ तै कर सकती है, पर यह जानना चाहिए कि बुद्धि स्वयं आध्यात्मिक ज्ञान को नहीं पहुंच सकती, इसलिए कि उसे अपने भौतिक उद्देश्य की पूर्ति ही से छुट्टी नहीं मिलती। ईमान और सिर्फ़ ईमान हमें इस व्यस्तता से बचा सकता है।"

"ईमान?" मैंने कहा, "आप ईमान बार-बार कह रहे हैं और

मैं उसका अर्थ नहीं समझ पा रहा हूं। आप कहते हैं कि बुद्धि द्वारा ज्ञान का पाना और पवित्र जीवन बिताना असम्भव है, इसके लिए ईमान की ज़रूरत है, यहां तक मैं आपकी बात से सहमत हूं, पर सवाल यह है कि अगर मनुष्य के भीतर ईमान सिरे से मौजूद ही न हो तो वह क्या करे, क्या इसका कोई तरीक़ा है? मेरा मतलब है कि क्या कोई ऐसा खुला हुआ रास्ता मौजूद है जिस पर चलकर हम जब चाहें ईमान तक पहुंच सकते हैं?"

"मेरे प्यारे दोस्त! केवल इरादा व निश्चय ही काफ़ी नहीं है। यह रास्ता अल्लाह की कृपा व दया से खुलता है, फिर भी जो व्यक्ति इबादत करते हुये सीधे रास्ते की निष्ठा के साथ मांग करेगा, उसके लिए यह दरवाज़ा खुला हुआ है।"

"इबादत करते हुये? लेकिन जब उसमें ईमान ही न होगा तो वह इबादत ही क्यों करेगा? फ़ादर फ़ेलिक्स?" मैंने बात बढ़ाते हुये आगे कहा, "अगर कोई व्यक्ति इबादत करता है तो इसका अर्थ यही होता है कि वह ख़ुदा के वजूद पर जिसकी वह इबादत कर रहा है, पहले ही ईमान ला चुका है। वह इस ईमान तक पहुंचा कैसे? क्या बुद्धि के रास्ते से? क्या इसका यह अर्थ है कि ईमान को बुद्धि द्वारा प्राप्त करना भी सम्भव है। इसके अलावा "हिदायत" (सीधा रास्ता) शब्द में उस व्यक्ति के लिए क्या आकर्षण हो सकता है जिसने इस क़िस्म की चीज़ का कभी तजुर्बा ही न किया हो।"

फ़ादर फ़ेलिक्स ने कुछ अफ़सोस और कुछ निराशा के साथ अपने कन्धों को झटका देते हुये कहा, "अगर मनुष्य इस पर समर्थ नहीं है कि स्वयं, ख़ुदा की "हिदायत" का तजुर्बा कर सके, तो फिर उसे दूसरों के तजुर्बों को मानने पर तैयार रहना चाहिए जो इन चीज़ों का असली तजुर्बा रखते हैं।"

अरब सोसाइटी की एक झलक

हमारी ट्रेन मीना मरुस्थल से गुज़र रही थी। मैं उस समय बहुत ज़्यादा थका हुआ था। रात में मरुस्थल की ठंडक और रेतीले टीलों पर ट्रेन के लगातार चलते-रहने से और उसकी घड़-घड़ाहट की वजह से एक क्षण के लिए भी मेरी आंख न लग सकी। मेरे सामने वाली सीट पर एक बद्दू एक बड़ी-सी इबा (लम्बा कुर्ता) में लिपटा हुआ बैठा था। वह भी अपने मुफ़्लर के बावजूद सर्दी से कांप रहा था। वह पालथी मारे हुये सीट पर बैठा था, उसके घुटने पर उसकी तलवार रखी थी, जिसकी मूठ पर सोने का काम था, सुबह होने लगी थी और मैं बाहर टीलों के निशान और नागफनी की झाड़ियां देख सकता था।

मुझे अब तक याद है कि सुबह किस तरह हुई, किस तरह रेत के टीले, जो अंधेरे में दबे हुये थे, उभरना शुरू हुये और उनका एक सिलसिला-सा क़ायम हो गया— रंग-बिरंग और झंकारों के साथ—इस रोशनी में काले मकानों का एक सिलसिला दीख पड़ा और तेज़ी से ग़ायब हो गया। दो बांसों में बंधे हुये शिकार के जाल सुबह की ठंडी हवा में भूरी-चमकदार धुंध के पर्दों की तरह झूल रहे थे, मरुस्थल में मछली के सुन्दर जाल, उजले-उजले और मतवाले।

दाहिनी ओर मरुस्थल था और बांयी ओर सुमंद्र। समुद्र के किनारे एक सवार अकेला चला जा रहा था, शायद उसकी पूरी रात रास्ता चलते ही बीती थी। अब वह ऐसा दीख पड़ रहा था, जैसे सो गया हो।

खेमे फिर दीख पड़े। अबकी इसमें से औरतें निकल रही थीं उनके सिरों पर मिट्टी के घड़े थे और वे कुंए की ओर जा रही थीं। इस हल्की रोशनी से जो अभी तक धुंधली थी, एक पाक और साफ़

दुनिया उभर रही थी, जिसके पीछे अनजानी शक्तियां और प्रेरणायें थीं, एक चमत्कार था सादापन था, अनन्त और असीम।

सूर्य ऊपर आ गया था। हम नख़लिस्ताने- अरीश' (अरीश के मरुद्यान) में दाख़िल हुये, उसके चारों ओर खजूर के बाग़ थे। मैंने देखा कि एक बाग़ के भीतर एक औरत अपने सिर पर पानी का घड़ा रखे हुये वापस आ रही है। वह चटकीला वस्त्र पहने थी– नीला और लाल, उसके पीछे लम्बी चादर लोट रही थी, उस समय वह बिल्कुल कहानियों की राजकुमारी जान पड़ रही थी।

खजूर के बाग़, जिस तरह सामने आये थे, वैसे ही यकायकी नजरों से ओझल हो गये अब हम खुले मैदान में थे जहां रोशनी ही रोशनी फैली हुई थी। ट्रेन के शीशों के बाहर एक ऐसी शांति थी जिसका मैं पहले विचार भी नहीं कर सकता था। ऐसा मालूम हो रहा था जैसे पूरा वातावरण आज और कल से उदासीन है। दो या तीन बार यह दृश्य भी दीख पड़ा कि नंगे पांव बद्दू खजूर की पत्तियों और डालियों को ऊंटों पर लदवा कर क़ाफ़िले बनाये हुये एक जगह से दूसरी जगह जा रहे हैं। मैंने महसूस किया कि इन सुन्दर और आकर्षक दृश्यों ने मुझे अपने जाल में गिरफ्तार कर लिया है।

ट्रेन कई बार छोटे-छोटे स्टेशनों पर रुकी जो आम तौर पर टीन और लकड़ी की बैरिकों की तरह होते थे। सांवली सूरत वाले बच्चे और लड़के, जिनके देह पर फटे हुए कपड़े थे, इधर-उधर उछल-कूद रहे थे। और मुसाफ़िरों के हाथ इन्जीर, उबले हुये अंडे और रोटी बेच रहे थे। वह बद्दू जो मेरे सामने बैठा हुआ था धीरे-धीरे उठा और अपना मफ़्लर खोला, फिर खिड़की खोली, उसका रंग सांवला और चेहरा सुता हुआ था। उसने एक रोटी ख़रीदी और वापस होने लगा। जब वह बैठने जा रहा था उस समय उसकी निगाह मुझ पर पड़ी। कुछ कहे बिना उसने रोटी के दो टुकड़े

किये और एक मुझे देने लगा। जब उसने मेरा संकोच और आश्चर्य देखा तो मुस्कराया। उसकी मुस्कान भी उसके चेहरे जैसी ही भली मालूम हो रही थी जैसे कि उसके चेहरे से पक्के इरादे व निश्चय की झलक देखी जा सकती थी। फिर उसने एक शब्द कहा जो उस समय तो मैं नहीं समझ सका था, पर अब समझता हूं।

"तफ़ज़्ज़ल" (आइये) बढ़कर खाइये" उसने कहा था।

मैंने वह टुकड़ा ले लिया और सिर के इशारे से उसे धन्यवाद दिया। एक मुसाफ़िर ने जो तुर्की टोपी के अलावा बाक़ी यूरोपीय वस्त्र में था और कई औसत दर्जे का व्यापारी मालूम हो रहा था, स्वयं ही अनुवादक बन गया और टूटी फूटी अंग्रेज़ी में कहने लगा—

"यह कहते हैं कि आप भी मुसाफ़िर हैं और मैं भी मुसाफ़िर हूं और हम दोनों का रास्ता एक है।"

जब मैं इस साधारण-सी घटना पर विचार करता हूं तो मैं सोचने लगता हूं कि अरबी चरित्र से मेरा लगाव और मेरे प्रेम की नींव यहीं पड़ी थी। इस बद्दू के रवैये में, जिसने अपरिचित होने पर भी, अपने सहयात्री का साथ देते हुए अपनी आधी रोटी उसको दे दी, मानवता की एक ऐसी तस्वीर और झलक थी जो हर बनावट और दिखावे से पाक थी।

कुछ देर बाद हम ग़ज़ा पहुंच गये। वह एक पुराना क़िला मालूम हो रहा था, जो नागफ़नी की लाइनों के बीच में एक रेतीले टीले पर एक भूला-बिसरा जीवन बिता रहा था। मेरे बद्दू साथी ने अपना सामान समेटा और एक गम्भीर मुस्कान के साथ सिर के इशारे से मुझे सलाम किया और बाहर चला गया। दो बद्दू प्लेटफ़ार्म के बाहर खड़े थे। इन दोनों ने उसका बड़ा भव्य स्वागत किया, फिर सब ने एक दूसरे के गालों को चूम लिया।

उस यात्री ने जिसने सहानुभूति दर्शाते हुए द्विभाषिये का काम किया था, मेरे कन्धे पर हाथ रख कर कहा, "आइये, बाहर निकलें,

अभी गाड़ी छूटने में १५ मिनट बाक़ी हैं।"

स्टेशन की इमारत के पीछे एक ख़ेमे में यह काफ़िला मौजूद था। ये लोग—जैसा कि मेरे साथी ने बताया—उत्तरी हिजाज़ के बद्दूओं से सम्बन्ध रखते थे। इनके चेहरे साँवले और धूल से ढके हुए थे, जिनसे कड़ापन टपकता था। हमारा यह दोस्त (जो अभी निकल कर गया था) इन्हीं का एक व्यक्ति था। यह भी मालूम हुआ कि वह इन लोगों में अच्छी पोज़ीशन रखता है, इसलिए कि वे सब गोला बनाकर उसके चारों ओर बैठे हुये थे और उसके सवालों का जवाब दे रहे थे। हमारे साथी व्यापारी नें उनसे कुछ बातें कीं जिसके बाद वे हमारी ओर आकृष्ट हो गये। उनके चेहरों पर प्रेम व निष्ठा के चिन्ह थे वे बड़ी ही उदासीनता के साथ देख रहे थे कि हमारी संस्कृति कैसी है। वहां मैंने आज़ादी का माहौल देखा और मेरे भीतर उनके जीवन को समझने की बहुत बड़ी इच्छा पैदा हो गई।

हवा में बहुत ठंडक थी। ऐसा लग रहा था कि वह हड्डियों में घुसी जा रही है। मैं सोचने लगा कि जीवन के बारे में जंगल के इन वासियों के विचार दूसरे इलाक़ों के लोगों से बिल्कुल भिन्न होंगे। ये लोग ज़रूर उन अंध विश्वास के बन्धनों, भ्रम से भरी हुई पाबन्दियों और कभी-कभी इच्छाओं की ज़ंजीरों से आज़ाद होंगे जिसमें मालदार और ठंडे इलाक़े के लोग गिरफ़्तार हैं और चूंकि उन्हें अपनी भावनाओं पर भी भरोसा करना पड़ता होगा, इसलिए उनका अन्दाज़ा करने का पैमाना भी दूसरा होगा, जिससे वे दुनिया के मामलों को जांचते हैं।

शायद आने वाली क्रान्तियों और तबदीलियों की एक भीतरी चेतना उसी दिन मुझमें पैदा हो गई थी, जबकि यह पहला दिन अरब भू-भाग पर बद्दुओं के साथ बीता। यह एक ऐसी दुनिया की भीतरी चेतना थी जिसकी कोई सीमा नहीं। फिर भी ऐसी बात नहीं है कि

इसकी कोई निश्चित रूप-रेखा ही न हो, ऐसी दुनिया जिसके बारे में प्रकृति का फ़ैसला था कि वह बहुत जल्द मेरी बनने वाली है। मेरा यह अर्थ नहीं कि मैंने उसी समय महसूस कर लिया था कि भविष्य में मेरे लिए क्या सामान हो रहा है। ज़ाहिर है ऐसी बात न थी, पर वह ऐसी चेतना तो ज़रूर ही थी कि जो आपको किसी अजनबी मकान में जाकर होती है। जब वहां किसी जगह से कुछ ऐसी गन्धं या सुगन्ध आती है जिसे आप निश्चित तो नहीं कर सकते कि वह किस चीज़ की है, पर एक धुन्धला सा विचार आपके दिमाग़ में आ जाता है कि इस घर में आपके साथ क्या पेश होने वाला है। अगर वह मन को भाने वाली चीज़ें होती हैं तो एक ज़माने के बाद आप उसे याद करते हैं और अपने मन में कहते हैं कि मैंने इस बात को ठीक इसी जगह बहुत दिनों पहले महसूस किया था।

बैतुलमक़्दिस में

१९२२ ई० के इसी पतझड़ के मौसम में मैं मामा डोरियां के घर में था, जो बैतुलमक़्दिस के पुराने शहर के भीतरी भाग में स्थित था। वर्षा लगभग रोज़ ही होती थी, जिसकी वजह से मुझे निकलने का मौक़ा बहुत कम मिलता था, इसीलिए मैं अक्सर खिड़की के पास बैठ जाया करता और उससे मकान के पीछे के उस आंगन को देखा करता जो एक 'हाजी' नामक बूढ़े अरब की मिलकियत था। वह अरबों के सामानों के इधर-उधर भिजवाने के लिए किराये पर गधों का इन्तिज़ाम करते थे, जिससे यह जगह एक ऐसा पड़ाव बन गई थी, जहां रात को कारवां ठहर जाया करते थे।

हर दिन भोर ही में क़रीब के गांवों में फल और तरकारियां ऊंटों पर लदवा कर इस आंगन में लाई जातीं, फिर यहां से गधों पर लदवा कर शहर के बाज़ारों और तंग गलियों में सप्लाई की जातीं; दिन भर भारी भरकम ऊंट वहां पड़े रहते, साथ ही बहुत से लोग उनकी देख-भाल और जांच-पड़ताल में लगे रहते। हां, तेज़ वर्षा में सब लोग अस्पताल में पनाह लेने के लिए चले जाते। वे देखने में निर्धन थे, फटे पुराने कपड़े पहने हुये, पर स्वामियों की तरह जीवन बिताते थे। जब वे एक साथ खाने के लिए ज़मीन पर बैठते और थोड़े से पनीर या ज़ैतून के दाने के साथ-साथ रोटी खाते तो मैं यह दृश्य देख कर उनके उच्च साहस, भारी, सज्जनता, बड़ी सहन शक्ति और आपसी भरोसे से प्रभावित हुये बिना न रहता था।

आप उन्हें देखते तो महसूस करते कि वे अपना सम्मान और अपने जीवन का आदर खुद करते हैं। हाजी अपनी छड़ी लिए हुए इधर से उधर आते जाते थे, (उन्हें पोरों के जलते रहने और घुटनों पर वरम की शिकायत थी) ऐसा जान पड़ता था मानो वह उनके सरदार हैं, इसलिए वे बिना किसी संकोच के उनका आज्ञापालन करते थे, दिन में कई बार वह उन्हें नमाज़ के लिए जमा करते, अगर हल्की वर्षा होती तो वे बाहर ही नमाज़ पढ़ लेते, सभी एक लम्बी क़तार बना कर खड़े हो जाते, "हाजी" उनके इमाम बनते, अपनी अदाओं, व हरकतों और डिसिप्लिन में वे बिल्कुल फ़ौजी दीख पड़ते थे, सभी मक्के के रुख़ पर झुकते थे, फिर सीधे खड़े हो जाते थे, फिर इतना झुकते कि ज़मीन पर माथा टेक देते। वे अपने इमाम (नेता) की हल्की आवाज़ पर कान लगाए रहते थे, जो नंगे-पांव अपनी जानमाज़ (नमाज़ पढ़ने का कपड़ा) पर खड़े थे, आंखें बन्द, हाथ सीने पर रखे हुये,बिना आवाज़ के उनके होंठ हिलते रहते। ऐसा जान पड़ता मानो वे किसी विचार में डूबे हुये हैं। आप उन्हें देखकर पूरा अन्दाज़ा कर सकते थे कि वे अपनी आत्मा के साथ नमाज़ पढ़ रहे हैं।

सच तो यह है कि इस गहरी व जानदार नमाज़ में मुझे शरीर की उन हरकतों की मौजूदगी समझ में न आई, इसीलिए मैंने "हाजी" से जो थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी समझ सकते थे, एक बार पूछा:—

"क्या आप समझते हैं कि अल्लाह इस इन्तिज़ार में रहता है कि आप बार-बार उसके सामने झुकें व माथा टेकें, क्या यह बेहतर नहीं कि मनुष्य अकेले में बैठ कर एकाग्रता के साथ नमाज़ पढ़े और दुआ करे, आख़िर शरीर की ये हरकतें किस ध्येय से होती हैं?"

मैंने यह बात कहने को तो कह दी, पर तुरन्त ही मुझे लज्जा

हुई और मेरी अन्तरात्मा मुझे कोसने लगी, मैं नहीं चाहता था कि इस बूढ़े मज़हबी आदमी की चेतना व भावना को कोई कष्ट पहुंचे, पर हाजी के चेहरे पर नापसन्दी का बिल्कुल चिन्ह न था, वह मुस्कुराये और कहने लगे:—

"फिर आप बताइए कि किस तरीक़े पर हम अल्लाह की इबादत करें? क्या उसने शरीर और आत्मा को एक साथ पैदा नहीं किया? अगर यह बात है तो क्या यह ज़रूरी न होगा कि आदमी जिस तरह अपनी आत्मा के साथ नमाज़ पढ़ता है, उसी तरह अपने शरीर के साथ भी पढ़े, देखिए मैं आपको बताता हूं कि हम मुसलमान इस तरह नमाज़ क्यों पढ़ते हैं?

हम काबे की ओर इस एहसास के साथ चेहरा करते हैं कि पूरी दुनिया के मुसलमान उसी ओर रुख़ किये हुये हैं और यह कि मुसलमान एक शरीर हैं और अल्लाह ही हमारे सोच-विचार का केन्द्र बिन्दु है, हम सीधे खड़े होते हैं, और ऐसा ध्यान में रखते हुये कुरआन का पाठ करते हैं कि यह अल्लाह की ओर से आया है जो उसने मनुष्य को उसके जीवन को ठीक रखने और सफल बनाने के लिए भेजा है, फिर हम 'अल्लाहु अक्बर' (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहते हैं और यह विचार करते हैं कि अल्लाह के अलावा और कोई इबादत का हक़दार नहीं, फिर इसके सामने झुक जाते हैं इसलिए कि हम उसे सबसे ऊंचा और सबसे बड़ा समझते हैं और उसकी श्रेष्ठता व उसके बड़प्पन का गुण-गान करते हैं।

फिर हम सजदा करते हुये अपने माथे को ज़मीन पर रख देते हैं, इस भावना के साथ कि हम उसके सामने मिट्टी व ख़ाक के बराबर हैं, बल्कि न होने के बराबर हैं, उसने हमें पैदा किया है और वही हमारा सर्वोच्च पालनहार है, फिर माथा उठा कर बैठ जाते हैं और उससे दुआ करते हैं कि वह हमारे गुनाहों को माफ़ कर दे और

हम पर अपनी कृपा करे और सीधे रास्ते की ओर हमारी रहनुमाई करे और हमें स्वास्थ्य दे और शान्ति प्रदान करे, फिर हम दुबारा सजदे में गिर जाते हैं, और एकेश्वर, हर चीज़ से उदासीन पालनहार, के मान-सम्मान में अपने माथे को ज़मीन पर टेक देते हैं, फिर उठ कर बैठ जाते हैं और दुआ करते हैं कि वह हमारे नबी मुहम्मद (सल्ल०) पर, जिन्होंने हमको इस्लाम का सन्देश पहुंचाया, अपनी कृपा दृष्टि डाले जिस तरह कि उसने पिछले नबियों पर डाली और हम सब को और जो लोग सीधे रास्ते पर हैं, बरकत दे, दुनिया में भी अच्छाई दे और आख़िरत में भी, आख़िर में दायें और बांए मुंह मोड़ते हुये कहते हैं "शान्ति हो आप लोगों पर और अल्लाह की कृपा" मानो इस तरह हम संसार के तमाम सदाचारियों पर शान्ति की प्रार्थना करते हैं, भले ही वे कहीं के हों और कैसी भी हालत में हों।

ऐसे ही हमारे नबी (सल्ल०) नमाज़ पढ़ते थे, हर समय के लिए उन्होंने अपने अनुयायियों को यही तरीक़ा बताया है ताकि इसके द्वारा पूरी तरह से अपने को अल्लाह के सुपुर्द करने का नमूना बन जाए— जो इस्लाम का अर्थ है वहीं— और अल्लाह की ओर से और अपने परिणाम और भविष्य की ओर से सन्तोष व इत्मीनान प्राप्त कर सकें।"

बूढ़े आदमी ने ठीक यही शब्द तो नहीं कहे थे, पर उनका सार यही था और आज तक मुझे यह बात इसी तरह याद है। इस-घटना के कुछ साल बीत जाने के बाद मैंने महसूस किया कि हाजी की इन्हीं बातों ने मेरे लिए इस्लाम स्वीकार करने का पहला दरवाज़ा खोला था। उस समय भी जब मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि इस्लाम मेरा धर्म बन जाएगा, मैं अपने भीतर एक असाधारण खिंचाव और झुकाव महसूस किया करता था। जब मैं किसी को (और ऐसा बहुत

होता था) नंगे पांव अपने जानमाज़ या चटाई पर या ज़मीन पर व्यस्त पाता था। हाथ बांधे हुये, सिर झुकाए हुये, अपने काम में बिल्कुल मग्न, अपने वातावरण से बिल्कुल उदासीन, मस्जिद में या प्लेटफ़ार्म पर या किसी आबाद या चालू सड़क पर, हर जगह वह मुझे एक सन्तुष्ट व शान्त मनुष्य जान पड़ता।

फ्रांकफ़र्टर अख़बार में

एक शाम को जब मैं अपने कागज़ात ठीक कर रहा था, मुझे वह प्रेस कार्ड मिला जो एक साल पहले बर्लिन में मुझे युनाइटेड टेलीग्राफ़ के नुमाइन्दे की हैसियत से दिया गया था। मैं उसे फाड़ने ही जा रहा था कि तुरन्त ही डोरियां ने मेरा हाथ पकड़ लिया और मज़ाक़ में कहने लगा—

"अरे..... इसे फाड़ो नहीं। अगर हाई कमिश्नर के दफ़्तर में यह कार्ड तुम दिखा दो तो कुछ ही दिनों के अन्दर गवर्नमेंट हाउस से तुम्हें खाने का निमन्त्रण पत्र मिल सकता है। ऐसे प्राणियों (पत्रकार) की यहां बड़ी प्रतिष्ठा है।"

यद्यपि मैंने उस बेकार कार्ड को फाड़ डाला, फिर भी डोरियां की बात मुझ पर प्रभाव डाले बिना न रही। ज़ाहिर है कि गवर्नमेंट हाउस के निमंत्रण में मेरे लिए क्या आकर्षण हो सकता था, पर मैं सोचने लगा कि इस सुनहरे मौक़े से (मुख्य रूप से इन परिस्थितियों में पूरब में मेरी मौजूदगी, जबकि मध्य यूरोप के बहुत कम पत्रकारों को आने का मौक़ा मिला है) मैं फ़ायदा क्यों न उठाऊं? मैं क्यों न अपनी पत्रकारिता का काम दुबारा शुरू करूं और किसी प्रसिद्ध और बड़े दैनिक पत्र से अपना मामला कर लूं।

फिर उसी तेज़ी के साथ, जिस तेज़ी से मुझे सदा से फ़ैसला करने की आदत है, मैंने सच में, पत्रकारिता के मैदान में नियमित रूप से उतर आने का इरादा कर लिया।

यद्यपि मैंने एक साल तक युनाइटेड टेलीग्राफ़ में काम किया था, फिर भी अभी तक किसी मशहूर अख़बार से मेरा कोई प्रत्यक्ष परिचय न था, और चूंकि मेरे नाम से कोई लेख आदि भी प्रेस में नहीं आया था, इसलिए मैं अख़बारों की दुनिया में बिल्कुल अजनबी था, पर इन चीज़ों की वजह से मेरे इरादे में कोई कमी न पैदा हुई। मैंने पलस्टाइन के बारे में अपने उद्‌गारों व विचारों पर सम्मिलित एक लेख लिखा और उसकी कापियां कम से कम दस जर्मन अखबारों को भिजवा दीं। इसके साथ एक पत्र भी था जिसमें पूरब के सिलसिले में लेखों को भेजते रहने का वायदा था।

यह १९२२ ई० के आख़िरी महीनों की बात है, जब जर्मनी के लिए मुद्रा-वृद्धि की समस्या मुंह बाए ख़ड़ी थी। जर्मन प्रेस भी अपने जीवन के लिए मितव्यियता से काम ले रहा था, सिर्फ कुछ ही अख़बार ऐसे थे जो अपने विदेशी पत्रकारों को Hard Currency में वेतन दे पाते थे, इसलिए यह कोई ताज्जुब की बात न थी कि एक के बाद एक तमाम अख़बारों से इन्कार के जवाब आने लगे, सिर्फ़ एक अख़बार ने मेरी इस भेंट को स्वीकार कर लिया था। और जहां तक मेरा अन्दाज़ा है मेरे इस लेख से प्रभावित होकर निकट पूर्व में मुझे अपना गश्ती प्रतिनिधि नियुक्त कर लिया था। इसी के साथ यह बात भी उसने तै कर ली थी कि वापसी के बाद मुझे उसके लिए एक पुस्तक भी लिखनी होगी। यह अख़बार Frank Furter Zeiting था। उस समय, जब कि मैं हर अख़बार से संबंध जोड़ने में असफल हो रहा था, और हर जगह से इन्कार के जवाब आ रहे थे, मुझे ख़तरा हो गया था कि कहीं मैं साहस न छोड़ दूं और थक-हार कर बैठ रहूं, पर इस अख़बार की वजह से मैं अब इस पोज़ीशन में आ गया था, जिसकी आकांक्षा पुराने से पुराना पत्रकार कर सकता है। मुद्राबृद्धि की वजह से यह अख़बार भी Hard Currency में मुझे वेतन नहीं दे सकता था, इसलिए उसने

जर्मनी सिक्के में अदा किया। मैं जानता था (और अख़बार वाले भी जानते थे) कि यह रक़म इतनी भी नहीं कि मेरे लेखों के डाक-ख़र्च के लिए भी काफ़ी हो पर मेरा फ्रांक फर्टर का नुमाइन्दा होना, यही इतना बड़ा यश था, जो इन सामयिक कठिनाइयों से अधिक मूल्यवान था।

बहरहाल मैंने इस आशा पर पलस्टाइन के बारे में लेखों का एक सिलसिला शुरू कर दिया कि देर या सवेर भाग्य मेरा साथ देगा और पूरब के तमाम देशों के घूमने का मुझे मौक़ा मिल सकेगा।

अरबी इस्लामी सभ्यता की जान

शुरू के उन महीनों ने जो मेरे वहां ठहरने के ज़माने में बीते, मेरे भीतर चिन्ताओं, आशाओं और उद्गारों का लम्बा सिलसिला क़ायम कर दिया, जिनमें की कुछ आशाएं, जो व्यक्तिगत थीं, मेरी चेतना के भीतर बैठने की कोशिश कर रही थीं।

मैंने अपने सामने जीवन का एक ऐसा अर्थ पाया जो मेरे लिए बिल्कुल नया था। मुझे ऐसा लगा मानो कोई गर्म और तापयुक्त आत्मा है जो इन अर्बों के ख़ून के साथ उनके सोच-विचार और उनकी गतिविधियों तक में घुस गई है, आध्यात्मिक खरोंचों और चोटों से अनभिज्ञ, ऐसी चोटें जिन्होंने भय, लालच और घुटन का भूत बनकर पश्चिमी जीवन को बहुत ही भद्दा, बेहगंम और बेकार बना दिया था। और जिससे अब कोई विशेष आशा बाक़ी नहीं रह गई थी।

मैं अरबों में वह चीज़ पाने लगा जिसकी अनजाने ही मुझे एक मुद्दत से चाह थीं, जिसे हम जीवन की तमाम समस्याओं में एक विशेष प्रकार की भावनात्मक गूढ़ता और उच्च अवचेतना के नाम से याद कर सकते हैं।

समय के बीतने के साथ अब मेरे सामने सबसे पहला काम यह था कि मैं उन मुसलमानों की स्प्रिट को समझ सकूं, इसलिए नहीं कि उनके धर्म की ओर मेरा कुछ सुझाव था (मैं इसके बारे में कुछ कम जानकारी रखता था) बल्कि इसलिए कि मैंने उनमें मन व मस्तिष्क का प्रांगारिक सामंजस्य (Organic Coherence) देखा था; जिसे हम यूरोप वासियों ने खो दिया है। हमें व्यक्तिगत सामंजस्य के अभाव में जो कुछ भुगतना पड़ा है, क्या,हम अरबों के जीवन को सही तौर पर पढ़कर उसके और उसके कारणों के बीच की कड़ी का पता नहीं लगा सकते? क्या हम वह चीज़ हासिल नहीं कर सकते हैं जिसकी वजह से यूरोप वाले उस पवित्र जीवन की स्वतंत्रता से भाग रहे हैं जो अभी अरबों के भीतर उनकी अवनति और उनके सामूहिक व राजनीतिक पतन के बाद भी मौजूद है और जो पिछले समयों में ज़रूर हम यूरोप वालों के यहां भी पाई जाती थी, वरन् हमारे शानदार बीते युगों की कला की महान सम्पत्ति के बारे में क्या कहा जायेगा? मध्यकाल में Gothic कैथड्रल के नमूने, पुनर्जागरण की हद से बढ़ी हुई मादकता, Rembrant की रोशनी और छाया की स्थिति, Chiaroscuro Bach के प्रश्न और विचार, Muzart के गम्भीर स्वप्न, Beathoven का उफान खाता संगीत, धुंधली, उच्च और न पार करने योग्य चोटियों तक पहुंचने वाला, ये सभी चीज़ें बुद्धि व भावनाओं की पहुंच से कम दूर हैं, इतनी दूर कि जहां पहुंच कर व्यक्ति के मुख से अनचाहे निकल जाता है—

"मैं और मेरा भाग्य एक ही चीज़ हैं।"

हम यूरोप वाले अगर उनके मूल स्वभाव को न समझ सकें तो फिर उनकी आध्यात्मिक शक्तियों व क्षमताओं से अच्छी तरह फ़ायदा नहीं उठा सकते। हम आज के बाद Beathoven और Rembrant सरीखे कलाकारों को जन्म देने में विवश हो चुके हैं

और इसके बजाये अब हमारा काम सिर्फ़ यह रह गया है कि विज्ञान व कला, राजनीति व समाज के वीते नियमों व सिद्धान्तों को भिन्न-भिन्न नामों से और अनेकों शैलियों में जी-तोड़ कोशिश करके दुहराते रहें।

लड़ाई और फिर उसके बाद अति कलात्मक रूप से गढ़े हुये रोज़ के नये सिद्धान्तों की भिन्न-भिन्न व प्रतिकूल आवाज़ों की वजह से मन व मस्तिष्क में एक बड़ा संघर्ष चल रहा है। हमारी मशीनें और आले और आसमानों से बातें करती हुई इमारतें, हमारी टुकड़े-टुकड़े और बिखरी व फैली आत्मा को फिर से जोड़ने में बिल्कुल ही असफल हुई हैं। इसके बावजूद मैं अपने मन में कहता था कि क्या यूरोप की आध्यात्मिक महत्ता की वास्तविकता सदा के लिए ख़त्म हो चुकी है, क्या यह सम्भव नहीं है कि ग़लती का पता लगाकर थोड़े बहुत खोये हुये महत्व व मूल्य को वापस लाया जा सके?

शुरू में तो यह बात अरबों के राष्ट्रीय व राजनीतिक उद्देश्यों से हमदर्दी तक और अरब समाज के प्रत्यक्ष रूप और मनः शांति तक, जिसे मैंने ख़ास तौर पर महसूस किया था, सीमित रही, पर अब मुझमें उस शांति व सन्तोष का कारण और स्रोत जानने की प्रबल इच्छा पैदा हो चली थी, जिसने अरब सभ्यता को पश्चिमी सभ्यता से इतना भिन्न बना रखा है। यह इच्छा मेरी मनोवैज्ञानिक, निजी व व्यक्तिगत समस्याओं के साथ बिल्कुल घुल-मिल गई थी, मुझे ऐसे मौक़ों और ऐसे मैदानों की खोज रहने लगी थी, जहां मैं अरबों के चरित्र व आचरण का ज़्यादा बेहतर तरीक़े से अध्ययन कर सकूं और उन विचारों तक मेरी पहुंच हो सके जिन्होंने उनके जीवन को एक ख़ास सांचे में ढाल दिया है और उसे पश्चिमी सभ्यता से बिल्कुल अलग कर दिया है। मैंने उनके इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, धर्म सबको पढ़ना

शुरू किया और उस चीज़ को पा लेने की भावना के साथ, जो उनकी भावनाओं और ज्ञान-प्रियता के पीछे काम कर रही थी। फिर एक और भाव मेरे भीतर उभरने लगा, वह भाव था उन कारणों के जान लेने का, जो मेरे मन व मस्तिष्क को हिला रहे थे और मेरे ऊपर छाये जा रहे थे और मुझे रास्ता बताने पर उतारू थे।

पूरब पश्चिम के बारे में क्या सोचता है

मध्यपूर्व में मेरे इस पूरे ठहरने की मुद्दत में अर्थात् सन् १९२२ से १९२६ तक की उस मुद्दत में, जब कि मैं एक विदेशी की हैसियत से वहां बसने वाली जातियों से हमदर्दी रखता रहा और उसके बाद की मुद्दत में भी, जबकि मैं एक मुसलमान की हैसियत से, इस्लामी समाज के दुख-दर्द और आराम व तकलीफ़ में बराबर का शरीक हूं, इस पूरी मुद्दत में मैंने देखा कि यूरोप उन जातियों पर बराबर राजनीतिक दबाव डाल रहा है और भिन्न-भिन्न तरीक़ों से उन पर अन्याय व अत्याचार कर रहा है, साथ ही अपनी इस रीति को सही सिद्ध करने की कोशिश में भी लगा हुआ है। अगर कभी मुसलमान इन अत्याचारों व अन्यायों का मुक़ाबला करने की कोशिश करते भी हैं तो यूरोपीय जन-मत बड़े भोलेपन और सादगी से इसे मुसलमानों की ग़ैर-मुसलमानों के प्रति अनुचित घृणा व संकीर्णता समझ बैठता है।

इस समय पश्चिमी देशों का नित्य का काम बन गया था कि वे इस ढंग से मध्य पूर्व में उभरने वाली विरोध भावना और प्रदर्शनों को ख़त्म कर देते, मानो वे मध्य पूर्व के वर्तमान इतिहास को केवल पश्चिम की आवश्यकता के दृष्टिकोण से देखने के आदी बन गए हों। उन्हें तो इस हाल में भी जबकि ब्रिटेन के बाहर पूरे यूरोप का जनमत आयरलैण्ड के स्वतंत्रता-आन्दोलन का हिमायती था, या (रूस और जर्मनी को अलग कर के) पौलैंड के राष्ट्रीय आन्दोलन से दिलचस्पी रखता था, मुसलमानों की समस्याओं और उनकी

ज़रूरतों से कभी भी कोई दिलचस्पी और हमदर्दी न रही। इसकी दलील सदा यह दी जाती थी कि मध्य पूर्व राजनीतिक व आर्थिक हैसियत से बहुत पिछड़ा हुआ है, और पश्चिम के हस्तक्षेप का कारण यह बताया जाता था कि उसका ध्येय केवल पश्चिम के अधिकारों की रक्षा नहीं, बल्कि वहां के आदिम बसने वालों की तरक़्क़ी और ख़ुशहाली भी है।

सच तो यह है कि इस समय मध्य पूर्व के मामलों के विशेषज्ञ और राजनयिक यह भूल गए थे कि कैसा भी हस्तक्षेप, भले ही वह अहानिप्रद हो, स्वतः राष्ट्र की प्रगति की राह में एक रुकावट है, वे तो इतना भर देखते थे कि रेल की पटरियों का कितना जाल बिछा दिया गया है, पर यह न देखते थे कि देश का सामूहिक ढांचा कितना तबाह व बर्बाद हो रहा है। वे इसे तो गिन लेते थे कि कितने किलोवाट बिजली लगाई गई है पर इसका विचार नहीं करते थे कि वे इस शासित जाति के मान व सम्मान को कैसी-कैसी चपतें लगाते रहते हैं।

वही लोग, जिन्होंने आस्ट्रिया के "सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल" का इसलिए स्वागत करने से इन्कार कर दिया था कि इससे जर्मनी को बलकान के प्रान्तों में हस्तक्षेप का एक वैधानिक बहाना मिल जाएगा, वही आज बड़ी ही उदारता के साथ और नज़रें बचा-बचा कर, मिस्र में अंग्रेज़ों के, मध्य एशिया में रूसियों के, मोरक्को में फ्रान्सीसियों के, लीबिया में इटली के इन्हीं जैसे दावों को बड़े हर्ष के साथ सहन कर रहे हैं और इसके हस्तक्षेप पर उन्हें कोई आपत्ति तक नहीं है।

वे यह नहीं जानते थे कि बहुत सी सामाजिक व आर्थिक कमज़ोरियां और कठिनाइयां, जिनका मध्यपूर्व एक ज़माने में शिकार है, यूरोप की इसी अनुचित दिलचस्पी और हस्तक्षेप का फल

है, बल्कि सच तो यह है कि पश्चिमी हस्तक्षेप के पीछे यही इच्छा और यही यत्न रहता है कि आन्तरिक अशान्ति का क्षेत्र वहां इतना बड़ा हो जाये कि इन जातियों के लिए जागने और आज़ाद होने का प्रश्न ही न पैदा हो।

मिस्र में

मैंने सबसे पहले इस बात को सन् २२ ई० में पलस्टाइन में महसूस करना शुरू किया। यह उस समय की बात है जब मुझे अरबों और यहूदियों के झगड़े के सिलसिले में ब्रिटिश सरकार की द्विमुखी नीति को व्यावहारिक रूप में देखने को मिला और जब २३ ई० में पलस्टाइन के तमाम स्थानों का दौरा करने के बाद मैं मिस्र वापस हुआ तो यह बात खुल कर मेरे सामने आ चुकी थी।

मिस्र में उस समय ब्रिटिश शासन के विरुद्ध खलबली मची हुई थी। अंग्रेज़ी फ़ौज के रास्ते पर अधिकता से बम फेंके जा रहे थे। इन सरगर्मियों को कुचलने के लिए सरकार भिन्न-भिन्न उपाय करती थी, कभी मार्शल ला लगा दिया जाता, कभी राजनीतिक पकड़-धकड़ शुरू हो जाती; अख़बारों को बन्द कर दिया जाता; लीडरों और नेताओं को निकाल दिया जाता, पर इनमें से कोई भी तरीक़ा, भले ही वह कितना सख़्त हो, जनता की स्वतंत्रता-भावना को कुचलने में सफल नहीं हो रहा था। पूरी मिस्री जाति में इस सिरे से लेकर उस सिरे तक एक ऐसी धारा जन्म ले चुकी थी जिसे उग्र भावनाओं की धारा का ही नाम दिया जा सकता है— यह आशा और निराशा की स्थिति न थी, उत्साह, स्वाभिमान और जाग्रति की स्थिति थी, जो अपनी ताक़त का अन्दाज़ा करने के बाद पैदा हो गई थी।

बड़े-बड़े पाशा और ज़मींदार तो ब्रिटिश सरकार से अपनी वफ़ादारी ज़ाहिर कर रहे थे, पर उनके अलावा तमाम लोग, जिनकी

तायदाद कहीं ज़्यादा थी और जिनमें वे कुचले व पीसे जा रहे किसान भी शामिल थे, जिनके पास पूरे परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए सिर्फ़ एक बीघा ज़मीन होती थी, वे सभी स्वतंत्रता-आन्दोलन की हिमायत कर रहे थे। हाकर सुबह को चीखते हुये निकलते कि सैनिक अधिकारी के हुक्म से प्रतिनिधि दल के तमाम नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया गया है, पर दूसरे दिन यह ख़बर आती कि उनकी जगह दूसरे नेताओं ने संभाल ली है। आज़ादी की प्यास बढ़ती जा रही थी और साथ ही अंग्रेज़ों के प्रति घृणा में भी दिन प्रति दिन बढ़ती होती जा रही थी, पर यूरोप के पास इन तमाम हलचलों का बस एक ही उत्तर था "विदेशियों से घृणा।"

मेरे मिस्र में आने का उद्देश्य यह था कि फ्रांकफ़र्टर के कार्य-क्षेत्र को और बढ़ाया जाए और प्लस्टाइन के बाहर की भी दुनिया देखी जाए। डोरियां की आर्थिक दशा ऐसी न थी कि वह मेरे लिये इन दौरों का ख़र्च बर्दाश्त कर सकते पर जब उन्हें मेरी यह इच्छा मालूम हुई तो उन्होंने मुझे इतनी रक़म दे दी जो बैतुलमक़्दिस से क़ाहिरा तक के रेल के किराए के अलावा १५ दिन के खाने ठहरने के लिए भी काफ़ी होती।

क़ाहिरा में मुझे एक मुहल्ले की तंग गली में, जहां कुछ अरब कारीगर और छोटे यूनानी दूकानदार रहते थे, एक मकान मिल गया। मकान की मालकिन ट्रैस्टा की एक बूढ़ी औरत थी, लम्बे क़द वाली, भरा हुआ शरीर, चमकदार बाल, वह एक तीव्र स्वभाव की जल्द प्रभावित होने वाली झक्की औरत थी। उसके रहन-सहन से ऐसा जान पड़ता था कि उसने अभी तक अपने को भी नहीं पहचाना है, पर मेरे साथ उसका व्यवहार बड़े ताल्लुक़ और लगाव का था, जिस की वजह से उसके घर में मुझे आराम मिला और कोई तकलीफ़ न हुई।

एक सप्ताह बीतने के बाद मेरी पूरी पूंजी ख़त्म हो गई और चूंकि मैं इतनी जल्द प्लस्टाइन वापस नहीं होना चाहता था, इसलिए ज़रूरी था कि किसी ऐसे काम की खोज में निकलूं जिससे मेरे यहां ठहरने का ख़र्च निकल सके।

बैतुलमक़्दिस में मेरे मित्र के एक मित्र डा० डीहान ने, जिनका उल्लेख मैं कर चुका हूं, क़ाहिरा के एक व्यापारी के नाम मुझे परिचयात्मक पत्र दिया था, अतएव इस सिलसिले में मशिवरे के लिए पहले मैं उन्हीं के पास गया। वह हालैंड के रहने वाले थे, अच्छे स्वभाव क़े, मोटे-ताज़े और विशेष प्रकार के रुझान रखने वाले—डीहान के पत्र से उन्हें यह मालूम हुआ कि मैं फ़्रान्कफ़र्टर का संवाददाता हूं और जब मैंने उनकी इच्छा पर अपने कुछ लेख उन्हें दिखाए तो उन्होंने सिर उठा कर बड़े ही आश्चर्य से मुझ से पूछाः—

"तनिक, यह तो बताइये, आपकी उम्र क्या होगी?"

"२२ साल" मैंने कहा।

"अच्छा, तनिक कृपया यह भी बताइये कि ये लेख आप किसकी मदद से तैयार करते हैं?"

"यह कैसा प्रश्न?" मैंने हंसते हुए कहा, इन्हें मैंने ही लिखा है, मैं अपने काम सदा स्वयं ही करता हूं, पर आपको इसमें संदेह क्यों हो रहा है?"

उन्होंने अपने सिर को इस तरह हरकत दी जैसे उन्हें इस पर आश्चर्य हुआ हो। फिर कहने लगे, "बहरहाल, है यह आश्चर्य की बात! इस उम्र में आप में इतनी गम्भीरता कहां से पैदा हो गई कि आप इस जैसी सामग्री तैयार कर सकें और उन्हीं चीज़ों के एकाध वाक्य से, जो हमारे लिये रोज़ाना की मामूली बातें हैं, दर्शन का कोई विशेष अर्थ पैदा कर दें।"

उनकी प्रशंसाओं से मुझ में स्वाभिमान जगा और अपनी ही दृष्टि में मेरा अपना मान बढ़ गया। बहरहाल उनकी बात-चीत से मालूम हुआ कि वे स्वयं मुझे कोई काम नहीं दे सकते, हां मुझे एक मिस्री कम्पनी में जिनसे उनके व्यापारिक संबन्ध थे, किसी जगह रखवा सकते हैं।

जिस दफ़्तर में उन्होंने मुझे भेजा, वह क़ाहिरा के एक पुराने मुहल्ले में स्थित था और घर से ज़्यादा दूर भी नहीं था। यह मुहल्ला तंग और गंदी गलियों पर सम्मिलित था, जिसके दोनों ओर किसी समय में भद्र और ऊंचे वर्ग के लोगों के मकान थे, अब उसमें दफ़्तर आदि बन गये थे और ठहरने के लिए सस्ते कमरों की हैसियत से इस्तेमाल हो रहे थे। इस कम्पनी का मालिक एक बूढ़ा मिस्री था जिसके सिर के पूरे बाल गिर चुके थे। उसे एक ऐसे मुन्शी की ज़रूरत थी जो फ़्रांसीसी भाषा में पत्रों का उत्तर दे सके। मैं इस काम को, व्यापारिक मामलों को न जानने के बावजूद अच्छी तरह कर सकता था। जल्द ही हम लोग इस पर सहमत हो गये कि एक मामूली तनख़्वाह पर, मैं हर दिन यहां तीन घंटे काम करूंगा। यह तनख़्वाह इतनी थी कि इससे मेरे मकान का किराया अदा हो सकता और जब तक पालनहार चाहे रोटी, दूध और ज़ैतून पर गुज़ारा हो सकता।

मेरे घर के सामने ही, बल्कि उससे इतने क़रीब कि मैं उसे हाथ बढ़ाकर छू सकता था, पतले मनारे की एक छोटी सी मस्जिद थी, जहां पांचों वक़्त की नमाज़ के लिए, अज़ान होती थी। मनारे पर सफ़ेद पगड़ी बांधे हुये एक व्यक्ति 'अल्लाह बड़ा है' 'मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के अलावा कोई इलाह (उपास्य) नहीं' को ऊंची आवाज़ में कहता। उसकी आवाज़ ज़ोरदार और दर्द में भरी हुई थी। आप अज़ान सुन कर अच्छी तरह अंदाज़ा कर सकते थे कि वहां कोई

कला या आर्ट न था वल्कि वहां ईमान का उत्साह व उमंग था जिसने अज़ान में इतना आकर्षण भर दिया था।[1]

अज़ान देने वाले की अज़ान का तरीक़ा वही था जिससे बैतुलमक़्दिस और उसके वाद क़ाहिरा में मेरे कान अच्छी तरह परिचित थे। साथ ही यह वात भी तै है कि इस्लामी देशों में हर जगह, जहां भी मैं जाता, यही ध्वनि मुझे सुनने को मिलती, उस अन्तर के बावजूद, जो भिन्न-भिन्न जगहों की स्थानीय भाषाओं और ध्वनियों में पाया जाता है। इस एकता व अपनेपन को देखकर मुझे अन्दाज़ा हुआ कि मुसलमानों की एकता, एकरूपता और आपसी मेल कितना गहरा है और उन्हें विभक्त करने वाली चीज़ें कितनी बोदी, फुसफुसी और बेजान हैं।

अपने विश्वास, विचार-धारा, सत्य-असत्य को पहचानने का भाव, वेहतर और सही जीवन के स्वभाव और बनावट को समझने में वे 'एक मनुष्य' जैसे थे।

मुझे ऐसा लगा कि मैंने पहली वार एक ऐसी सोसाइटी में क़दम रखा है जहां मनुष्य, मनुष्य में नाते और संवंध की वुनियाद आर्थिक आवश्यकताओं या रंग व नस्ल के भेद-भाव पर न थी, वल्कि इससे गहरी और मज़वूत चीज़ पर थी– अर्थात् जीवन के बारे में सर्वमान्य दृष्टिकोण का वह नाता जिसने दो मनुष्यों क़े वीच से अलगाव और वेताल्लुक़ी की सभी दीवारों को ढा दिया था।

दमिश्क़ में

सन् २३ की गर्मियों में मध्यपूर्व के जीवन और राजनीति को अच्छी तरह समझ लेने के बाद मैं बैतुलमक़्दिस वापस आ गया।

१: यह सन् १९२३ की बात है, जब लाउडस्पीकर से अज़ान देने की इजाज़त नहीं थी। लाउडस्पीकर की वजह से अब अज़ान में वह सौंदर्य व आकर्षण वाक़ी नहीं रहा।

प्लस्टाइन में मेरा ज़्यादा दिनों तक रुकने का इरादा नहीं था, इस बार भी याकूब डीहान ने मेरी मदद की। चूंकि वह एक प्रसिद्ध पत्रकार थे और यूरोप के भिन्न-भिन्न अख़बारों से उनके बड़े अच्छे संबंध थे, इसलिए उनकी सिफ़ारिश से मैं दो छोटे अख़बारों से मामला करने में कामयाब हो गया— एक अख़बार हालैंड का था और दूसरा स्विट्ज़रलैंड का। मुझे एक लेखमाला तैयार करनी थी, जिसका मुआवज़ा मुझे हालैंड और स्विट्ज़रलैंड की करेन्सी में मिलता! चूंकि ये अख़बार देहाती इलाक़ों से ताल्लुक़ रखते थे और उनका प्रचार भी ज़्यादा न था, इसलिए वे मुझे कुछ ज़्यादा मुआवज़ा नहीं दे सकते थे, पर जितना भी मुआवज़ा वे दे रहे थे, वह मेरे सादा जीवन को देखते हुये इस सफर के लिए काफ़ी मालूम हुआ, जिसका प्लान मैंने पहले तैयार कर रखा था, अतएव सबसे पहले मैंने दमिश्क़ का इरादा किया।

इससे कुछ ही महीना पहले मेरी मुलाक़ात दमिश्क़ के एक टीचर से हो गई थी, और उन्होंने मुझे कह दिया था कि अगर मेरा दमिश्क़ आना हो तो मैं उन्हीं का मेहमान रहूं। तो वहां पहुंचने पर मैंने उनके मकान का पता लगाने की कोशिश की। एक छोटा बच्चा स्वेच्छा से इस सेवा पर तैयार हो गया और मेरा हाथ पकड़ कर उनके मकान की ओर चल पड़ा।

रात बहुत अंधेरी थी और हम लोग पुराने शहर की तंग व अन्धी गलियों से गुज़र रहे थे जो मकानों की खिड़कियों की वजह से और अंधेरी मालूम हो रही थीं। लैम्प की रोशनी में कभी-कभी किसी फल वाले की दूकान दीख पड़ने लगती जिसके सामने अंगूरों के ढेर सजे रखे होते, जो उस समय अंधेरे में ऐसे जान पड़ते थे मानो कोई छाया हो। कभी-कभी खिड़कियों के भीतर से किसी औरत की आवाज़ कानों से टकरा जाती। एक जगह लड़का रुक गया, और

बताया कि यही मकान है। मैंने दरवाज़ा खटखटाया, भीतर से जवाब मिला आ जाओ। सिटकनी खोल कर मैं एक पक्के आंगन में आ गया। भीतर अंगूर के पेड़ लगे थे जो अंगूरों से लदे थे। एक पत्थर का हौज़ था जिसके मध्य में फ़व्वारा लगा हुआ था। ऊपर से एक आवाज़ आई:—

"स्वागतम श्रीमान्! स्वागतम!"

मैं एक तंग ज़ीने से होता हुआ, जो दीवार से मिला हुआ था, ऊपर एक खुली जगह में पहुंच गया। मेरे मित्र ने 'स्वागतम' कहते हुये मुझे अपने सीने से लगा लिया।

चूंकि मैं बहुत थका हुआ था, इसलिए तुरन्त ही बिस्तर पर पड़ रहा। हवा बहुत तेज़ चल रही थी और भीतर बाग़ीचे में पत्ते खड़खड़ा रहे थे। दूर से बहुत धीमी और ऊंघती आवाज़ें आ रही थीं— एक बड़े अरबी कवि की आवाज़ें, जो अब सोने की तैयारी कर रहा था।

दमिश्क का जीवन

दोनों आंखें खोल कर और इस नए जीवन को समझने की भीतरी चाह के साथ मैंने गर्मियों का यह आरम्भ मुख्य-मुख्य जगहों और सड़कों पर घूम कर बिताया, जहां मुझे इन अरबों की भीतरी शान्ति व सन्तोष या मन के इत्मीनान का पता मिल गया। यह वास्तव में उस रहन-सहन और बर्ताव का नतीजा था जो वे एक दूसरे के साथ करते थे; इसकी झलक उस विश्वास में देखी जा सकती थी जिसके साथ वे आपस में मिलते और विदा होते थे; उस तरीक़े में देखी जा सकती थी, जिस तरीक़े से वे बच्चों की तरह एक दूसरे का हाथ पकड़े हुये चलते थे, (और जिसके पीछे प्रेम व लगाव के अलावा कोई और भावना न होती थी) यह भीतरी शान्ति व सन्तोष उस तरीक़े में दीख पड़ा, जिस तरीक़े से दुकानदार अपने ग्राहकों से बर्ताव करते थे। इन लोगों में भय व डाह का लेशमात्र भी नहीं होता था। अगर किसी दुकानदार को अपनी किसी ज़रूरत से ग़ैर हाज़िर रहना पड़ता तो वह अपने पड़ोसी या अपने ही पेशे के क़रीब के किसी दुकानदार की निगरानी में बेझिझक अपनी दुकान छोडकर चला जाता प्रायः ऐसा होता कि कोई ग्राहक आता और दूकानें को ख़ाली पा कर सोचने लगता कि लाओ दूसरी जगह से सौदा ख़रीद लें, उस समय वह दुकानदार अपनी दुकान छोड़ कर आ जाता और सौदा बेचता, अपना सौदा नहीं, ग़ैर हाज़िर साथी की दुकान का सौदा और क़ीमत उसके काउन्टर पर रख देता, क्या यूरोप में कभी ऐसा व्यापार देखा गया है?

कुछ सड़कें बद्दुओं से भरी रहती थीं जो अपने ढीले-ढाले कपड़ों में ढके होते थे, ऐसे आदमी जिनको देखते ही अन्दाज़ा हो जाता कि वे अपने मुख्य मार्ग पर चल रहे हैं, अपनी जानें हथेलियों पर लिये हुये, लम्बे क़द वाले, तेज़ चील जैसी आंखें रखने वाले, उनकी लाइन की लाइन दुकानों के सामने बैठी दिखाई देती वे आपस में ज़्यादा बात नहीं करते थे (इसलिए कि एक-एक वाक्य और एक-एक बात ध्यान से कही जाती थी और ध्यान से सुनी जाती थी, जिससे लम्बी बातों की ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी) ये बद्दू व्यर्थ की बात-चीत से, जो बेकार क़िस्म के लोगों की आदत होती है, बिल्कुल अनभिज्ञ थे। इस दृश्य ने मेरा ध्यान कुरआन की उस आयत की ओर मोड़ दिया जिसमें जन्नत की ख़ूबी बताते हुये कहा गया है "तुम इसमें बेकार बातें न सुनोगे।" चुप रहने में मुझे बद्दूओं का बड़प्पन मालूम हुआ। अपनी लम्बी चौड़ी इबाओं (एक वस्त्र है) में जो आम तौर से काली या सफ़ेद होती थीं, अपने को लपेटे हुये, चुपचाप वे आप को एक बच्चे की तरह भोलेपन से देखते हुये गुज़र जायेंगे, स्वाभिमानी, विनम्र और तीव्र बुद्धि के लोग। अगर आप उन की भाषा में उनसे बात करें, तो यकायकी मुस्कान के साथ उनकी आंखें चमकने लगेंगी, इसलिए कि वे स्वार्थी न थे, जिनको केवल निज की चिन्ता हो, वे सरदार थे, सुन्दर और मान-सम्मान वाले, अपने को लिये हुये और इसी के साथ और दूसरे मामलों को भी अपने हाथ में लेने के लिए तैयार और मुस्तैद।

जुमा के दिन दमिश्क़ में जीवन का रूप ही बदला हुआ दीख पड़ता था। हर्ष और प्रसन्नता और मान-सम्मान का एक मिला-जुला वातावरण शहर पर छा जाता था। मैंने यूरोप के अपने रविवार को याद करना शुरू किया। वे ख़ाली दुकानें और घुटन और कुढ़न मुझे याद आ गईं जो शिथिलता की वजह से वहां पैदा हो जाती

थी। पर ऐसा होना क्यों ज़रूरी था, जब मैंने इस पर विचार किया तो इस नतीजे पर पहुंचा कि प्रति दिन का जीवन यूरोप में लोगों के लिए एक भारी बोझ बन चुका है, जिससे छुटकारा उन्हें केवल रविवार को ही प्राप्त होता है, वह उनके लिए केवल राहत ही का दिन नहीं है बल्कि एक अनजानी वस्तु की ओर पलायन का भी दिन है, एक धोखा से भरी हुई भूल, जिसके पीछे हफ्ते के और दिन और अधिक बोझ लिये हुये उनके इन्तज़ार में मौजूद रहते हैं।

जहां तक अरबों का सम्बन्ध है, उनके लिए जुमा कामों से भागने का दिन नहीं। इसका कारण यह नहीं है कि उन्हें जीवन का फल बिना किसी परिश्रम और बिना किसी कोशिश के मिल जाता है, बल्कि इसका मूल कारण यह है कि उनके कठिन से कठिन काम भी उनके निजी रुझानों व इच्छाओं के प्रतिकूल नहीं होते, 'प्रोग्राम प्रोग्राम के लिए,' का सिद्धान्त इनके यहां नहीं मिलता, यहां तो काम और काम करने वाले के बीच एक अन्दरुनी ताल्लुक़ पाया जाता है, जिनसे राहत व आराम को, बशर्ते कि आदमी थका हुआ न हो, अनावश्यक सा बना दिया है।

मैं समझता हूं कि इस्लाम ने भी इस ताल्लुक़ और एकरूपता को एक स्वाभाविक स्थिति कहा होगा, यही कारण है कि उसने जुमा के दिन किसी जबरी छुट्टी का क़ानून नहीं बनाया, कारीगर और छोटे दुकानदार कुछ घंटे के लिए अपनी दुकानें खोल लेते थे, फिर बन्द करके नमाज़ के लिए चले जाते थे। नमाज़ के बाद काफ़ी हाउसों में कुछ समय बिताने के बाद फिर कुछ घण्टों के लिये दूकान खोल लेते, बहुत कम दुकानें जुमा के दिन बन्द दीख पड़ती थीं। शहर की सड़कें हफ़्ते के और दिनों की तरह ही शोख़ हंगामों से भरी हुई और आबाद रहती थीं, सिर्फ़ जुमे की नमाज़ के वक़्त ऐसी स्थिति न होती थी।

विचित्र जीवन-व्यवस्था

एक जुमा को अपने दोस्त के साथ जामा-उमवी गया। उसके संगमरमर के स्तम्भों पर छत के रोशनदानों से सूर्य की किरणें पड़ रही थीं, मुश्क की ख़ुशबू से पूरी मस्जिद महक रही थी, फ़र्श पर नीले और लाल रंग के क़ालीन बिछे हुये थे और सीधी और लम्बी लाइन बनाये हुये सैकड़ों आदमी इमाम के पीछे खड़े थे। वे रुकूअ करते फिर सज्दा करते हुये अपना माथा उस पर रख देते थे, फिर एक साथ पूरे अनुशासन और पूरी चेतना के साथ खड़े होते थे, बिल्कुल फ़ौजियों की तरह। हर चीज़ शान्तिमय थी। जब मजमा खड़ा था, उस वक़्त भीतर के बड़े हाल से इमाम की आवाज़ मुझे सुनाई दे रही थी जो कुरआन का पाठ कर रहे थे। जैसे ही वह रुकूअ करते, सब लोग उनके साथ तुरन्त झुक जाते, वे सज्दा करते तो एक साथ पूरी जमाअत उनके साथ सज्दे में गिर जाती। वे इस तरह सज्दा और रुकूअ कर रहे थे जैसे अल्लाह उनकी निगाहों के सामने हो।

उस वक़्त मुझे अल्लाह से और धर्म से उन लोगों के लगाव और संबंध का एहसास हुआ। उनकी नमाज़ उनके दैनिक जीवन से कोई अलग और भिन्न वस्तु न मालूम होती थी, बल्कि जीवन में अल्लाह की याद शामिल करके उसको और ज़्यादा बेहतर तरीक़े पर याद रखने के लिए पढ़ी जाती थी।

मस्जिद से निकलते हुये मैंने अपने दोस्त से कहा, कितने आश्चर्य और ताज्जुब की बात है कि आप लोग अल्लाह को इस हद तक नज़दीक समझते हैं, मेरी इच्छा है कि मैं भी ऐसे ही समझ सकूं।

उन्होंने कहा, "और इसके अलावा हो भी क्या सकता है मेरे भाई! क्या अल्लाह जैसा कि हमारे पवित्र ग्रन्थ ने बताया है, हमारे प्राण से ज़्यादा क़रीब नहीं है।

इस नए विचार और नई खोज का मेरे ऊपर अच्छा भला प्रभाव था। अतएव मैंने दमिश्क में अपना बड़ा समय इस्लामी पुस्तकों के अध्ययन में बिता दिया। अरबी भाषा में मेरी जानकारी इतनी भर तो थी कि इसमें अपने मन की बात कह सकता पर इतनी न थी कि कुरआन का सीधे-सीधे अध्ययन कर सकता। इस संबंध में मुझे दो अनुवादों की मदद लेनी पड़ी, एक फ्रांसीसी, दूसरे जर्मनी, जो मुझे एक लाइब्रेरी से कुछ दिनों के लिए मिल गये और इसके अलावा जहां तक दूसरी जानकारियों का मामला है, तो इस संबंध में मुझे योरोपीय प्राच्यविद्याविशारदों की पुस्तकों और अपने दोस्त की बातों पर भरोसा करना पड़ा।

इन अध्ययनों या बातचीतों की जो भी शक्ल रही हो, बहरहाल उनकी वजह से मेरी निगाहों से एक पर्दा-सा हट गया। मैं विचारों के ऐसे संसार को देख रहा था, जिसे मैं अब तक न जानता था।

इस्लाम रस्मी या पारिभाषिक धर्म से हट कर जीवन की एक व्यवस्था बनकर मेरे सामने आया, वह मुझे आध्यात्मिक व्यवस्था से अधिक वैयक्तिक और सामूहिक व्यवहार का एक प्रोग्राम और कार्यक्रम दीख पड़ा, जिसकी बुनियाद अल्लाह की मदद पर थी। मैंने कुरआन में किसी जगह "मुक्ति" की धारणा नहीं देखी, वहां कोई पहला मौरूसी गुनाह भी नहीं था जो मनुष्य और उसके भाग्य के बीच आड़े आ गया हो। वहां तो यह था, "मनुष्य जैसी कोशिश करेगा, वैसा पाएगा।" वह कैसे भी सन्यास या प्रकृति-बध स्वीकार नहीं करता कि जिसके द्वारा "शुद्धि" का कोई छिपा द्वार खुल जाता हो, इसलिए कि उसके नज़दीक शुद्ध और पवित्र होना तो हर व्यक्ति का पैदाइशी हक़ है और पाप तो मनुष्य के उस स्वीकारात्मक स्वभाव के गुणों के पांव के डगमगा भर जाने का नाम है, जो अल्लाह ने उसमें भर दिया है, वहां मानव स्वभाव का कोई विभाजन नहीं

दीख पड़ता, इसलिए कि उसके नज़दीक आत्मा और शरीर मिल कर एक सही और पूर्ण यूनिट तैयार होता है।

शुरू में, मैं यह देख कर बहुत घबड़ाया कि कुरआन को केवल आध्यात्मिक मामलों ही में दिलचस्पी नहीं दीख पड़ती, बल्कि वह जीवन के कुछ उन अंगों को भी प्रमुखता देकर वर्णन करता है जो मुझे बड़े ही सांसारिक और तुच्छ दीख पड़ते थे, पर कुछ समय बीतने पर यह बात मेरी समझ में आ गई। अगर मनुष्य आत्मा और शरीर का योग है तो फिर उसके जीवन के किसी विभाग और किसी अंग से आंख नहीं चुराई जा सकती और न उसे धर्म-क्षेत्र से बाहर विचार कर तुच्छ समझा जा सकता है, पर इसके साथ-साथ मैंने देखा कि कुरआन एक क्षण के लिए भी यह भुलाने के लिए तैयार नहीं कि यह संसार बहरहाल मानव-प्रगति के रास्ते की एक मन्ज़िल है। इसका मूल स्वभाव आध्यात्मिक ही है। भौतिक समृद्धि कुरआन के नज़दीक अच्छी, बेहतर और पसन्द करने योग्य चीज़ है, पर वह स्वतः कोई उद्देश्य नहीं, इसलिए मनोकामनाओं को, बावजूद उसकी अहमियत व ज़रूरत के नैतिक अवचेतन के मुकाबले में दबा दिया जाएगा। इस नैतिक अवचेतन को केवल अल्लाह और बन्दे के बीच सीमित न रहना चाहिए, बल्कि मनुष्यों के आपस के संबंधों तक फैल जाना चाहिए। इसका उद्देश्य केवल वैयक्तिक जीवन की आध्यात्मिक पूर्णता न हो, बल्कि सोसाइटी में ऐसे हालात पैदा करना भी उसका मक़सद हो जो दूसरे व्यक्तियों की आध्यात्मिक उन्नति व प्रगति के लिए अनुकूल वातावरण पैदा कर सके और जिसके तहत वे पूर्ण जीवन बिता सकें।

ये तमाम चीज़ें मानसिक व नैतिक रूप से मुझे इस्लाम के आदर पर उभार रही थीं, वह इस्लाम जिसके बारे में मैंने इससे पहले जो कुछ पढ़ा या सुना था, वह इन चीज़ों के सिलसिले में शून्य

के बराबर था। मुझे यह मालूम हुआ कि आध्यात्मिक समस्याओं के सिलसिले में कुरआन का अन्दाज़ पुराने ज़माने के अन्दाज़ से अधिक गम्भीर है। इन समस्याओं में इसका अन्दाज़ आज के विरुद्ध बड़ा ही स्वीकारात्मक है। आत्मा और शरीर उसकी नज़र में मानव-जीवन के दो रुख़ हैं, जिन्हें अल्लाह ने पैदा किया है।

मैंने अपने मन से पूछा:—

क्या यहीं शिक्षायें उस मानसिक सन्तोष का कारण तो नहीं हैं, जिन्हें मैंने इस पूरी मुद्दत में अरबों में रहकर देखा है?

दुबारा यूरोप

यह पहला प्रभाव लेकर जब मैं अरब देशों के दौरे के बाद यूरोप लौट रहा था, उस समय पहली बार कुछ हल्का पड़ गया, जब सन् २३ ई० के पतझड़ में सीरिया को छोड़ने के बाद मुझे तुर्की में कुछ महीने ठहरने का मौक़ा मिला। मुस्तफ़ा कमाल का तुर्की उस समय अपने सुधारों की मंज़िल में दाख़िल नहीं हुआ था, वह अभी तक अपने जीवन और अपनी परिपाटियों में विशुद्ध तुर्की था और इस्लामी रिश्ते की वजह से अरबी जीवन के आम बहाव के साथ भी उसका संबंध बाक़ी था, पर तुर्क मुझे अरबों के मुक़ाबले में ज़्यादा खुर्रे, अखड़ और सूखे स्वभाव के दीख पड़े। वे अपने विचारों व भावनाओं में यूरोप से बहुत क़रीब थे। जब मैंने भू-मार्ग से सूफ़िया और वहां से बेलग्राड की यात्रा की तो मुझे पूर्व से पश्चिम पहुंचने का कोई यकायकी एहसास नहीं हुआ, दृश्य और परिस्थितियां धीरे-धीरे बदल रही थीं,। एक-एक करके दृश्य नज़रों से ओझल हो जाते हैं और उनका स्थान दूसरे दृश्य ले लेते, मस्जिदों के मनारे कम होते जाते, और उनका फ़ासला बढ़ रहा था। ओवरकोट और चिस्टर के बजाय किसानों के सादे कपड़े..... नज़र आ रहे थे।

फिर मैंने यकायकी अपने-आपको इटली की सीमाओं के

क़रीब पाया, जब मैं उस ट्रेन पर सवार हुआ, जो मुझे ट्रेस्ट से वियाना ले जा रही थी, तो उस समय तुर्की के बारे में मेरे उद्‍गार लगभग बिल्कुल समाप्त हो चुके थे, केवल एक वास्तविकता बाक़ी रह गई थी, और वह थी १८ महीनों की मुद्दत जो मैंने अरब देशों में बिताये थे।

अब मैं फिर यूरोप में था। मुझे इस बात से कुछ कष्ट भी पहुंचा कि मैं यूरोप के दृश्यों को इस प्रकार देख रहा था जैसे अजनबी पर्यटक या यात्री देखता है, लोग मुझे नीच और तुच्छ दिखाई दे रहे थे, उनकी गतिविधियां बड़ी भद्दी और फूहड़ दीख पड़ती थी, जिनका उनके निश्चय व चिन्तन से कोई संबंध न था। यकायकी मैंने महसूस किया कि यद्यपि वे इस बात का प्रदर्शन करते हैं कि वे हर काम समझ-बूझकर कर रहे हैं और अपने ध्येय को जानते हैं, पर वास्तव मे वे अपने उद्देश्य को समझे बिना दम्भ व अभियान जगत में गुम हैं। अब यह बात स्पष्ट थी कि अरबों से मेरे संबंधों ने इस सिलसिले में मेरे दृष्टिकोण को बिल्कुल बदल कर रख दिया है, जिसे मैं जीवन का मूल तत्व समझता हूं। फिर मैंने कुछ आश्चर्य के साथ सोचा कि मेरी तरह बहुत से युरोपीय व्यक्तियों ने अरबों क़े जीवन और रहन-सहन का तजुर्बा किया है, क्या संभव है कि उनको वह धक्का (Shock) न लगा हो, जिसने मुझे खोज और छान-बीन पर मजबूर किया था? अगर उन्हें इसका तजुर्बा हुआ है तो क्या उनके साथ वही कुछ पेश आया जो मेरे साथ आया था।

इसका उत्तर मुझे कुछ साल के बाद अरब ही में मिला। डा० वान्डर मेन्लेन (Dr. Vander Menlen) जो उस समय जिद्दा में हालैंड के राजदूत थे, मेरे पास आये। वे अति सुसभ्य व्यक्ति थे, रंगा रंग संस्कृति के मालिक थे और ईसाई धर्म के कट्टर अनुयायी थे (जो उस ज़माने में बहुत ही कम देखने में आती है) और इसी कारण वह एक धर्म के हैसियत से इस्लाम के मित्र नहीं थे, पर इसके

बावजूद उन्होंने यह स्वीकार किया कि उन्हें, अपने देश को भी अपवाद किये बिना ही हर देश से अधिक अरब प्रायद्वीप से प्रेम है। हिजाज़ में उनकी कार्यावधि ख़त्म हो गयी तो एक बार उन्होंने मुझसे कहा, "मैं समझता हूं कि भावुक और चेतनायुक्त व्यक्ति अरबों में ठहरने के बाद अरबी रहन-सहन और जीवन के जादू से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता, न अपने मन को इस जादू से सुरक्षित कर सकता है। एक व्यक्ति इन देशों को छोड़ देता है, पर इन रेगिस्तानी स्थानों का वातावरण सदैव उसको याद रहता है और वह बराबर इसकी लालसा करता रहता है, भले ही उसका देश इससे अधिक सुन्दर और जादूई हो।"

वियना में कुछ हफ़्ते के लिए मैं ठहर गया, जहां मैंने अपने पिता से 'सन्धि' करने का उत्सव मनाया। मेरे युनिवर्सिटी को छोड़ने और अनुचित ढंग से उनका साथ छोड़ देने पर उनका रोष व क्रोध अब धीमा पड़ चुका था। मैं अब फ्रान्कफ़र्टर का सम्बाददाता था (वह अख़बार जिसका नाम मध्य यूरोप में उन दिनों बहुत रोब और दबदबे के साथ लिया जाता था) और इस प्रकार मैंने अपने इस दावे के लिए बुनियाद जुटा ली थी कि "मैं चोटी तक पहुंचूंगा।"

प्रेरणा जनक अनुभव

वीयाना से मैं सीधा फ्रान्कफ़र्ट आया ताकि व्यक्तिगत रूप से मैं इस पत्र से अपना परिचय करा दूं, जिसके लिए एक साल तक मैंने काम किया है। यह काम मैंने बहुत इत्मीनान के साथ किया, इसलिए कि फ्रान्कफ़र्ट से जो पत्र मेरे पास आये थे, उससे अन्दाज़ा होता था कि मेरे लेखों को गहरी नज़र से देखा जाता रहा है। मैं अख़बार की पुरानी बिल्डिंग में दाख़िल हुआ और अपना कार्ड डा० साइमन (Dr. Simon) को भिजवा दिया, जो उस समय सम्पूर्ण जगत में प्रसिद्ध थे।

जब मैं उनके आफ़िस में पहुंचा तो एक क्षण के लिए उन्होंने मुझे देखा। वह इतने चकित हो उठे कि न उन्हें खड़े होने का ध्यान रहा और न बात करने का, पर जल्द ही मन को वश में करते हुये वह खड़े हुये और मुझसे हाथ मिलाते हुये कहने लगे:–

"बैठिये, बैठिये, मेरा विचार था कि आप ज़रूर आएंगे।" फिर इसके बाद वे चुप-चाप बराबर घूरते रहे।

मैंने कुछ घुटन और बोझ महसूस करते हुये इस चुप्पी को तोड़ा:–

"क्या इस मामले में कोई ग़लत बात हुई है डा० साइमन?"

"नहीं, नहीं, ग़लती क्या होगी? लेकिन एक तरह से तो सब ग़लती ही ग़लती है?

फिर वह हंसने लगे– "मैं तो समझ रहा था कि बड़ी-बूढ़ी उम्र का कोई आदमी होगा जो सुनहरे फ्रेम की ऐनक लगाये हुये होगा, पर इसके विपरीत मैं अपने सामने एक बच्चे को देख रहा हूं। आप मुझे क्षमा करें, आपकी उम्र क्या होगी?"

तत्काल मुझे हालैण्ड का वह व्यापारी याद आ गया, जिसने मुझसे एक सा पहले यही सवाल पूछा था, मैं अनचाहे ही हंसने लगा।

"मैं इस वक़्त २३ साल से ऊपर हूं, थोड़े ही दिनों में २४ साल का हो जाऊंगा। क्या आप मुझे फ़्रान्कफ़र्टर के काम को देखते हुये छोटा पा रहे हैं?"

डा० साइमन ने कुछ देर रुक कर जवाब दिया, 'नहीं, फ़्रान्कफ़र्टर को देखते हुये नहीं, बल्कि आपके लेखों को देखते हुये आपको छोटा पा रहा हूं। मेरा विचार था कि कोई व्यक्ति जब तक कि वह आपसे ज़्यादा उम्र का न हो, अपने व्यक्तित्व को मनवाने की स्वाभाविक इच्छा को वश में नहीं कर सकता और न अपने व्यक्तित्व से अलग होकर लिख सकता है, जैसा कि आप के लेखों से जान पड़ता था। पत्रकारिता का रहस्य भी यही है कि आदमी बिल्कुल (To the Point) लिखे और उसमें अपनी निजी भावनाओं और विचारों को घुसाये नहीं। इसके अलावा एक और बात भी है, जिसका विचार मुझे अभी हुआ, वह यह कि इस महान भावना और इस सुन्दरता के साथ वही व्यक्ति लिख सकता है, जो आपकी तरह नव-जवान हो।" फिर एक गहरी सांस लेकर उन्होंने कहा, "सत्य तो यह है कि यह मेरी कामना है कि आप भाग्यवान हों और आप और दूसरों की तरह दम्भ में फंसकर और धोखे में आकर ठोकरें न खाते फिरें।"

मेरी कम उम्र होने की वजह से डा० साइमन को पक्का यक़ीन हो गया कि मुझ जैसे पत्रकार से उन्हें भविष्य में अधिक लाभ उठाने की उम्मीद है, इसलिए उन्होंने तुरन्त ही मेरी जल्द से जल्द मध्यपूर्व की वापसी पर हामी भर ली। धन की भी अब कोई कठिनाई बाक़ी न रही थी, इसलिए कि जर्मनी ने पिछले साल सन् २३ ई० में

मुद्रा-वृद्धि को वश में कर लिया था और सिक्के के सन्तुलन ने देश में खुशहाली की एक लहर दौड़ा दी थी। इसके अलावा फ़्रान्कफ़र्टर की हैसियत भी ऐसी थी कि वह अपने विदेशी पत्रकारों के सफ़र खर्च बर्दाश्त कर सकता था, पर डाक्टर साइमन इस इन्तिज़ार में थे कि वायदे के मुताबिक़ मैं वह पुस्तक भी दे दूं, जिसके बारे में मामला पहले से तय हो चुका था, बहरहाल संस्था ने फ़ैसला किया कि मैं चीफ़ एडीटर के आफ़िस में रहूं ताकि बड़े अख़बार के मामलों और कामों को अच्छी तरह जान सकूं।

यद्यपि मेरा दूसरी बार की यात्रा का बड़ा मन था, पर फिर भी ये महीने जो फ़्रान्कफ़र्टर में बीते, वे मेरे लिए बड़े सुखदायक और चहल-पहल वाले थे। फ़्रान्कफ़र्टर एक अख़बार भर नहीं था, बल्कि छान-बीन और आंकड़ों की एक अच्छी-भली संस्था थी। यहां ४५ तो सिर्फ़ फर्स्ट क्लास के एडीटर थे, सिकन्ड ग्रेड के लेखक और रिपोर्टर इसके अलावा थे। लेख तैयार करने का काम मुख्य रूप से बहुत ऊंचे मेयार पर होता था। संसार का हर देश और महत्व वाला हर रजनीतिक व आर्थिक विषय एक विशेषज्ञ के सुपुर्द था जो स्पेशलिष्ट होता था। इस अख़बार की एक अहम बात यह भी थी कि इसके लेख सामायिक परिस्थितियों व घटनाओं भर पर आच्छादित नहीं होते थें, बल्कि इसकी हैसियत राजनीतिक दस्तावेज़ की होती थी, जिससे राजनीतिज्ञ और इतिहासकार फ़ायदा उठाते थे। बर्लिन में यह प्रसिद्ध था कि विदेश मंत्रालय का आफ़िस फ़्रान्कफ़र्टर के विश्लेषणात्मक और अग्र लेखों को उसी मान-सम्मान के साथ सुरक्षित रखता है, जैसे कि सरकारी कागज़ और फ़ाइल आदि, यहां तक कि बिस्मार्क को अख़बार के बर्लिन आफ़िस के इन्चार्ज के बारे में यह कहते हुये सुना गया कि डाक्टर श्ताइन बर्लिन में फ़्रान्फ़र्टर के दूत हैं।

सच तो यह है कि इतनी बड़ी संस्था की सदस्यता मेरी उम्र

वाले नवजवानों के लिए बड़ी ही रुचिकर और मनाकर्पक चीज़ थी, मुख्यरूप में इस दशा में जबकि मध्यपूर्व के बारे में मेरे विचारों ने अखबार में काम करने वालों को बड़ी गम्भीरता से मेरी ओर आकृष्ट कर दिया था और प्रायः उनकी हर दिन की कान्फ्रेन्सों की बातों का यही विषय रहता था। फिर विजय उस समय पूरी हुई जब मध्य पूर्व की एक ऐसी समस्या के बारे में, जो उसी वक़्त पैदा हो गई थी, मुझसे अग्र लेख लिखने के लिए कहा गया।

पाश्चात्य सभ्यता का नया अध्ययन

फ्रान्कफ़र्टर में काम करने के कारण मेरे विचारों व भावनाओं में एक बड़ी उभारने वाली ताकत पैदा हो गई और मैं पहले से ज़्यादा सफ़ाई और स्पष्टता के साथ पश्चिमी जगत को, जिसका मैं दुबारा अंग बन गया था, अपने पूर्वी दुनिया के तजुर्बों और जानकारियों से भिन्न करता रहा। यह बात मुझ पर स्पष्ट होने लगी कि हो सकता है कि यूरोप को आन्तरिक एकरूपता की ज़रूरत और उसकी व्याकुल मानसिक व नैतिक स्थिति इस प्रकार के संबंधों की कमी से पैदा हुई है, जैसे संबंध मैंने अरबों की आन्तरिक शान्ति और उनके ईमान व अक़ीदे के बीच में पाये थे।

यहां—जैसा कि मैंने देखा—एक ऐसा समाज था, जो हालांकि सृष्टि के स्रष्टा से अपना नाता तोड़ चुका था, पर फिर भी किसी नई आध्यात्मिक व्यवस्था की खोज में था। लेकिन बहुत ही कम यूरोपीयन होंगे, जो इसे समझ पाते हों। इनकी बहुसंख्या, जाने या अनजाने तौर पर जो कुछ सोचती और समझती थी, उसे इन वाक्यों में इस तरह कहा जा सकता है:—

"हमारी भावना, हमारा गणित मानव-जीवन के मूल और उसके आदि व अन्त के बारे में किसी निश्चित सिद्धान्त को नहीं बता सकता, इसलिए हमको चाहिए कि तमाम ताक़तें अपनी नैतिक

और बौद्धिक शक्तियों को उगाने-बढ़ाने में लगा दें और इस बात का मौक़ा न दें कि चरित्र व आचरण के वे ढोंग जो बुद्धि से परे हैं और वे चारित्रिक व नैतिक दावे या कल्पनाएं जो केवल अनुमान व अटकल पर आधारित हैं और उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं, हमें छेड़ें और हमारी राह में रोड़े अटकाएं।"

यद्यपि पश्चिमी समाज ने स्रष्टा का खुल्लम-खुल्ला इन्कार नहीं किया, पर उसने इसे अपनी विचार-धारा में कोई जगह भी नहीं दी।

ईसाई धर्म की जीवन-धारणा

पिछले सालों में जब मैं अपने पुरखों के धर्म से निराश हुआ था, उस वक़्त मैंने ईसाई धर्म पर विचार करना चाहा। वहां अल्लाह का विचार पुराने ज़माने के विचार से कहीं अच्छा और ऊंचा था, उसने अल्लाह की कृपा और दया को किसी विशेष गिरोह के साथ मुख्य नहीं किया था, बल्कि उसे पूरी मानवता का पालनहार समझा था, पर फिर भी उसमें एक चीज़ ऐसी थी, जिसने उसकी व्यापकता को ठेस पहुंचाई थी— वह था आत्मा और शरीर और ईमान और अमल का अन्तर।

ईसाई धर्म के इन्हीं रुझानों और भावनाओं की पकड़ ही से, जो सांसारिक जीवन को ठीक रखने और भौतिक कोशिश करने से सम्बन्धित थे, मुझे महसूस होने लगा कि एक ज़माने से वह ऐसा नहीं रहा कि पश्चिमी सभ्यता को कोई उत्साह बढ़ाने वाली नैतिक व मानसिक शक्ति दे सके। उसके मानने वाले इस विचार-धारा से भली प्रकार परिचित हो चुके थे कि धर्म को व्यवहारिक जीवन में हस्तक्षेप करने का कोई हक नहीं, वह अपने धार्मिक विश्वासों को एक विशेष प्रकार के सीमित दृष्टिकोण से देखने पर भरोसा कर बैठे थे, जिसमें व्यक्तिगत श्रेष्ठता और पुण्य मुख्य रूप से लौकिक

शुद्धता और पाकी का एक अस्पष्ट भाव मिल जाता था, चर्च का पुराना रुझान इस सिलसिले में उनका सहायक व मददगार था।

"जो खुदा का है खुदा को दो और और जो क़ैसर का है क़ैसर को दो" का नियम भी सामाजिक व आर्थिक ढांचों में कोई काम की तबदीली न पैदा कर सका, नतीजा यह हुआ कि ईसाई राजनीतिक और 'नजात' का विचार हज़रत मसीह के बताये रास्ते के बिल्कुल विपरीत दिशा में चल पड़ा और आगे बढ़ता रहा। पश्चिम में धर्म इसलिये असफल हो गया कि वह अपने अनुयायियों को सांसारिक मामलों के लिये कोई मज़बूत बनियाद नहीं दे सका। जोकि मेरी राय में हज़रत मसीह का सन्देश था और जो वास्तव में हर धर्म का बुनियादी काम है—अर्थात् यह कि समाज में शुद्ध चेतना व पवित्र भावना पैदा की जाये और ऐसे हालात बना दिये जायें कि जिसमें वह शुद्ध जीवन बिता सके।

फलस्वरूप इस सीमित विचार वाले धर्म ने उस की आशाओं पर पानी फेर दिया।

कुछ ही शताब्दियों के भीतर पश्चिम का आदमी ईसाई धर्म के ईमान से बिल्कुल अलग हो गया और इस ईमान के नाश से उसका यह विश्वास भी जाता रहा कि यह सृष्टि एक मान्य शक्ति का कारनामा है और वह स्वयं इस कुल का एक अंग है। इस ईमान व विश्वास के ख़त्म होने के बाद अब वह एक आध्यात्मिक और नैतिक शून्यता में जीवन बिता रहा है।

मैंने महसूस किया कि पश्चिम का ईसाई धर्म से दूर भागना और उससे विमुख होना, सच में पाल के उस दृष्टिकोण के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है, जिसमें जीवन को बिल्कुल तुच्छ दिखाया गया है और जिसने मसीह की शिक्षाओं को बिल्कुल अस्पष्ट और न समझने योग्य बना दिया है। ऐसी स्थिति में पश्चिमी सोसाइटी का यह दावा

कैसे ठीक हो सकता है कि वह ईसाई सोसाइटी है? उसे इस बात की आशा क्यों है कि बिना किसी मज़बूत ईमान के वह अपनी वर्तमान व मानसिक अराजकता पर क़ाबू पा सकता है?

पश्चिम का ईमान से महरूम और व्याकुल संसार

एक ऐसा संसार जहां व्यथा और उफान हो, यह था हमारा पश्चिमी संसार, नाश-विनाश और लूट-मार का संसार, सामूहिक विचारों में खींचातानी, चिन्तनशील धर्मों से संघर्ष ज़ीवन के नये-नये तरीक़ों और फैशन के लिए हर जगह एक कड़ा मुक़ाबला, ये हैं हमारे युग के कुछ लक्षण।

विश्व युद्ध के धुएं के भयानक बादलों और तबाहियों से लेकर छोटी-छोटी लड़ाइयों तक जिन की कोई गिनती ही नहीं, क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति, आर्थिक संकट, जो उस समय के तमाम संकटों से बढ़-चढ़ कर था, इन तमाम दुरुह घटनाओं ने यह हक़ीक़त खोल दी थी कि कलात्मक, औद्योगिक और भौतिक प्रगतियों पर पश्चिम की पूरी शक्ति लग जाने से भी वर्तमान अशान्ति व अव्यस्था में तनिक भी कमी न हुई। नव-जवानी का मेरा यह स्वाभाविक रुझान कि सिर्फ़ रोटी से मनुष्य ज़िन्दा नहीं रह सकता, बुद्धि का एक फ़ैसला बन चुका था कि तरक्क़ी की यह कोशिश पुराने ईमान की जगह भरने के लिए थी जो अभौतिक मापदण्डों पर स्थापित था, इस कमी को पूरा करने के लिए उन लोगों ने एक झूठा ईमान ईजाद किया था और अपने को इस धोखे में रखना चाहा था कि मनुष्य क़िसी न किसी तरीक़े से सिर्फ़ प्रगति की भावना को साथ लेकर वर्तमान संकटों पर क़ाबू पा सकता है।

मैं नहीं समझता कि इन वर्तमान आर्थिक व्यवस्थाओं में से कोई भी व्यवस्था, जिसके पीछे यह गुमराह करने वाला और धोखे से भरा हुआ विचार काम कर रहा है, पश्चिमी समाज के संकटों

और कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक सामायिक दवा से भी अधिक कोई चीज़ साबित हो सकती है? ज़्यादा से ज़्यादा यह कहा जा सकता है कि सम्भव है वह इसके कुछ रोगों को दूर कर दे, पर इन रोगों के कारणों को जड़ से उखाड़ने में वह कभी सफल नहीं हो सकता।

मध्य पूर्व की दुबारा यात्रा

सन् १९२४ की वसन्त ऋतु में मुझे फ्रान्कफ़र्टर ने मध्य पूर्व के लिए रवाना कर दिया। इससे पहले मैंने वायदे के मुताबिक़ डाक्टर की वह पुस्तक लिखकर दे दी, जिसमें मेरे सफ़रों की रिपोर्ट थी। वह मेरी रवानगी के कुछ महीनों बाद छप गई और यद्यपि इसमें यहूदी धर्म के विपरीत रुझान और अरबों की ओर असाधारण झुकाव के कारण जर्मन-पत्रकारिता में एक हलचल मच गई, पर इसके बावजूद पुस्तक ज़्यादा न निकल सकी।

मैं मध्य श्वेत सागर को पार करके अब मिस्र के किनारे था। पोर्ट सईद से क़ाहिरा तक मेरा रेल का सफ़र ऐसा था, जिस तरह किसी पढ़ी हुई पुस्तक के दुबारा पन्ने उलटे जाएं। नहर स्वेज और मन्ज़िला सागर के मध्य बत्तखें पानी में तैर रही थीं। Tamatisks के पत्ते और डालियां जो पंखे की ख़ूबसूरत शक्ल की तरह हिल रही थीं। मैदानों में कुछ गांव दीख पड़े जो कहीं हरे-भरे नज़र आते और कहीं ख़ाली दीख पड़ने लगते थे।

भैंसे और कभी-कभी उनके साथ ऊंट गीली ज़मीन पर हल चला रहे थे। जब हम स्वेज़ नहर से पश्चिम की ओर नज़र डालते तो हरियाली हर ओर हमको खींचने लगती, जब दूसरी बार मेरी नज़र उन कोमल और लम्बे क़द वाली औरतों पर पड़ी जो बड़े ही सन्तुलन के साथ झूमती हुई चल रही थीं और अपने सिरों पर भरे हुये घड़े रखे हाथ छोड़े हुये उन खेतों में आ जा रही थीं तो मैंने अपने मन में कहा:—

अच्छी से अच्छी कार लेकर बड़े से बड़े पुल तक और क़ीमती से क़ीमती किताब तक, कोई चीज़ भी इस सौन्दर्य की जगह को भर नहीं सकती जो यूरोप में नष्ट हो चुका है और जो पूरब में भी संकटाग्रस्त है– यह सौन्दर्य इस विशाल सृष्टि और मानव-जीवन के मध्य जादुई एकरूपता और सामंजस्य के दूसरे नाम के अलावा और कुछ भी नहीं!

ट्रेन के उद्गार

इस बार मैं फ़र्स्ट क्लास में सफ़र कर रहा था, डिब्बे में मेरे अलावा दो मुसाफ़िर और थे— एक स्कन्दरिया का यूनानी व्यापारी जो मुझसे पूरब वालों की आदत के मुताबिक़ बहुत जल्द घुल मिल गया और उससे-बेतकल्लुफ़ी के साथ बातें होने लगीं और दूसरा एक मिस्री चौधरी जो अपने क़ीमती रेशमी जुब्बे (लम्बा कुर्ता) और सुनहरी घड़ी से देखने में मालदार मालूम हो रहा था, पर वह अपने एकान्तर पर भरोसा करके एक ओर चुपचाप बैठा रहा और सच तो यह है कि जिस समय वह बातचीत में शरीक हुआ, उसी समय उसने यह बात स्वीकार कर ली कि वह लिखना-पढ़ना नहीं जानता, पर उसकी बातों से इतना अन्दाज़ा ज़रूर हुआ कि वह अच्छे स्वभाव का बुद्धिमान व्यक्ति है।

हम लोग, जैसा कि मुझे याद पड़ता है, इस्लाम के कुछ सामाजिक नियमों पर बातें कर रहे थे, जो उस समय मेरे मन व मस्तिष्क पर छाये हुये थे। साथी यूनानी मुसाफ़िर ने इस्लामी शरीअत के "सामाजिक न्याय" के बारे में मेरी बातों की पूरी तरह ताईद नहीं की।

उन्होंने कहा:—

"इस्लामी शरीअत इतनी न्यायपूर्ण नहीं है, जितनी आप समझ रहे हैं, मेरे दोस्तो! फिर वह फ़्रान्सीसी के बजाये अरबी में बातें करने लगे, ताकि हमारा मिस्री साथी भी समझ सके। उन्होंने उसकी ओर चेहरे को फेरते हुये कहा:—

"आप लोग कहते हैं आपका धर्म बड़ा ही न्यायपूर्ण है, क्या आप इसका उत्तर दे सकते हैं कि जब इस्लाम मुसलमानों को ईसाई

और यहूदी औरतों से शादी करने की इजाज़त देता है तो आपकी बहनों और बेटियों को इसकी इजाज़त क्यों नहीं देता कि वे ईसाइयों और यहूदियों से शादी कर सकें। क्या इसे न्याय कहा जा सकता है?"

"इसे न्याय ही कहेंगे" गम्भीर चौधरी ने एक मिनट की देर किये बिना ही उत्तर दिया, "मैं आपको बताता हूं कि इस्लामी शरीअत ने यह नियम क्यों बनाया है? सुनिए हम मुसलमानों का यह विश्वास नहीं कि मसीह खुदा के बेटे हैं हम उन्हें हज़रत इब्राहीम और दूसरे नबियों की तरह अल्लाह का रसूल समझते हैं और इस पर ईमान रखते हैं कि वह वही तरीक़ा लेकर आये थे, जो अन्त में आख़िरी नबी मुहम्मद (सल्ल०) लाए थे। अब अगर कोई ईसाई या यहूदी लड़की किसी मुसलमान से शादी करती है तो वह इस बात का इत्मीनान कर सकती है कि उसके इस नये परिवार और नए घराने में उसके मान्य महात्माओं का नाम आदर व सम्मान के साथ लिया जाएगा, इसके खिलाफ़ अगर कोई मुसलमान लड़की ग़ैर-मुस्लिम से शादी करती है तो उसे ठीक ही ख़तरा रहता कि जिसको वह अल्लाह का रसूल समझती है, मुम्किन है उन्हें बुरे नामों से याद किया जाए, हो सकता है कि ख़ुद अपनी औलाद ही से उसको ऐसी बातें सुननी पड़ें। क्या लड़के अपने बाप के धर्म का पालन न करेंगे? ऐसी स्थिति में क्या आप इसे न्याय समझेंगे कि उस बेचारी औरत को बराबर कष्ट और दुख सहन करने के लिए छोड़ दिया जाए।"

यूनानी व्यापारी ने निरुत्तर होकर उदासीनता से अपने कन्धे को झटका दिया। जहां तक मेरा ताल्लुक़ है मुझे महसूस हुआ कि उस अपढ़ चौधरी ने अपनी सद्प्रवृत्ति से, जिसमें वह अपने साथियों से बढ़ा हुआ दीख पड़ता था, एक बड़ी ही महत्वपूर्ण समस्या के बारे में बड़े पते की बात कह दी है और दूसरी बार—जिस तरह बूढ़े हाजी के साथ बैतुलमक़्दिस में पहली बार हुआ था—मैंने यह महसूस किया कि मेरे लिए इस्लाम का नया दरवाज़ा खुल रहा है।

क़ाहिरा का रमज़ान

अपनी अच्छी आर्थिक स्थिति के कारण मैं क़ाहिरा में इस तरह रह सकता था कि कुछ महीनों पहले मेरे लिए जिसका विचार करना भी कठिन था। अब मुझे एक-एक पैसा गिनने की ज़रूरत नहीं थी। वह ज़माना गुज़र चुका था जब मैं यहां ठहरने के अपने पहले दौर में केवल रोटी, ज़ैतून और दूध पर गुज़ारा करता था, लेकिन मैंने एक तरफ़ से अपने पिछले जीवन ही को बाक़ी रखना उचित समझा। इसलिए नए क़ाहिरा के किसी मुहल्ले में मकान लेने के बजाए अपनी बूढ़ी मेज़बान के मकान में एक कमरा किराये पर ले लिया। ट्रस्ट की उस बूढ़ी औरत ने बाहें फैलाए हुये और मातृ-प्रेम के साथ मेरे गालों को चूमते हुये मेरा स्वागत किया।

मेरे आने के तीसरे दिन मग़रिब (सूर्यास्त) के वक़्त किले की ओर से तोप का गोला छूटने की एक हल्की आवाज़ आई, ठीक उसी वक़्त किले की मस्जिद के दोनों ऊंचे मनारे भी रोशन हो गये। हर मनारे पर एक ही क़िस्म की रोशनी का एक गोलाकार जैसा बन गया था। पुराने क़ाहिरा में अजीब घमाघमी पैदा हो गई थी, लोगों के क़दम तेज़ी के साथ उठ रहे थे और सड़कों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मिली जुली आवाज़ें पैदा होने लगी थीं। आप अच्छी तरह और बहुत आसानी से ऐसा महसूस कर सकते थे कि हर्ष और उमंग की एक नई लहर हर जगह फैल गई है।

यह सब कुछ नए चांद की वजह से था, जिस ने नए महीने के आने का ऐलान किया था। रमज़ान का महीना जो इस्लामी साल का सबसे अधिक पवित्र महीना है, वह उस वक़्त की याद ताज़ा करता है जब आज से तेरह सौ साल पहले सर्वप्रथम कुरआन उतरा था। हर मुसलमान पर पूरे महीने के रोज़ों का रखना फ़र्ज़ कर दिया गया और रोगियों को छोड़ कर हर मर्द-औरत के लिए खाना-पीना (यहां

तक कि सिगरेट का पीना भी) भोर से लेकर सूर्य के डूबने तक मना कर दिया गया, लगातार ३० दिन के लिए। इन तीस दिनों में लोग अपनी चमकदार और तेज़ निगाहों के साथ क़ाहिरा की सड़कों पर घूमते थे, ऐसा जान पड़ता था मानो वे उड़कर किसी पवित्र स्थान पर पहुंच गये हों। तीसों रातों में गोला छुटने व गाने की तथा हर्ष व प्रसन्नता की भिन्न-भिन्न मिली-जुली आवाज़ें आती रहती थीं और मस्जिदें सुबह तक रोशन रहती थीं।

यह महीना, जहां तक मैं समझता हूं, दुहरा मक़्सद रखता है—एक तो यह कि आदमी खाने-पीने से रुक कर उस हालत का तजुर्बा करे, जिसमें दीन-दुखी लोग रहते हैं और मानव चेतना में सामूहिक ज़िम्मेदारी का एहसास एक धार्मिक कर्तव्य के रूप में मज़बूत हो। दूसरा मक़्सद यह है कि मनुष्य में खुद को कन्ट्रोल करने का गुण पैदा हो, जो व्यक्ति के चरित्र का वह भाग है जिम पर तमाम इस्लामी शिक्षायें बहुत ज़्यादा ज़ोर देती हैं, जैसे मादक वस्तुओं को पूरी तरह हराम करना आदि। तात्पर्य यह कि इन दो पहलुओं, मानव-भाईचारा और खुद को कन्ट्रोल करने की भावना को देख कर इस्लाम नैतिक उच्चता और श्रेष्ठता के मुख्य-मुख्य प्वाइन्ट मेरी समझ में आना शुरू हो गये।

शेख़ मराग़ी

इस्लाम की इन हिकमतों और मकसदों को और अधिक पूर्ण रूप से समझने की कोशिश में मैंने उन बातों और उन व्याख्यानों से बहुत फ़ायदा उठाया, जिसका मौक़ा मुझे क़ाहिरा के मुसलमान दोस्तों से मिला। इनमें सबसे प्रसिद्ध व्यक्ति शेख़ मुस्तफ़ा मराग़ी थे जो उस वक़्त, निस्सन्देह जामिआ अज़हर के विद्वानों में सब से अधिक प्रसिद्ध थे और इस्लामी जगत् के आलिमों में भी प्रसिद्धि रखते थे (कुछ साल के बाद वह अज़हर के शेख़ भी हो गये थे) उनकी उम्र ४० और ५०

साल के बीच होगी, लेकिन उनके भरे हुये सुडौल शरीर में २० वर्ष के नव-जवान की फुरती और ज़िन्दगी थी। वह ज्ञान के भण्ड़ार थे, जानकारियां बहुत थीं, गम्भीर थे, साथ ही साथ हंसमुख और मृदुल स्वभाव के थे और प्रसिद्ध मिस्री सुधारक मुहम्मद अब्दुहू की शिष्यता और जमालुद्दीन अफ़गानी सरीखे कर्मठ वीर से बचपन और नव-जवानी में निकट होने के कारण स्वयं एक विचारक, समालोचक और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे।

उन्होंने मुझे कभी यह बताने में संकोच या सुस्ती से काम नहीं लिया कि "आज के मुसलमानों ने उच्च शिक्षाओं और सिद्धान्तों के साथ बड़ी कोताही से काम लिया है और इससे बड़ी कोई ग़लती न होगी कि मुहम्मद (सल्ल०) के सन्देश की शक्तियों और विस्तृत संभावनाओं को वर्तमान मुसलमानों के जीवन और विचार-धारा की कसौटी पर परखा जाये। उन्होंने कहा बिल्कुल ऐसे ही यह ग़लत बात होगी जैसे कि हम ईसाइयों के प्रेम और उदारता के प्रतिकूल कार्यों को देखकर हज़रत ईसा के प्रेम-संदेश को ही दोष देने लगें।

इस चेतावनी के साथ शेख़ मराग़ी ने अज़हर से मेरा परिचय कराया।

हम मस्जिद के आंगन में दाख़िल हुये, मैंने देखा कि छात्रगण लम्बी और काली इबाओं (लम्बे कुर्ते) में सफ़ेद पगड़ियां अपने सिरों पर बांधे हुये चटाई पर बैठे हैं और धीमी आवाज़ से किताबें पढ़ रहे हैं, लेक्चर मस्जिद की बड़ी दालान में दिए जातें थे, जहां अनेकों अध्यापक चटाइयों पर बैठे होते। हर अध्यापक के चारों ओर पालथी मारे बैठे हुये छात्रों का एक गोलाकार समूह होता था, अध्यापक भी ऊंची आवाज़ से नहीं पढ़ता था। मुझे यह एहसास हुआ कि ध्यान-मग्न होना, बात समझने के लिए ज़रूरी है और यह ध्यानमग्नता सच्चे ज्ञान तक ज़रूर पहुंचाती होगी, पर शेख़ मराग़ी

ने जल्द ही मेरे विचारों का क्रम तोड़ दिया। उन्होंने कहा:-

"आप इन विद्वानों को देख रहे हैं। इनका उदाहरण भारत की उन गायों जैसा है जिन्हें वहां के लोग बहुत ही पवित्र समझते हैं और जिनके बारे में मैंने सुना है कि सड़क पर जितने भी कागज़ और रद्दी के टुकड़े उनको दीख पड़ते हैं, वे सब चट कर जाती हैं, यही हाल इन का है, ये उन किताबों को भी चट कर चुके हैं जो सदियों पहले लिखी गई हैं, पर इन्हें पचा नहीं सकते। वे इस सिलसिले में कुछ विचार करना भी नहीं चाहते, पढ़ते रहते हैं और दुहराते रहते हैं। ये शिष्यगण जो एकाग्र होकर इनके पाठ में शरीक हैं, इनका भी यही काम है कि वे नस्ल दर नस्ल पढ़ते और दुहराते रहें।"

इस्लामी जगत का ठहराव

मैंने उनकी बात ख़त्म होने से पहले ही कहा:- "पर शेख़ मुस्तफ़ा अज़हर बहरहाल इस्लामी ज्ञान का अपूर्व भण्डार है और संसार की सबसे पुरानी युनिवर्सिटी है। इस्लामी सभ्यता के इतिहास के लगभग हर पृष्ठ पर इसका नाम खुदा हुआ है। उन विचारकों, विद्वानों, इतिहासकारों, दार्शनिकों और गणितज्ञों तक के बारे में आप क्या कहते हैं जिन को अज़हर ने अन्तिम दस शताब्दियों में पैदा किया है?"

उन्होंने तीखेपन और दुख के साथ जवाब दिया:-

"अब कई शताब्दियों से इनका पैदा होना बन्द हो गया। हो सकता है कि ये शब्द तनिक अतिश्योक्तिपूर्ण हों इसलिए कि वर्तमान युग में कभी-कभी एकाध विचारक पैदा हो गए हैं, पर सामूहिक रूप से अब अज़हर बांझपन का शिकार है, जिस का प्रभाव पूरे इस्लामी जगत पर पड़ रहा है। इसकी सुलगती हुई चिंगारी बुझ चुकी है। इन पुराने इस्लामी विचारकों ने जिनका

वर्णन अभी आप ने किया, कभी भूल कर भी यह न सोचा होगा कि इनके विचार और इनकी रचनायें (इस के बजाए कि नए विचार और नई रचनाएं सामने आएं, और तरक़्क़ी और आगे बढ़ने का काम जारी रहे) वैसे ही बराबर दोहराई जाती रहेंगी, जैसे कि वे अन्तिम और तय कर दी गई वास्तविकतायें हों। अगर हमें अपनी हालत बदलना मंज़ूर है तो फिर हमें पुराने विचारों को माने चले जाने के बजाये नये दृष्टिकोण और नये विचारों को प्रोत्साहित करना होगा।"

अज़हर पर शेख़ मराग़ी की इस कड़ी आलोचना ने मेरी उस सांस्कृति गिरावट के समझने में कुछ सहायता की, जिसे इस्लामी जगत के हर भाग में देख कर एक व्यक्ति चकित रह जाता है। क्या इस्लामी जगत को सामूहिक शिथिलता इस पुरानी युनिवर्सिटी के ज्ञानात्मक शैथिलता का विभिन्न श्रेणियों में प्रतिबिम्ब तो नहीं है? क्या मानसिक शक्तियों का अपंग हो जाना और मुसलमानों का अनुचित और अनजाना आश्रय और भरोसा ही तो नहीं है, जिसने मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या को अनावश्यक उपवास और दीनता को झेलने, विभिन्न सामूहिक कष्टों और रोगों अंधे बहरे हो कर सहन करते रहने पर तैयार कर रखा है?

मैंने अपने मन से पूछा कि अगर मुसलमानों की गिरावट के प्रत्यक्ष लक्षण और उनकी ये गवाहियां, इन्हें देख कर यूरोप में इस्लाम के बारे में इतनी ज़्यादा ग़लतफ़हमियाँ फैल गई हैं तो इस पर चकित न होना चाहिए। इन ग़लतफ़हमियों और इन विचारों का सार यह था कि मुसलमानों के पतन का असली कारण उनका यही धर्म इस्लाम है, जो अलावा इसके कि कठिन है और यहूदी मत के मुक़ाबले में स्वीकार करने योग्य नहीं है, बल्कि रेगिस्तान की अतिश्येक्तियों, अन्ध-विश्वासों, कहानियों और अन्धे भाग्य के

दृष्टिकोणों का ऐसा अपवित्र योग है जो अपने अनुयायियों को मानवता की तरक़्क़ी और ख़ुशहाली के लिए नई-नई उच्च सामूहिक व्यवस्थाओं में शरीक होने से रोके रखता है, बल्कि, वह इन बेड़ियों को और मज़बूती से कस देता है। आम तौर पर पश्चिम वालों का विचार यही है कि मुसलमानों को उनके विश्वासों और इस्लाम की सामूहिक रीतियों से जितनी जल्द छूट मिलेगी और वे पाश्चात्य जीवन-पद्धति को अपना सकेंगे उतना ही उनके लिए और पूरी मानवता के लिए बेहतर होगा।

मुसलमानों का पतन क्यों?

जहां तक मेरे विचार का ताल्लुक़ है, जिस पर अब मैं पूरे तौर पर सन्तुष्ट हो चुका था, वह यह था कि एक योरुपीय के दिमाग़ में इस्लाम का जो चित्र है, वह बिल्कुल भ्रष्ट और बिगड़ा हुआ है। क़ुरआन के पृष्ठों में मैंने जो कुछ देखा था, उसे कोई कच्चा और फुसफुसा दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता। यहां उपास्य की एक ठोस धारणा थी, जो प्राकृतिक छवियों को भौतिक रूप से स्वीकार करने के पक्ष में है, यहां प्रत्यक्ष प्रेरकों और मन, आध्यात्मिक तक़ाज़ों और सामूहिक तक़ाज़ों के बीच एक सुन्दर सामन्जस्य और एकरूपता मिलती है। यह बात मेरे सामने खुलकर आ गई थी कि मुसलमानों का पतन इस्लाम में किसी त्रुटि के कारण से नहीं है, बल्कि इस्लामी शिक्षाओं पर अमल न करने के कारण से हुआ।

सच पूछिए तो इस्लाम ही था, जिसने सबसे पहले मुसलमानों को संस्कृति व सभ्यता की ऊंची से ऊंची चोटी पर पहुंचा दिया था, इसने उनकी पूरी क्षमताओं को अल्लाह की सृष्टि और रचना को समझने और उसके इरादे और इच्छा को भांप जाने पर लगा दिया था। इस्लाम ने कभी उन से इस बात की मांग नहीं की कि वे कठिन

और समझ में न आने योग्य विश्वासों को मान लें, और न किसी ऐसे ही अस्वाभाविक दावे का उसके सन्देश में कोई वजूद ही है। ऐसे ही ज्ञान विज्ञान, जो मुसलमानों के इतिहास की विशेषता थी, ईमान के ख़िलाफ़ न था, बल्कि ईमान के लिए सहायक ही बना था।

इस्लाम ने ज्ञान-विज्ञान को बढ़ावा दिया

अरबी नबी (सल्ल०) के इस ऐलान से कि "ज्ञान प्राप्त करना हर मुसलमान मर्द और औरत का कर्तव्य है," उनके मानने वाले इस बात पर मजबूर हुये कि ज्ञान प्राप्त करना अल्लाह की इबादत है, फिर जब उन्होंने नबी के इस कथन पर विचार किया कि, 'अल्लाह ने कोई रोग ऐसा पैदा नहीं किया, जिसकी दवाई न पैदा की हो।" तो उन्हें इसका भी एहसास हुआ कि अनजानी दवाइयों की खोज निकालना भी इस जगत में अल्लाह की इच्छा पूरी करना ही है, इस आधार पर डाक्टरी रिसर्च को धार्मिक कर्तव्य होने की हैसियत से एक प्रकार का आशीर्वाद मिल गया।

मुसलमानों ने कुरआन की इस आयत को पढ़ा—"हमने पानी से हर चीज़ को ज़िन्दा बना रखा है।" और उसकी सच्चाई जानने के लिए उन्होंने जीवन-सृष्टि और उसके विकास आदि का अध्ययन शुरू किया। इस तरह जीवन-शास्त्र (Biology) की नींव पड़ी। कुरआन ने सितारों आदि की व्यवस्था, सौर-मंडल का पूरा प्रबन्ध और उनकी चाल आदि की ओर उसके रचयिता की महत्ता स्पष्ट करने के लिए इशारे किये। अतएव मुसलमानों ने खगोल-शास्त्र व गणित शास्त्र के पढ़ने और समझने में उसी हाव-भाव को दर्साया जो कि दूसरे धर्मों में केवल उपासनाओं में दीख पड़ता है।

कोपरनीकी सिद्धान्त (Copernican System) जिसने पृथ्वी की गोलाई और सूर्य के चारों ओर ग्रहों के घूमने की बात सिद्ध

की थी, वह यूरोप में सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रचलित हुई और पादरियों ने पवित्र ग्रन्थ की शिक्षाओं के विरुद्ध समझते हुये बड़े ही रोब के साथ उसका स्वागत किया था, पर इस सिद्धान्त की नींव इस घटना से छः सौ वर्ष पहले इस्लामी देशों में रखी जा चुकी थी। नवीं और दसवीं शताब्दी के मुसलमान खगोल-शास्त्रज्ञ इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि ज़मीन गोल है और वह अपनी धुरी पर चक्कर लगा रही है। लम्बाई-चौड़ाई नापने के उन्होंने बड़े बारीक हिसाब लगाये थे। इनमें बहुत से लोग (बिना इसके कि उन्हें विधर्मी हुआ मान लिया जाए)। ऐसा दृष्टिकोण रखते थे कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूम रही है। ऐसे ही केमिस्ट्री, फिजियालोजी, और दूसरे बहुत से शास्त्रों में इस्लामी अनुभूति (Genius) और उच्च सोच-विचार ने अमिट छाप छोड़ी है और ये तमाम बातें नबी के इन कथनों का नतीजा थीं कि "विद्वान नबियों के उत्तराधिकारी हैं।" और जो अल्लाह के रास्ते में ज्ञान-प्राप्ति के लिए निकलेगा, अल्लाह उसके लिए जन्नत का रास्ता आसान कर देगा और केवल इबादत करने वालों पर इल्म (ज्ञान) हासिल करने वाले को ऐसी प्रधानता है जैसे चौदहवीं रात के चांद की तमाम सितारों पर और एक कथन में यह है, जैसी मेरी श्रेष्ठता तुम्हारे एक मामूली आदमी पर है।"

इस्लामी इतिहास के पूरे रचनात्मक काल में (अर्थात् नबी के बाद से पांच शताब्दियों तक) इस्लामी सभ्यता से ज़्यादा ज्ञान प्राप्त करने और फैलाने का काम किसी और सभ्यता ने इस जगत में न किया—ऐसा मेरा विश्वास है।

मध्ययुगीन इस्लामी जगत की सभ्यता

"पूरा सामूहिक जीवन इस्लाम की शिक्षाओं से प्रभावित था,' इसका अन्दाज़ा इससे होगा कि उस ज़माने में जब ईसाई यूरोप में महामारियों को "खुदा का बदला" समझा जाता था जिसके सामने मनुष्य को पूरे सब्र और ख़ामोशी के साथ सिर झुका देना चाहिए, उसी ज़माने में बल्कि उससे भी बहुत पहले मुसलमान नबी की इस वसीयत पर जमे हुये थे, जिसमें उन्हें प्रभावित क्षेत्रों को दूसरे क्षेत्रों से काट कर के इन महामारियों का मुक़ाबला करने का हुक्म दिया गया था और उस ज़माने में जब ईसाई बादशाहों, सरदारों और सज्जनों के नज़दीक नहाना एक बड़ी निन्दा का काम था, उस वक़्त हर मुसलमान के घर में कम से कम एक हम्माम (स्नान-घर) ज़रूर मौजूद था।

पब्लिक हम्माम हर इस्लामी शहर में आमतौर से होते थे (जैसे नवीं शताब्दी में सिर्फ़ क़ुरतबा में तीन सौ हम्माम थे) यह सब नबी के उस हुक्म को पूरा करने के लिए था, जिसमें कहा गया था कि, पाकी और सफ़ाई ईमान का हिस्सा है।" जब मुसलमान भौतिक जीवन के सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करता था तो वह उसको अपनी आध्यात्मिक मांगों और तक़ाज़ों से टकराता हुआ नहीं समझता था, इसलिए कि नबी ने फ़र्माया है कि "अल्लाह अपने बन्दे पर अपनी नेमत की निशानियां देखकर खुश होता है।"

कहना यह है कि इस्लाम ने सांस्कृतिक गतिविधियों को जितना प्रोत्साहित किया है, वे इतिहास के सबसे अधिक जग-मगाते पन्ने हैं। जिस धर्म ने बुद्धि के लिए "हां" कहा हो, अज्ञानता के लिए "नहीं" कहा हो, गति के लिए हां कहा हो, शिथिलता के लिए

"नहीं" कहा हो, जीवन के लिए "हां" कहा हो, मनोदमन के लिए "नहीं" कहा हो, उसके लिए इसमें कोई अचम्भे की बात नहीं कि वह अरब प्रायद्वीप की सीमाओं को पार करते ही नए-नए अनुयायियों को अपने भीतर समेटने लगा और भीड़ की भीड़ इसमें आकर शामिल होने लगी। सीरिया, उत्तरी अफ्रीका और इसके कुछ ही दिनों बाद स्पेन के लोग यकायकी एक ऐसे धर्म के सामने थे जो "पहले गुनाह" का इन्कारी था और इस पृथ्वी के जीवन के स्वभाविक रूप का जोशीला हामी। नतीजा यह हुआ कि वे बड़ी संख्या में उस धर्म में दाख़िल होने लगे, जिसने मनुष्य को इस धरती पर ख़ुदा का ख़लीफ़ा (नायब) बनाया था। यह था इस्लाम की उस आंखें फाड़ देने वाली विजय का कारण, जो उसे अपने महान इतिहास के शुरू में प्राप्त हुई।

मुसलमानों के कारण इस्लाम एक महान शक्ति नहीं बना, बल्कि उसने स्वयं मुसलमानों को आदर और प्रतिष्ठा दी। पर जब मुसलमानों का ईमान आदत बन गया और एक व्यवस्था की हैसियत से बाक़ी न रहा, जिसका पालन सोच-समझ कर किया जाता हो, तो उनको यह उभारने वाला और महान बनाने वाला शक्ति-दीप, जो उनकी संस्कृति व सभ्यता को प्रदीप्तमान किये हुये था, बुझ गया और शिथिलता, निराशा और गिरावट का रास्ता खुल गया।

इस नई चेतना और अरबी भाषा में अधिक जानकारी के कारण (यह स्पष्ट रहे कि मैंने अज़हर के एक छात्र से यह मामला कर लिया था कि हर दिन मुझे अरबी पढ़ा दिया करे) मैंने महसूस किया कि मुझे एक ऐसी चीज़ मिल गई है जिसे मैं इस्लामी चिन्तन की कुन्जी समझता हूं। मेरा यह विश्वास अब कमज़ोर पड़ गया था कि यूरोप इस्लाम का पूरा चित्र नहीं प्राप्त कर सकता, जैसा कि कुछ महीने पहले मैंने अपनी पुस्तक में लिखा भी था। इस्लामी जगत

यूरोप में इस हद तक घुला-मिला भी नहीं था कि उसको समझना कठिन हो, मुझे ऐसा जान पड़ा कि अगर कोई व्यक्ति अपने पीछे के विचारों से कैसे भी अलग हो सके और यह समझ सके कि केवल उसी के सोचने का ढंग सही नहीं है तो उस वक़्त इस्लामी जगत उसके समझने योग्य बन सकता है।

क्या एक व्यवस्थित धर्म ज़रूरी है?

यद्यपि मैंने इस्लाम मे बहुत सी ऐसी चीज़ें पाई थीं जिन्होंने मेरे विचारों को बहुत अपील किया था, पर फिर भी मुझे यह बात एक सूझ-बूझ वाले बुद्धिमान व्यक्ति के स्तर से गिरी हुई दीख पड़ी कि वह जीवन के बारे में अपने तमाम विचारों व सिद्धान्तों को केवल एक ऐसी व्यवस्था के पालन के लिए बिल्कुल ही नष्ट कर दे, जिसे स्वयं उसने रचा भी नहीं।

मैंने अपने विद्वान् दोस्त शेख़ मराग़ी से एक अवसर पर पूछा:—

"यह बताइये शेख़ मुस्तफ़ा! क्या ऐसा ज़रूरी है कि आदमी अपने को एक ही प्रकार की शिक्षाओं और विशेष प्रकार के आदेशों का पाबन्द बना ले? क्या यह उचित न होगा कि वह हर नैतिक सिद्धान्त को अपने मन या अन्तर की आवाज़ पर छोड़ दे?"

उन्होंने कहा:—

"शायद आप यह कहना चाहते हैं कि किसी नियमित व व्यवस्थित धर्म की ज़रूरत क्या है और इसका जवाब बहुत आसान है। सच तो यह है कि बहुत ही कम लोग (बल्कि सिर्फ़ नबी या पैग़म्बर ही) इस भीतरी आवाज़ या पुकार को सही तौर पर समझ सकते हैं, इनके अलावा लगभग सभी आदमी अपने विशेष व्यक्तिगत रुझानो और मसलहतों के पाबन्द हैं। अगर हर व्यक्ति को यह छूट दे दी जाती है कि वह अपनी रुचि के आधार पर जिस

लन करे, तो इसका नतीजा पूर्ण नैतिक अराजकता अलावा कुछ न होगा और लोग कभी भी रहन-सहन तरीक़े और एक ही जीवन-व्यवस्था पर सहमत न हो

ौक़े पर स्वाभाविक रूप से आप पूछ सकते हैं कि क्या क कुछ लोग अपवाद नहीं हैं। मेरा इशारा उन स्वतन्त्र विचार लोगों की ओर है, जिनका दावा है कि सत्य-असत्य की पहचान के लिए उन्हें किसी रहनुमाई की ज़रूरत नहीं है, पर मैं निजी तौर पर आपसे पूछता हूं कि इसकी क्या गारंटी हो सकती है कि इस नियम के अनुसार लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या अपने लिए अपवाद होने के इस अधिकार की मांग न करने लगेगी?"

एक क्रान्तिमय खोज

मैं हिरात से क़ाबुल जा रहा था। यह सन् १९२५ के अन्तिम वर्षों की बात है। एक नौकर और एक अफ़ग़ानी फौजी मेरे साथ थे। मध्य अफ़ग़ानिस्तान की बर्फ़ीली पहाड़ियों की घाटियों में हम लोग चल-फिर रहे थे, मौसम बहुत ठंडा था और बर्फ़ चमक रही थी, ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हर ओर दीख पड़ रहे थे।

मैं उस दिन दुखी भी था और खुश भी। दुख इस बात का था कि मेरे और इन लोगों के बीच, जिनमें मैंने कई महीने बिताये थे और उस रोशनी, ताक़त और तरक़्क़ी के बीच, जो उनका धर्म उन्हें उपलब्ध कराता था, मोटे पर्दे पड़ते जा रहे हैं। ख़ुशी इस बात की थी कि उसकी दिव्य रोशनी और ताक़त, इन आकाश को छूते हुये पहाड़ों के नज़दीक से मेरे क़रीब होती जा रही है, इतनी क़रीब कि उंगलियां उसे छू सकती हैं।

मेरा घोड़ा लंगड़ाने लगा और उसके खुरों के रगड़ने की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी, उसकी नाल ढीली हो गई थी और सिर्फ़

दो कीलों के सहारे लटक रही थी। मैंने अपने अफ़ग़ा
पूछा, क्या यहां क़रीब में कोई ऐसा गांव है, जहां मोची या
मिल सकता हो, उसने कहा, हां एक गांव "देह ज़ंगी" है जो यह
तीन मील से कम ही फ़ासिले पर होगा। वहां मोची मिल जायेगा।
वहीं इलाक़ा हज़ारजात का हाकिम भी रहता है। घोड़े की थकन के
विचार से अब हम लोग रफ़्तार धीमी करके "देह ज़ंगी"— की ओर
बढ़ रहे थे।

वहां का हाकिम एक मंझोले क़द का नव-जवान आदमी था, जिसके चेहरे पर खुशहाली के निशान पाये जाते थे। वह एक अजनबी मुसाफ़िर को देखकर खुश हुआ जो इस मामूली किले में उसका अकेलापन ख़त्म कर सके। यद्यपि वह शाह अमानुल्लाह के कोई करीबी रिश्तेदार थे, पर अफ़ग़ानिस्तान में जितने आदमियों से मैं मिला, मैंने उनको सबसे ज़्यादा नेक और नर्म स्वभाव का पाया। उन्होंने ज़बरदस्ती मुझे दो दिन ठहरने पर मजबूर किया।

दूसरे दिन संध्या समय नित्य की तरह एक शानदार नाश्ते से छूटने के बाद गांव के एक आदमी ने हम लोगों को तीन तारों वाले सितार पर कुछ गीत सुनाये। वह पुश्तो में गा रहा था जिसे मैं जानता नहीं था, पर कुछ फ़ारसी शब्दों की आवाज़ ताक़त के साथ गर्म कमरे के किनारे तक (जो क़ालीनों से सजा हुआ था और जिस की खिड़कियों के भीतर बर्फ़ की ठंडी चमक घुस रही थी) पहुंच रही थी।

शायद ये गीत दाऊद व जालूत की लड़ाई के बारे में थे— भौतिक शक्ति और ईमानी शक्ति की लड़ाई— यद्यपि मैं इसे समझ नहीं सका, पर इसका सार मैं पा गया था।

वह इत्मीनान और ठहराव के साथ शुरू होता था, फिर आगे बढ़कर दुख की भावना प्रकट करता और विजय व सफलता की आवाज़ों पर ख़त्म हो जाता था।

जब गाने ख़त्म हुये तो हाकिम ने टिप्पणी के रूप में कहा:—

"दाऊद कमज़ोर थे पर उनका ईमान ताक़तवर था।"

मैं इस वाक्य में इतना बढ़ाये बिना न रह सका:—

"आप लोग बहुत हैं पर आपका ईमान कमज़ोर है।'—

मेरा मेज़बान मुझे फटी आंखों से देखने लगा। मैं भी घबराया कि अनचाहे ही मेरे मुंह से यह बात कैसे निकल गई। फिर मैंने उसके विस्तार में जाकर प्रश्नों की बोछार कर दी:—

" आप मुसलमानों ने वह आत्म-विश्वास क्यों खो दिया, जिसकी वजह से भूतकाल में आपने सौ साल से कम मुद्दत में अरब प्रायद्वीप से लेकर पश्चिम में एटलांटिक महासागर तक और पूरब में चीन के निकारों तक अपने धर्म को फैला दिया, पर आज पश्चिम के सामने आप इतनी कमज़ोरी और चतुराई के साथ हथियार डाल रहे हैं? क्या यह आप नहीं कर सकते (जबकि आपके पुरखों ने संसार को उस वक़्त कला व ज्ञान की रोशनी से भर दिया था जबकि यूरोप अज्ञानत व बरबरता में डूबा हुआ था) कि साहस बटोर कर फिर उस उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाले धर्म की ओर वापस हो जायें? कैसी विचित्र बात है कि अतातुर्क, जिसकी नज़र में इस्लाम का कोई मान नहीं, आप मुसलमानों की नज़र में इस्लामी पुनर्जागरण का हीरो बन गया है।"

मेरा मेज़बान चुपचाप यह सब सुनता रहा। बाहर बराबर बर्फ़ गिर रही थी। मेरे भीतर एक बार फिर दुख और प्रसन्नता की मिली-जुली भावना जागी, जो मैंने देहज़ंगी के क़रीब महसूस की थी। मुझे उस शान व शौकत का एहसास हुआ जो अब पिछले दिनों की कहानी बन चुका है और उस रुसवाई, गिरावट का दृश्य निगाहों के सामने फिर गया, जिसने इस महान सभ्यता के सपूतों को हर ओर से घेर रखा है। मैं आगे कहता चला गया:—

"मुझे यह बताइये कि आपने नबी का यह धर्म जिसकी हर चीज़ बहुत सादी और बड़ी स्पष्ट है, आपके अपने मनगढ़न्त विचारों की भेंट किस तरह चढ़कर रह गया है? आपके सरदार और जागीरदार कैसे भोग-विलास का ज़ीवन बिताते हैं, जबकि उनके बहुत से मुसलमान भाई उपवास और ग़रीबी की उस सीमा पर हैं, जिसका उल्लेख करना भी कठिन है, हालांकि आप ही के नबी ने आपको यह वसीयत की थी कि 'तुममें से किसी का ईमान पूरा नहीं होगा अगर वह पेट भर कर खाये और उसका पड़ोसी भूखा हो?' क्या आप मुझे बता सकते हैं कि आपने औरतों को जीवन व समाज से बिल्कुल पीछे क्यों डाल दिया है, जबकि खुद नबी के ज़माने में सहाबी औरतों ने मर्दों के जीवन में एक अहम पार्ट अदा किया था? आपकी बड़ी संख्या अपढ़ क्यों है, जबकि आप ही के नबी का यह ऐलान है कि; ज्ञान प्राप्त करना हर मुसलमान का फ़र्ज़ है' और उन्होंने कहा है कि ज्ञान वाले की इबादत करने वाले पर ऐसी प्रधानता है, जैसी चौदहवीं रात के चांद की तमाम सितारों पर है?"

मेरा मेज़बान, मुंह से एक शब्द निकाले बिना टकटकी बांधे मुझे देखता रहा। मैंने सोचा कि हो सकता है कि मेरे जोश ने उसके रोष को भड़का दिया हो और दुखी कर दिया हो। सारंगी वाला भी मुझे आंखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। वह फ़ारसी इतनी नहीं जानता था कि मेरी बात समझ सकता, पर उसे आश्चर्य था कि एक अजनबी, हाकिम के सामने इतनी तेज़ी और जोश के साथ कैसे बातें कर रहा है। अन्त में हाकिम ने अपनी पीली इबा (एक पहनावा) अच्छी तरह समेटी, जैसे उनको सर्दी लग लग रही हो और रहस्य भरे अन्दाज़ में मुझसे कहने लगेः—

"लेकिन—? आप मुसलमान हैं?"

मैंने हंसते हुये उत्तर दियाः—

"बिल्कुल नहीं, मैं मुसलमान बिल्कुल नहीं हूं, पर मैंने इस्लाम में सुन्दरता व कोमलता का एक बड़ा हिस्सा पाया है और इसीलिए मैं जब आप लोगों को उसका अनादर करता हुआ देखता हूं तो कभी-कभी मुझे गुस्सा जैसा आने लगता है। अगर इस समय मुझसे कुछ गुस्ताख़ी हो गई हो तो माफ़ करेंगे, यह सब मैंने किसी शत्रु-भाव से नहीं कहा था।"

मेरे मेज़बान ने सिर हिलाते हुये कहा—

"नहीं, नहीं, बात वही है, जो मैंने कही थी। आप मुसलमान हैं, पर आपको इसकी खुद ख़बर नहीं। आप इसी वक्त और इसी जगह 'लाइलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' कहकर नियमित रूप से मुसलमान क्यों नहीं हो जाते, जबकि अपने दिल की गहराइयों से आप मुसलमान हो चुके हैं। मेरे भाई! इसी समय कलमा पढ़िये, मैं कल आपके साथ काबुल चलूंगा और अमीर से मिलाऊंगा जो सहर्ष आपका स्वागत करेंगे, मकान, बाग़, मवेशी सभी कुछ आपको देंगे, हम सब आपसे मुहब्बत करेंगे, आप कलमा तो पढ़ लीजिये मेरे भाई!"

"अगर मैं मुसलमान हूंगा तो अपनी अन्तरात्मा के सन्तोष के कारण, अमीर के मकानों और बाग़ों के लोभ में नहीं।"

वह आग्रह करते हुये बोले—

"आप तो इस्लाम को हमसे अधिक अच्छा समझते हैं कौन-सी चीज़ अभी आपकी समझ में नहीं आई?"

"समस्या सिर्फ़ समझने की नहीं, बल्कि सन्तुष्ट होने की है, इस बात का सन्तोष कि कुरआन सच में, अल्लाह की वाणी है, किसी बुद्धिजीवी की रचना नहीं।"

मैंने जवाब देने को दे तो दिया, पर मेरे अफ़ग़ानी दोस्त के ये शब्द कई महीने तक मेरे कानों में गूंजते रहे 'आप मसलमान हैं पर खुद आपको इसकी ख़बर नहीं।"

काबुल से कई हफ़्ते के सफ़र के बाद दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान से होता हुआ ग़ज़नी के पुराने शहर से गुज़रा, जहां से महमूद ग़ज़नवी ने आज से लगभग हज़ार वर्ष पहले भारत पर हमला किया था, फिर कन्धार और अफ़ग़ानिस्तान के दक्षिण-पश्चिमी जंगलों से होता हुआ हिरात वापस आ गया, जहां से मैंने यह सफ़र शुरू किया था।

सोवियत रूस की एक झलक

सन् २६ ई० के जाड़ों के अन्त में मैंने हिरात से विदाई ली और स्वदेश के एक लम्बे सफ़र के पहले मरहले का आरम्भ कर दिया। मुझे अफ़ग़ानिस्तान की सीमा से रूसी तुर्किस्तान के क्षेत्र मर्व तक जाना था, फिर समरक़न्द, बुख़ारा, ताशक़न्द, फिर तुर्कमान, के विस्तृत मैदान को पार करते हुये यूराल तक और वहां से मास्को।

सोवियत रूस के बारे में मेरा सबसे पहला और देर तक बाक़ी रहने वाला उद्‌गार वह है जो मर्व के रेलवे स्टेशन पर मेरे मन में प्रस्फुटित हुआ। यह एक बड़ा पोस्टर था, जिसमें मज़दूरों के यूनिफ़ार्म में एक नवजवान की तस्वीर थी जो एक सफ़ेद दाढ़ी वाले इबा-क़िबा पहने हुये व्यक्ति को (जिसे बादलों से ढके हुये आसमान से निकलते दिखाया गया था) ठोकरें मार रहा था। उसके नीचे लिखा हुआ था 'सोवियत यूनियान के मज़दूरों ने इसी तरह खुदा को उसकी ऊंचाई से उतार फेंका है।' यह पोस्टर सोवियत यूनियन की साम्यवादी गणतन्त्रों की अनीश्वरवादी संस्था की ओर से लगाया गया था।

इस तरह के पोस्टर और ऐलान (जो सरकार की इजाज़त के बाद छप सकते थे) हर जगह दीख पड़ते थे—पब्लिक जगहों पर, सड़कों पर यहां तक पूजा घरों से मिलाकर चपकाये रहते थे। तुर्किस्तान में मस्जिदें अधिक थीं और उन्हीं के साथ यह खेल किया

जाता था, यद्यपि नमाज़ को नियमित रूप से मना नहीं कर दिया गया था, पर लोगों को नमाज़ से रोक रखने के लिये सरकार हर सम्भव उपाय कर रही थीं। बुख़ारा और ताशक़न्द में लोगों ने मुझे बताया कि पुलिस के सी० आई० डी० मस्जिद में आने वाले हर व्यक्ति का नाम ब्लैक लिस्ट में लिख लेते हैं।

एक बड़ा पद

मुझे खुशी हुई जब कई हफ्ते एशिया और यूरोप का दौरा करने के बाद मैंने पोलैण्ड की सीमा को पार कर लिया, सीधा मैं फ्रान्कफ़र्टर पहुंचा, जहा मुझे अख़बार के अपने सेक्शन का चार्ज लेना पड़ा। मुझे जल्द ही महसूस हो गया कि मेरी अनुपस्थिति में मेरा नाम यहां अच्छा भला मशहूर हो चुका है और मेरी गिनती यूरोप के अख़बारों के प्रसिद्धतम विदेशी पत्र-प्रतिनिधियों में होने लगी है। मेरे कुछ लेखों ने प्रसिद्ध प्राच्य-विद्याविशारदों के ध्यान को भी अपनी ओर खींच लिया है।

बर्लिन की भौगोलिक राजनीतिक एकेडमी ने लेक्चर्ज के एक सिलसिले के लिए मुझे निमन्त्रण भेजा, जहां मुझे बताया गया कि इस उम्र में (मेरी उम्र उस समय २६ साल की थी) किसी को यह पद प्राप्त नहीं हुआ है। इसके अलावा दूसरे अख़बारों ने फ्रान्कफ़र्टर से उन लेखों को जो अधिक सामान्य होते थे, छापने की इजाज़त ले रखी थी। मुझे लोगों ने बताया कि कुछ लेख तो तीस-तीस बार छापे गये हैं। तात्पर्य यह कि इस यात्रा के परिणाम बड़े अच्छे निकले।

मेरी शादी

उस ज़माने में "अलसा" से मेरी शादी हो गई।

इन दो वर्षों ने जो मैंने यूरोप के दौरे में बिताये थे, मेरी मुहब्बत को कम करने के बजाये और बढ़ा दिया था। खुशी के एक अनोखे एहसास के साथ जिसे मैं पहले नहीं जानता था, हम दोनों की उम्रों में बड़े अन्तर के सिलसिले में उसके सारे भ्रम यकायकी दूर हो गये।

उसने कहा थाः—

"आप मुझ से शादी कैसे करेंगे, आप इस वक़्त २६ वर्ष के हैं। मैं ४० साल की हूं। इस पर विचार कर लीजिये। जब आप ३० साल के होंगे, उस वक़्त मैं ४४ की हूंगी और जब आप ४० के होंगे तो मैं बूढ़ी हो चुकी होंगी।"

"इसमें क्या बात है? मैं तुम्हारे बिना अपने भविष्य का विचार ही नहीं कर सकता।" मैंने हंसते हुये जवाब दिया।

अन्त में वह मान गई।

सच तो यह है कि मैंने किसी अति से काम न लिया था। इसलिए कि उसके सौन्दर्य और उसकी स्वाभाविक कोमलता ने मुझे इतना मन्त्रमुग्ध कर दिया था कि मैं किसी दूसरी औरत की ओर नज़र उठाकर देखना भी पसन्द न करता। फिर मेरी रुचि और मेरे रुझानों से उसकी दिलचस्प जानकारी ने मेरी तमन्नाओं को जगा दिया था और उन्हें शक्ति भी दी थी।

जब मैं इस्लाम के बारे में अलसा से बातें करता तो वह समझती थी कि मैं किसी चीज़ की खोज में हूं। यद्यपि कभी-कभी

उसे उस बड़े तक़ाज़े और तीव्र भावना का अन्दाज़ा नहीं हो पाता था, जो भीतर हिलोरें ले रहा था, पर मेरी मुहब्बत की वजह से इस खोज में वह मेरी सच्ची संगिनी थी।

हम दोनों अक्सर साथ बैठकर कुरआन का अनुवाद पढ़ते और उसकी शिक्षाओं पर बातें करते। मेरी तरह अलसा भी कुछ दिनों बाद उस आन्तरिक एकरूपता और समत्त्व से प्रभावित हो चुकी थी, जो कुरआन की नैतिक शिक्षाओं और अमली हिदायतों के बीच पाई जाती है। ख़ुदा आदमी से अन्धी भक्ति की तलब नहीं रखता, बल्कि उसने उसकी बुद्धि को पुकारा है। वह मनुष्य के परिणाम और भविष्य से अनजान बनकर दूर खड़ा नहीं रहता, बल्कि वह हमसे क़रीब बल्कि बहुत क़रीब है, उसने ईमान और सामूहिक जीवन के बीच में कोई दीवार नहीं खड़ी कर रखी है।

इस्लाम का समाज सिद्धान्त

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां का दृष्टिकोण उस थ्योरी से शुरू नहीं होता कि जीवन आत्मा और भूत-द्रव्य की सदा की लड़ाई की वजह से एक बोझ है, अगर रोशनी के रास्ते पर चलना है तो आत्मा को शरीर की बेड़ियों से आज़ाद करना होगा। जीवन के इन्कार और मनः हत्या की हर शक्ल और हर तरीक़े को नबी ने अपनी हदीसों द्वारा बिल्कुल ख़त्म कर दिया है। हदीस है "इस्लाम में संसार-त्याग कोई चीज़ नहीं है", मानो उसने मनुष्य की ज़िन्दा रहने की इच्छा को न सिर्फ़ यह कि एक लाभदायक और स्वीकारात्मक भावना बताया, बल्कि उसे वह शुद्धता दी जो किसी भी बड़ी से बड़ी नैतिक समस्या को ही मिल सकती है। सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य को यह सिखाया गया है कि, "तुमको सिर्फ़ चाहिए नहीं, बल्कि तुम्हारे ऊपर ज़रूरी भी है कि अपने जीवन से अपनों को और परायों को हर सम्भव हद तक फ़ायदा पहुंचाओ।"

इस्लाम का एक पूर्ण रूप

इस्लाम की पूर्ण रूप-रेखा धीरे-धीरे आख़िरी तौर पर मेरे सामने आ रही थी, ऐसी रूप-रेखा जो कभी-कभी मुझे चकित और मुग्ध कर देती थी, वह इस प्रकार बन और पूर्ण हो रही थी जिसे (Mental Osmosis) ही कहा जा सकता है अर्थात् किसी जाने-बूझे यत्न के बिना ही, मैंने वे तमाम झलकियां और बिखरी घटनाएं जो पिछले ५ साल के भीतर मेरे साथ घटती रहीं, एक जगह इकट्ठी कर लीं। मैंने अपने सामने एक ऐसी पूरी इमारत देखी जिसे बड़ी ही बारीकी और आर्ट के साथ बनाया गया हो, जिसके एक-एक अंग सुडोल और फिट हों, न उसमें कुछ ज़्यादा हो न कम, एक सन्तुलन हो कि जिसे देखकर आदमी में यह चेतना जगे कि इस्लाम की शिक्षाओं में जो कुछ भी है, वह अपनी जगह पर बिल्कुल फिट है।

आज से तेरह सौ वर्ष पहले एक आदमी खड़ा हुआ था और उसने मानवता से एक बात कही जिसका सार यह था:–

"मैं एक इन्सान हूं, पर अल्लाह ने, जो इस सृष्टि का स्रष्टा है, मुझे हुक्म दिया है कि मैं उसका सन्देश तुम तक पहुचा दूं ताकि तुम उस तरीक़े पर जीवन बिताओ, जिस पर उसकी रचना हुई है। उसने मुझे हुक्म दिया है कि तुमको उसके वजूद,उसकी शक्ति और उसके ज्ञान की याद दिलाऊं और तुम्हारे सामने जीवन की एक व्यवस्था रखूं। अगर तुम्हें यह अच्छी बात और यह व्यवस्था मंजूर हो तो मेरा पालन करो।"

यह था सार मुहम्मद (सल्ल०) के सन्देश का।

जिस सामूहिक व्यवस्था का चित्र उन्होंने सामने रखा था, वह केवल वास्तविक महत्ता के साथ चल सकता था। यह व्यवस्था उस तर्कपूर्ण आरम्भ से चलती है कि मनुष्य एक जैविकी (Biological)

तत्त्व है, जिसकी कुछ जैविकी मांगें हैं। उसके बनाने वाले ने उसे इस तरह बनाया है कि वह परिवार और समूह की शक्ल में मिल-जुलकर जीवन बिताए ताकि इस तरह सब मिलकर अपने देह की वास्तविक मांगों को अच्छे तरीक़े पर पूरा क़र सकें। संक्षेप यह कि वे एक दूसरे का सहयोग चाहते हैं और व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रगति जो धर्म का बुनियादी मक़सद है बड़ी हद तक इस बात पर निर्भर है कि उसे उन लोगों का प्रोत्साहन, समर्थन और सहयोग प्राप्त हो, जिनके बीच बह रहता है और जो ख़ुद उसका सहयोग चाहते हैं। यही वह भीतरी भरोसा है, जिसके कारण इस्लाम को राजनीति व अर्थ व्यवस्था से कैसे भी अलग नहीं किया जा सकता।

मनुष्य के आपसी व्यवहारों की इस तरीक़े पर व्यवस्था, जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के उभारने के लिए कम से कम कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़े और ज़्यादा से ज़्यादा सहयोग और प्रोत्साहन मिले, यह है इस्लाम के वास्तविक समाज की सही विचारधारा।

इस दृष्टिकोण से यह बात बिल्कुल स्वभाविक और तर्क-संगत जान पड़ती है कि मुहम्मद (सल्ल०) ने नबूवत (ईश-दूतत्व) के २३ साल में केवल आध्यात्मिक अंगों की ओर ध्यान नहीं दिया, बल्कि व्यक्तिगत और सामूहिक कोशिशों के लिए एक नक़्शा (Frame) भी दिया। उन्होंने केवल व्यक्ति सुधार का ही विचार नहीं दिया, बल्कि एक न्यायप्रिय इस्लामी समाज का ख़ाका भी हमको दिया जो उस सुधार के नतीजे में क़ायम होना चाहिए। उन्होंने राजनीतिक सोसाइटी के बारे में स्पष्ट इशारे भी किए, इसलिए कि मनुष्य का राजनीतिक जीवन समय की परिस्थितियों पर आधारित होता है और इनमें तब्दीलियां होती रहती हैं व्यक्तिगत अधिकारों और सामूहिक ज़िम्मेदारियों के सिलसिले में भी एक व्यवस्था दी, जिसने ऐतिहासिक प्रगति को पूरी तरह ध्यान में रखा है।

इस्लामी शरीअत मानव-जीवन के तमाम विभागों, पहलुओं रंगों और परिस्थितियों पर छाई हुई है, भले ही वे आध्यात्मिक हों या भौतिक व्यक्तिगत हों या सामूहिक। यौवन-समस्या, अर्थसमस्या और दूसरी समस्याओं को धर्म व भक्ति भावना के साथ मुहम्मद (सल्ल०) की शिक्षाओं में सच्ची और सही जगह दी गई है। वहां कोई चीज़ ऐसी न थी, जिसे धार्मिक दृष्टिकोण से सोचना निन्दित हो, यहां तक कि मात्र दुनिया की समस्या-व्यापार; विरासत, मिल्कियत के अधिकार और जागीरदारी भी।

इस्लामी विधान की तमाम धाराएं और नियम इस तरह बनाए गए हैं, जिससे तमाम लोग रंग व नस्ल व जाति या पिछले अधिकारों से प्रभावित हुये बिना ही समान रूप से फ़ायदा उठा सकते हैं।

यहां सोसाइटी की बुनियाद डालने वाले या उसकी औलाद के लिए कैसे भी अधिकार और ज़मानतें नहीं हैं। ऊंच-नीच (सामाजिक अर्थ में) का यहां कोई विचार नहीं। सभी अधिकार व कर्तव्य और फ़ायदे व मौक़े, तमाम मुसलमानों के लिए बराबर-बराबर हैं। खुदा और इन्सान के बीच अब किसी काहिन या पुरोहित की ज़रूरत नहीं, इसलिए कि "वह जानता है जो तुम्हारे आगे है और जो तुम्हारे पीछे हैं।"

वह अल्लाह और रसूल, मां-बाप और समाज (जिसका मक़्सद खुदा की हुकूमत का क़ायम करना और उसके क़ानून को चलाना है) के अलावा किसी और की वफ़ादरी को नहीं मानता। वह इस तरह की वफ़ादारी को नहीं मानता जिसमें देश-भक्त और जाति-भक्त, केवल अपनी जातीयता के आधार पर सत्य समझा जाता हो, भले ही वह सत्य पर हो या असत्य पर। इस सिद्धान्त की व्याख्या एक से अधिक मौक़ों पर की गई है—

"वह हममें से नहीं, जिसने पक्षपात की ओर बुलाया।"

"वह हम में से नहीं जिसने संकीर्णता के लिए लड़ाई लड़ी।"

"वह हम में से नहीं जो इसी राह में मरा।"

इस्लाम से पहले तमाम राजनीतिक गिरोह या संस्थाएं सिर्फ़ क़बीले या क़बीलों के आपसी संबंधों को जानती थीं। ऐसा ही पुराने मिस्र के पूजे जाने वाले बादशाह नील की घाटी और उसके निवासियों से आगे कुछ नहीं सोच सकते थे। इब्रानियों की पुरानी हुकूमत में जहां अगरचे यह माना जाता था कि ख़ुदा हुकूमत करता है, पर वह ख़ुदा सिर्फ़ बनी इसराईल का है। जहा तक कुरआन का ताल्लुक़ है वहां जात-पात और क़बीलों के रिश्तों का कोई प्रभाव नहीं है। इस्लाम ने एक ऐसी सोसाइटी बनायी है, जिसमें कबीलों और ज़ातियों की परम्पराओं को पीठ पीछे डाल दिया गया है।

यह कहा जा सकता है कि इस्लाम और ईसाई धर्म का इस सिलसिले में एक ही रवैया है, दोनों ने एक ऐसी सोसाइटी को जन्म दिया जो मानव-जाति के श्रेष्ठ नैतिक सिद्धान्तों के संबंध के आधार पर एक हों पर अन्तर यह है कि ईसाई धर्म ने इस सिद्धान्त को मात्र अध्यात्मिक रूप दे दिया और अपने मानने वालों को क़ैसर (सम्राट) का हक़ क़ैसर को देने की शिक्षा दी और अपने विश्वव्यापी संदेश को आध्यात्मिक सीमाओं में बांध लिया, इसके विपरीत इस्लाम ने एक ऐसी राजनीतिक संस्था (Institution) की दुनिया में नींव डाली जिसमें अल्लाह का विचार मनुष्य को व्यवहार पर उसकाने वाला हो और जो हो तमाम कोशिशों का एक मात्र आधार। इस तरह इस्लाम ने– वह काम पूरा करके जिसे ईसाई धर्म ने अधूरा छोड़ दिया था, मनुष्य की प्रगति और उन्नति में एक नये अध्याय को जोड़ दिया और पिछली तंग और नस्ल व भूगोल की सीमाओं में बन्द सोसाइटियों के मुक़ाबले में एक खुली सैद्धान्तिक (Ideological) सोसाइटी बना डाली।

इस्लामी सभ्यता का स्वभाव

इस्लाम में एक ऐसी सभ्यता जन्मी जिसमें राष्ट्रीयता की कोई गुन्जाइश नहीं, वहां न पैतृक न वार्गिक अधिकार हैं, न चर्च है, न कहावत, न पैतृक महत्ता व शीलता, न नस्ली पदवियां। उसका मक्सद है, जहां तक अल्लाह का ताल्लुक है, एक ईश्वरीय राज्य (Theocracy) की स्थापना और जहां तक मनुष्यों के आपस का मामला है, जनतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना। इस नई संस्कृति व सभ्यता का सबसे अहम और प्रसिद्ध गुण (जिसने उसको मानव-इतिहास की तमाम संस्कृतियों व सभ्यताओं से अधिक प्रसिद्ध कर दिया है) यह है कि वह उन लोगों के संकल्प के ऐक्य से पैदा होती है, जिनके साथ उनका मामला है। यहां सामूहिक प्रगति (इतिहास के प्रसिद्ध सभ्यताओं की पद्धति के अनुसार) विभिन्न स्वार्थों और मसलहतों में टकराव के नतीजे में वजूद में नहीं आती, बल्कि वह इस ठोस व्यवस्था का अनजाना नतीजा है। एक विशुद्ध सामूहिक समाज, जो एक तथ्य है, न कि उपमा, (जिसको लोभी व सत्ताधारी अपनी पोज़ीशन की हिफ़ाज़त के लिए ढाल लिया करते हैं,) वह इस्लामी सभ्यता के वास्तविक व ऐतिहासिक स्रोत की हैसियत रखता है। कुरआन कहता है, निस्सन्देह अल्लाह ने ईमान वालों से उनकी जानों और मालों को ख़रीद लिया है कि उसके बदले में उनको जन्नत दी जायेगी'' इस आयत तक कि ''तो खुश रहो उस क्रय-विक्रय पर जो तुमने किया है और यह बड़ी सफलता है।''

मैंने महसूस किया कि बड़ी सफलता असली सोशल पैक्ट का एक मात्र उदाहरण, ज़िसका इतिहास को तजुर्बा हुआ– बहुत थोड़ी मुद्दत में हासिल करने के लिए बड़े पैमाने पर कोशिश तो सिर्फ़ कुछ ही समय तक की गई है, इसलिए कि नबी की मृत्यु पर एक सदी बीतते ही सच्चे इस्लाम का राजनैतिक रूप ख़राब होना शुरू हुआ और बाद की कुछ शताब्दियों के भीतर पहली व्यवस्था और नक्शा

तस्वीर के पीछे चला गया।

सत्ता अपनाने के ख़ानदानी झगड़ों ने मर्दों और औरतों की स्वतन्त्र एकता और एकरूपता की जगह ले ली। मौरूसी मिल्कियत बहुत जल्द वजूद में आ गई और न जाने कितनी कहानियां झगड़े, षड्यन्त्र अन्याय, अत्याचार, धर्म के राजनीतिक स्वार्थ के लिए इस्तेमाल आदि-आदि अपने साथ लाई।

पुनरुत्थान की आवश्यकता

एक समय तक इस्लाम के चोटी के विचारकों ने इस बात की कोशिश की कि इस्लामी आइडियलोजी साफ़ और निखरी हुई रहे, पर जो लोग इनके बाद आये, वे इनसे कम हिम्मत साबित हुये और दो या तीन शताब्दियों के बाद 'पीछे चलते रहने' के दलदल में फंस गये। उन्होंने व्यक्तिगत व वैयक्तिक विचारों के दरवाज़े अपने ऊपर बन्द कर लिये। उनके जीवन की रट बस यही रह गई कि वे उन बेजान और बेरूह शब्दों व वाक्यों को दुहराते रहें, जिन्हें पिछली नस्लें दुहराती रही हैं। उन्होंने यह तक भुला दिया कि मनुष्य का विचार समय के साथ सीमित होता है और ग़लती से पाक नहीं होता और इसी लिये बराबर उसमें 'नएपन' की ज़रूरत बाक़ी रहती है। इस्लाम की वह रचनात्मक शक्ति जो शुरू में इतनी बलवान और ताक़तवर थी कि एक लम्बी मुद्दत तक उसने मुसलमानों को संस्कृति व सभ्यता के ऊंचे मेयार और आर्ट व साइन्स की उस सतह पर रखा, जिसे इतिहासकार सुनहरे युग के नाम से याद करते हैं, पर यही शक्ति आध्यात्मिक भोजन न मिलने के कारण कुछ शताब्दियों के बाद कमज़ोर पड़ गई और इस्लामी सोसाइटी दिन व दिन शिथिल और रचनात्मक शक्तियों से ख़ाली होती रही।

इस्लामी व्यवस्था की क्षमता और संभावनायें

मुझे इस्लामी जगत के सिलसिले में कैसा भी धोखा या

ग़लतफ़हमी न थी। इन ४ वर्षों में, जो मुझे यहां बिताने का मौक़ा मिला, यह बात मेरे सामने आ गई थी कि इस्लाम अब भी ज़िन्दा है और अपने अनुयायियों की नज़रों और मौन स्वीकरण में उसकी झलक अब भी देखी जा सकती है। हां, इसके मानने वाले बिल्कुल पंगु से हो गये हैं। इनमें इतनी ताक़त नहीं रही है कि वे इन विश्वासों को किसी लाभप्रद काम की शक्ल दे सकें, पर मेरी जितनी दिलचस्पी और जितना ध्यान इस पर था कि क्या इस्लामी व्यवस्था में इसकी क्षमता और सम्भावनायें हैं या नहीं, इतनी परवाह इसके लागू करने में मुसलमानों की नाकामी की न थी। मेरे लिए यह बात काफ़ी थी कि इस्लामी इतिहास के शुरू में उसे क़ायम करने की कामियाब कोशिश की गई थी। अगर एक समय यह बात सम्भव थी तो दूसरे वक़्त असम्भव कैसे हो सकती है? मुझे इससे क्या दिलचस्पी (ऐसे ही मैंने सोचा था) कि मुसलमान इन शिक्षाओं को भूलकर सुस्ती और अज्ञानता में गिरफ़्तार हैं। मैं इसकी चिन्ता क्यों करूँ कि वे इन उच्च सिद्धान्तों की रक्षा नहीं कर सके, जो उनके इमाम नबी अरबी ने तेरह सौ वर्ष पहले उनको दिये थे, जैसा कि इन उच्च सिद्धान्तों, उद्देश्यों या आदर्शों का दरवाज़ा आज हर उस व्यक्ति के लिये खुला हुआ है जो उनका सन्देश सुनने के लिये तैयार हो।

हो सकता है हम नये ज़माने के लोगों को इस सन्देश की मुहम्मद सल्ल० के ज़माने से ज़्यादा ज़रूरत हो। वे लोग हमारे माहौल से ज़्यादा सादे माहौल में ज़िन्दगी गुज़ारने के आदी थे। उनकी कठिनाइयां और समस्याएं आज की कठिनाइयों और समस्याओं से बड़ी हद तक सरल और हल हो सकने योग्य थीं। वह संसार जिसमें मैं जीवन बिता रहा था, इस बात पर सहमत होने के कारण कि आध्यात्मिक रूप से और फलतः सामूहिक व राजनीतिक रूप से क्या चीज़ अच्छी है और क्या चीज़ बुरी, इन बातों से चकरा रहा था।

मैं इसे नहीं मानता था कि व्यक्ति को छुटकारे और मुक्ति की ज़रूरत है, हां यह मेरा यकीन था कि हमारे समाज को ज़रूर छुटकारे और मुक्ति की ज़रूरत है। मुझे सदा से बहुत ज़्यादा यह महसूस होता रहा कि आज के ज़माने को एक नये सामूहिक पैक्ट के सैद्धान्तिक आधार की ज़रूरत है, एक ऐसे ईमान की ज़रूरत है जो भौतिक प्रगति के लिए की गई गलती हम पर स्पष्ट करे और साथ ही सांसारिक जीवन को इसका हक़ भी दे, वह ईमान जो हमको यह बताये कि हम अपनी शारीरिक व आध्यात्मिक मांगों में कैसे सन्तुलन पैदा करें और इस तरह हमको उस तबाही से बचा सके, जिसकी ओर बड़ी मूर्खता और अन्धे जोश के साथ हम बढ़े जा रहे हैं।

फ्रान्कफ़र्टर से अलग हो गया

मुझे यह कहने की ज़रूरत नहीं कि इस्लाम की समस्या मेरे जीवन के उस युग में अर्थात् सन् २६ के उत्तरार्द्ध में यही एकमात्र ऐसी समस्या थी जो मेरे दिल व दिमाग़ पर छाई हुई थी। अब मेरा लगाव बहुत बढ़ गया था और उस मन्ज़िल से आगे निकल चुका था जब उससे मेरा संबंध किसी अनजाने कलचर और आइडियालोजी से एक छोटी सी दिलचस्पी जैसा था; बहरहाल अब यह समस्या उमंग और उत्साह से भरी हुई सत्य की एक खोज का रूप ले चुकी थीं, यहां तक कि वे नई बातें भी, जो पिछले दो वर्षों में मेरी यात्राओं में मुझे मिली थीं, इस खोज के मुक़ाबले में कोई हैसियत नहीं रखती थीं, यह बात यहां तक पहुंच गई थी कि मेरे लिए उस पुस्तक पर ध्यान जमाना और उसे लिखना (जिसकी आशा सही ही फ्रान्कफ़र्टर के चीफ़एडीटर को थी) बहुत कठिन और बोझ हो गया।

शुरू में तो डाक्टर साइमन ने मेरी सुस्ती और मेरे संकोच को देखते हुये कुछ अधिक ध्यान न दिया, इसलिए कि मैं एक लम्बी यात्रा से वापस हुआ था और मुझे छुट्टी लेने का हक़ भी था। इसके अलावा मेरी शादी की वजह से भी, जो देर से ही हुई थी, कुछ मुझे अपने रुटीन से छुटकारा पाने और आराम करने का बहाना मिल गया था, पर जब इस छुट्टी और आराम की मुद्दत डाक्टर साइमन के नज़दीक़ उचित सीमा पार करने लगी तो उन्होंने मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा कि विचारों की दुनिया से मुझे अब जमीन पर उतर आना चाहिए।

जब मैं बीते समय को याद करता हूं तो मुझे अन्दाज़ा होता है कि डाक्टर साइमन कितने समझदार और सूझ-बूझ वाले आदमी थे,

पर उस समय कुछ ऐसी बात न मालूम होती थी। सच तो यह है कि किताब के मामले में उनके आग्रह का मुछ पर उल्टा असर पड़ रहा था। मुझे ऐसा लगा कि किताब के बारे में सोचने से भी मुझे घृणा हो गई है। मुझे तो उस बात से दिलचस्पी थी, जो मुझे अभी हासिल करनी थी, न कि उससे जो मैं पा चुका था।

अन्त में डाक्टर साइमन ने एक दिन नापसन्दी के साथ यह कह ही दिया कि:—

"मुझे आशा नहीं यह किताब आप कभी लिख सकेंगे।"

उनके इस रिमार्क पर मुझे कुछ धक्का सा लगा और मैंने जवाब दिया कि:—

"मुझे इस किताब के लिखने से कोई दिलचस्पी नहीं और शायद मैं"

"अच्छी बात है" उन्होंने कड़ाई से कहा, "अगर आपका विचार यही है तो क्या आप समझते हैं फ्रान्कफ़र्टर अब भी आपकी सही जगह है?"

तात्पर्य यह कि बात से बात निकलती गई और हमारा मतभेद अच्छे भले झगड़े में बदल गया। उसी दिन मैंने फ्रान्कफ़र्टर से इस्तीफ़ा दे दिया और एक हफ्ते के बाद अपनी पत्नी को साथ लेकर बर्लिन चला आया।

स्वाभाविक रूप से मैं पत्रकारिता को छोड़ना नहीं चाहता था, इसलिए कि उस खुशहाली और आराम के अलावा, जो मैंने इसी माध्यम से प्राप्त किया था, यह मेरे इस्लामी जगत के दुबारा दौरे का एकमात्र कारण बना था, जहां मैं हर कीमत पर वापस जाना चाहता था। बहरहाल उस प्रसिद्धि के कारण जो पिछले चार वर्षों में मुझे प्राप्त हुई थी, पत्रकारिता में मुझे नये संबंध जोड़ने के बाद जल्द ही

तीन दूसरे अख़बारों के साथ मेरा मामला हो गया जो जोरेच, इस्टर्डम और कोलोन के थे। बहुत दिनों तक मध्यपूर्व से संबंधित मेरे लेख इन तीनों अख़बारों के लिए वक़्फ़ रहे, जो यूरोप के अहम अख़बारों में गिने जाते थे, पर सच तो यह है कि फ़्रान्कफ़र्टर से उनका कोई मुक़ाबला नहीं था।

इस्लाम से बढ़ती मेरी दिलचस्पी

बर्लिन में मैं और मेरी पत्नी अस्थाई रूप से ठहरे रहे, जहां मेरा इरादा था कि पोलिटो-जागरिफिकल एकेडमी के लेक्चरों को पूरा कर लूं और साथ ही इस्लामी शास्त्रों का अध्ययन भी करता रहूं।

मेरे पुराने दोस्त और साथी दुबारा मुझे देख कर बहुत ख़ुश हुये, पर हमारे लिए पिछले ताल्लुक़ात को उसी आन-बान से बाक़ी रखना आसान न था, जैसा कि मध्यपूर्व की यात्रा से पहले की हालत थी। सच तो यह है कि हम एक दूसरे से बहुत दूर हो चुके थे, अपने सोच-विचार से भी और अपने चरित्र व आचरण के लिहाज़ से भी, साथ ही मेरे साथ एक कठिनाई यह भी थी कि मैं अपने को अपने दोस्तों के सामने इस्लाम के साथ अपने लगाव और प्रेम का कोई मन में बैठ जाने वाला कारण बताने में असमर्थ पाता था।

जब मैं इस्लाम की तार्किक व सामाजिक व्याख्या उनके सामने करने की कोशिश करता तो वे मुग्ध होकर सिर हिलाते और कभी-कभी तो वे किसी इस्लामी सिद्धान्त की ताईद भी करने लगते, पर उनमें से अधिकतर लोगों का यही विश्वास था कि पुराने धर्म पुराने ज़माने के लिए ही थे, हमारे ज़माने को एक नये सिद्धान्त की ज़रूरत है और अनोखी बात यह कि वे लोग भी जो एक धर्म की हर क्षमता के इन्कारी न थे, वे भी इस पश्चिमी विचार से प्रभावित थे कि इस्लाम में बहरहाल उन पहेलियों और मुअम्मों की गुन्जाइश

है, जो न समझ में आने वाले विश्वासों का रूप लेकर हर धर्म में घुस आते हैं और जिनके बिना कोई धर्म 'धर्म' नहीं होता।

मुझे बड़ा आश्चर्य था इस बात पर कि जिस बात ने शुरू हीं से मुझे इस्लाम से प्रभावित किया— अर्थात् आत्मा और भूतद्रव्य में किसी भेद का न होना और बुद्धि की उपयोगिता और ज़रूरत पर इस हैसियत से ज़ोर देना कि वह ईमान का एक साधन है— वह विचारकों की एक सीमित संख्या को ही प्रभावित कर सकी, ऐसे विचारक जो बुद्धि से उसकी क्षमता से भी बड़ा काम लेने के हक़ मे थे। ऐसा न जाने क्यों था? शायद इसलिए कि वे धर्म की सीमाओं मे बुद्धि की उपयोगिता व महत्व को मानने के लिए तैयार न थे। इस तरह मेरी विचित्र स्थिति हो गई थी। न मैं उन थोड़े से दोस्तों को अपनी बातों से सहमत कर सका जो मज़हबी रुझान रखते थे और न ही उन व्यक्तियों को सन्तुष्ट कर सका जिनकी तायदाद ज़्यादा थी और जो धर्म को अन्धी पैरवी का नाम देते थे।

जहां तक मेरा संबंध है, मुझे महसूस हो गया था कि मैं इस्लाम की ओर खिंच रहा हूं, पर एक संकोच था जो मुझे किसी आख़िरी फ़ैसले पर नहीं पहुंचने दे रहा था। इस्लाम स्वीकार करने का अर्थ था, एक ऐसे पुल पर से गुज़रना, जो एक ऐसे गढ़े पर बना है, जिसका एक सिरा इस दुनिया में है दूसरा दूसरी दुनिया में। यह इतना लम्बा पुल है कि दूसरा सिरा उस समय तक नज़र ही नहीं आ सकता, जब तक कि आदमी इतनी दूर न पहुंच जाये, जहां से वापसी असम्भव है। मैं अच्छी तरह जानता था कि अगर मैं मुसलमान हो गया, तो मुझे उस संसार से, जिसमें मैं पला-बढ़ा हूं, हर संबंध काट देना होगा। इसके अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं था। इसलिए कि ऐसा कैसे हो सकता है कि आदमी मुहम्मद (सल्ल०) की आवाज़ पर दौड़ भी पड़े और अपने उन संबंधों को भी बाक़ी रखे, जो उसे एक ऐसे समाज से जोड़ देते हैं, जिसके नियम व सिद्धान्त

इस्लाम से सीधे-सीधे टकरा रहे हैं।

पर क्या इस्लाम सच में, अल्लाह का सन्देश है या वह केवल एक बड़े आदमी के विवेक व चिन्तन का परिणाम है, जो ग़लती से पाक नहीं, यही प्रश्न मुझे बार-बार सता रहा था।

भीतरी बेचैनी

सितम्बर सन् २६ में एक बार अपनी पत्नी के साथ मैं बर्लिन की भूमिगत गाड़ी पर सवार था कि यकायकी मेरी नज़र एक आदमी पर पड़ी जो मेरी सामने वाली सीट पर बैठा हुआ था, वह कोई धनी और खुशहाल व्यापारी जान पड़ता था। एक छोटा सा सुन्दर बैग उसकी गोद में रखा था और हीरे की एक बड़ी सी अंगूठी उसकी उंगली में नज़र आ रही थी। तुरन्त मुझे यह विचार हुआ कि यह वास्तव में उस खुशहाली और स्मृद्धि का पता देती है जो उन दिनों मध्य यूरोप में हर व्यक्ति में देखी जा सकती थी। इस खुशहाली से पहले मुद्रा-स्फीति के कुछ साल बीते थे, जिन्होंनें आर्थिक जीवन को बिल्कुल उलट-पलट दिया था और बदहाली और बुरी शक्ल में रहना ही नियम सा बन गया था, पर इस समय तो लोगों की बड़ी संख्या अच्छा खाती और अच्छा पहनती है। इसलिए यह व्यक्ति जो मेरे सामने बैठा हुआ था, लोगों से कुछ भिन्न और नया न था, पर जब मैंने उसके चेहरे पर नज़र डाली तो मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मैं किसी सन्तुष्ट और प्रसन्न चेहरे को नहीं देख रहा हूं, वह मुझे बेचैन और असन्तुष्ट सा दीख पड़ा, सिर्फ़ बेचैन ही नहीं, बल्कि बहुत ही ज़्यादा दुखी और भाग्यहीन भी, उसकी नज़रें खोई हुई सी शून्य में घूर रही थीं और उसके होंठ के दोनों किनारे किसी कष्ट से भिचे हुये थे—एक मानसिक कष्ट।

अगर इसे शिष्टाचार के विरुद्ध और बदतमीज़ी न समझी जाये तो मैं कहूं कि मैंने अपना मुंह उस की ओर से फेर लिया।

उसके पहलू में एक शिष्ट महिला भी बैठी हुई थीं। उनके चेहरे पर भी बेचैनी और असन्तोष के चिन्ह थे, मानो वे किसी ऐसी चीज़ के बारे में सोच रही थीं, जिसके सोचने से उन्हें कष्ट हो रहा हो। एक फीकी मुस्कान उनके होंठों पर फैली हुई थी, जिसके बारे में मेरा विचार यह है कि इसका संबंध आदत से है। फिर मैंने कम्पार्टमेन्ट में और लोगों की ओर नज़र दौड़ाई और उन सबके चेहरों को निगाहों से टटोलने लगा, जो बिना अपवाद के खाते-पीते दीख पड़ रहे थे, पर हर चेहरे पर मैंने अनजाने दुख की एक झलक देखी, इतना अनजान कि खुद उन सबको भी इसका एहसास न होगा।

वास्तव में यह एक विचित्र बात थी। एक जगह पर इतने दुखी चेहरों को देखने का मौका मुझे इससे पहले कभी नहीं हुआ था, या यों कहिये कि इससे पहले मैंने इसकी कोशिश नहीं की थी। इस बात ने मुझ पर इतना प्रभाव डाला कि मैंने इसका वर्णन अपनी पत्नी से किया। वह भी एक दक्ष कलाकार की तरह तमाम लोगों के चेहरों को देखने लगी। फिर आश्चर्य के साथ मेरी ओर रुख करके कहने लगी:—

"आप बिल्कुल सही कहते हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो वे सब जहन्नम की तकलीफें सह रहे हों, मैं यह सोचती हूं कि इन पर जो बीत रही है, उन्हें इसकी खबर भी है या नहीं।"

मैं जानता था कि उनको इसकी ख़बर नहीं है, अगर ख़बर होती तो वे इस तरह अपने जीवन और शक्ति को नष्ट न करते, उन तथ्यों पर ईमान ले आते, जो जीवन के बिखरे अंगों को जोड़ देते हैं, और किसी मक़्सद के बिना, जीवन-स्तर ऊंचा उठाने, अधिक से अधिक भौतिक साधनों को बटोर लेने और ज़्यादा से ज़्यादा ताक़त हासिल कर लेने के लिए बहुत आगे न निकल जाते।

जब मैं घर वापस आया तो सहसा मेरी नज़र मेज़ पर पड़ी। उस पर कुरआन की एक प्रति रखी हुई थी, जिसे मैं पढ़ता रहता था। मैं उसे बन्द करके किसी दूसरी जगह रखना ही चाहता था कि अनचाहे ही पृष्ठ खुला और मैंने देखा यह आयत लिखी हुई थी:—

"बहलावे में रखा तुमको अधिक के लोभ ने, यहां तक कि तुम क़बरों में आ गये। अच्छी तरह सुन लो, जल्द ही तुम्हें (इस बहलावे का नतीजा) मालूम हो जायेगा, फिर अच्छी तरह सुन लो, तुम्हें इस बहलावे का नतीजा जल्द ही मालूम हो जायेगा। अच्छी तरह सुन लो अगर तुम अपना नतीजा निश्चित रूप से जानते होते तो कभी भी बहलावे में न आते। एक दिन तुम ज़रूर दोज़ख को अपनी आंखों से देख लोगे, फिर तुम उसे निश्चित रूप में भी ज़रूर ही देखोगे। फिर उस दिन (दुनिया की) नेमतों के बारे में तुमसे पूछ-ताछ भी ज़रूर होगी (कि कहां तक तुमने इन नेमतों का शुक्र अदा किया।)"

सूर : तकासुर

मैं एक क्षण के लिए खो सा गया। मेरा विचार है कि किताब मेरे हाथ में कांपने सी लगी थी। फिर मैंने अपकी पत्नी से कहा:—

"देखो, सुनो, क्या यह उसका जवाब नहीं है, जो रात को हमने रेल पर देखा था।"

"हां, सही है और बेहतर जवाब।" उसने कहा।

अब मैंने निश्चित रूप से यह समझ लिया कि यह किताब जो इस समय मेरे हाथ में है, अल्लाह ही की उतारी हुई है। वह यद्यपि आज से १३०० वर्ष पहले एक व्यक्ति को दी गई थी, पर इसमें सविस्तार एक ऐसी चीज़ की भविष्यवाणी थी जो हमारे इस पेचदार और मशीनी युग से अधिक स्पष्ट रूप में किसी और युग में सामने न आई थी।

'तकासुर' अर्थात माल व दौलत का लोभ और उसके लिए दौड़-भाग इतिहास के हर युग में पाया जाता रहा, पर इतना नहीं कि वह केवल चीज़ों को जमा करने का शौक़ बन जाये या एक ऐसा खिलौना या वहलावा वन जाये जो किसी और सत्य की ओर देखने ही न देता हो। धन और सत्ता को हथियाने का एक ऐसा रोग पैदा हो गया है, जिसका कोई इलाज नहीं। कल से ज़्यादा आज और आज से ज़्यादा कल, एक भूत है, जो लोगों के सिरों पर सवार उनको इन भडकीले 'उद्देश्यों' की ओर कोड़े मार-मारकर भगा रहा है, जो दूर से बहुत शानदार दीख पड़ते हैं, पर हाथ में आने के वाद पानी के बुलबुले की तरह ग़ायव हो जाते हैं, यहां तक कि वह समय आ जाता है, जिसके बारे में कुरआन कहता है कि अगर वे निश्चित ज्ञान रखते तो ज़रूर ही जहन्नम देख लेते।

अघ मुझे विश्वास हो गया कि कुरआन किसी मनुष्य की बुद्धि की उपज नहीं है, जो एक दूर के अरब प्रायद्वीप में इतिहास के किसी युग में था, इसलिए कि यह मनुष्य लाख समझदार और बुद्धिमान सही, पर फिर भी वह इस धिक्कार की भविष्यवाणी नहीं कर सकता था जो बीसवीं शताब्दी की विशेषता है।

मुझे कुरआन के भीतर मुहम्मद (सल्ल०) से ज़्यादा ऊंची और गहरी आवाज़ सुनाई दे रही थी।

और शान्ति मिल गई!

इस्लाम की गोद में

इन विचारों का जो नतीजा निकलना चाहिये था, वही हुआ। मैं अपने एक भारतीय मुसलमान दोस्त के पास गया, जो उस समय बर्लिन में मुसलमानों की संस्था के अध्यक्ष थे और उनसे इस्लाम अपनाने सरीखी इच्छा को प्रकट किया। उन्होंने अपना दाहिना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने भी अपना दाहिना हाथ उनके हाथ पर रख दिया और दो गवाहों की मौजूदगी में मैंने कहा:—

अशहदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह।

"मैं गवाही देता हूं कि एक अल्लाह के आलावा कोई 'इलाह' नहीं और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद उसके बन्दे और उसके (आख़िरी) रसूल हैं।"

मेरे दोस्त ने कहा:—

"आपका नाम ल्युपोल्ड (Leopold) है। ल्यु का अर्थ यूनानी में शेर, है, इसलिए हम आज से आपको "मुहम्मद असद" कहेंगे।

कुछ हफ़्ते बाद मेरी पत्नी ने भी इस्लाम स्वीकार किया।

जब मैंने अपने पिता को इस्लाम स्वीक़ार करने की सूचना दी तो उन्होंने मेरे पत्र का उत्तर न दिया। इसके बाद मैंने उनको एक दूसरा पत्र लिखा, जिसमें मैंने उनको यह लिखा कि इस्लाम अपनाने के कारण उनके लिए मेरे रवैये या मुहब्बत में कोई अन्तर नहीं

आया है, बल्कि इस्लाम की मुझे हिदायत है कि मैं पिता का सबसे अधिक आदर करूं और उनके साथ अच्छा व्यवहार करूं पर इस ख़त का भी मुझे कोई उत्तर न मिला।

मेरे पिता पर धर्म का कोई गहरा प्रभाव न था और मेरा विचार है कि जितना वह मुझे अपने माहौल और अपने कल्चर का (जिसमें वह पले-बढ़े थे और जिससे उनको मुहब्बत थी) द्रोही समझते थे, उतना वह मुझे अपने धर्म का द्रोही नहीं समझते थे।

इस्लाम अपनाने के कुछ ही दिनों बाद मैंने और मेरी पत्नी ने यूरोप को सदा के लिए छोड़ दिया, इसलिए कि वहां रहना अब हमारे लिए एक बोझ-सा बन गया था।

इस्लामी जगत की ओर

सन् १९२७ ई० को जनवरी के शुरू में मैं अपनी पत्नी और छोटे बच्चे के साथ पूरब के लिए रवाना हो गया। इस बार मुझे ऐसा लग रहा था, मानो अब मैं कभी वापस न हूंगा।

कई दिन रूम सागर (Mediteranian Sea) की यात्रा में बीत गये। नीचे पानी ही पानी था और ऊपर आसमान, बस कभी-कभी बहुत दूरी पर ज़मीन के कुछ किनारे दिखाई पड़ जाते थे, और कभी-कभी उन जहाज़ों का धुंआ दीख पड़ जाता था, जो इस रास्ते से गुज़रते होते।

यूरोप अब हमारी नज़रों से ओझल हो चुका था और कम से कम हमारे लिए बिल्कुल भुलाया गया-सा भी।

चूंकि यह जहाज़ सुदूर पूर्व को जा रहा था, इसलिए इसके अधिक यात्री चीनी थे, छोटे कारीगर और व्यापारी, जो यूरोप में कई साल की कड़ी मेहनत के बाद अब अपने देश चीन को वापस हो रहे थे। इनके अलावा इसमें यमन के लोग भी थे, जो मार्सिल्ज से सवार

हुये थे, वे भी अपने वतन वापस हो रहे थे। योरुपीय वन्दरगाहों की बू-वास अभी तक उनके दिमागों में वसी हुई थी, मानो वे अभी तक उन्हीं दिनों में थे जव उनके सांवले हाथ इंग्लैंड अमरीका और हालैण्ड की भट्टियों में कोयला झोंकने का काम करते थे। वे योरोपीय नगरों को वरावर याद कर रहे थे—न्यूयार्क, व्युनस आयर्स और कभी-कभी हैम्बर्ग वहां एक अनजाने सुन्दर भविष्य की खोज ने उन्हें पहले अपनी ओर खींच लिया था, वरन् पहले वह अदन की वन्दरगाह में जहाज़ में कोयला झोंकने और भट्टी सुलगाने का काम करते थे— लेकिन अब फिर जहाज़ जल्दी ही अदन पहुंच रहा है, जहां उनके ये न भुलाये जाने वाले दिन व रात और बीती कहानियां वन जायेंगे। वे लोग हैट के बजाय अमामा और कूफ़िया इस्तेमाल करना शुरू कर देंगे, हर व्यक्ति अपने गांव की राह ले लेगा— पर क्या जिस तरह वे निकले थे, वैसे ही वापस हो रहे हैं या वतन छोड़ने के वाद अब वे, वे नहीं रहे जो पहले थे, पश्चिम ने उन पर पूरा क़ब्ज़ा जमा लिया था या केवल उनकी भावनाओं को छूकर रह गया था? सच तो यह है कि इस समस्या ने मेरे विचारों का इतना उलझा दिया कि मैं इस पर नये सिरे से और बड़े पैमाने पर सोचने पर मजबूर हो गया।

पूरब और पश्चिम के आपसी सम्बन्ध

इस्लामी जगत और यूरोप कभी एक दूसरे से इतने क़रीब नहीं हुये थे, जितने आज और यही क़रीब होना उस छिपे और खुले संघर्ष का कारण है, जो आज इन दोनों में पाया जाता है। इसका कारण यह है कि मुसलमानों की एक बड़ी संख्या (मर्दों-औरतों) की आत्माएं पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से धीरे-धीरे सुकड़ती और सिमटती जा रही हैं, अपनी उस पिछली भावना से वे दूर होते जा रहे हैं कि आर्थिक स्तर में सुधार और उन्नति केवल मनुष्य की आध्यात्मिक

भावनाओं में सुधार और उन्नति का एक साधन है। वे उसी उन्नति के मोह का शिकार होते जा रहे हैं, जिसके कारण यूरोप तबाह हो रहा है। उन लोगों ने धर्म को घटना-चक्र की एक बीती आवाज़ समझना शुरू कर दिया है। इसलिए वे बजाय ऊपर उठने के और नीचे गिरते जा रहे हैं।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि मुसलमान पश्चिम से कुछ फ़ायदा नहीं उठा सकते, मुख्य रूप से औद्योगिक ज्ञान व कला के मैदानों में, इसलिए कि ज्ञान व कला का सीखना, यह कोई अन्धी पैरवी नहीं है, मुख्य रूप से उस सम्प्रदाय के लिए जिसके नबी ने उसे हर संभव साधन द्वारा ज्ञान प्राप्त करने का हुक्म दिया हो।

ज्ञान न पूर्वी है, न पश्चिमी, ज्ञानपूर्ण खोजें तो एक ऐसे सिलसिले की कड़ियां हैं जिनकी कोई सीमा नहीं और जिनमें पूरी मानव-जाति बराबर की साझीदार है। हर ज्ञानी व साइन्टिस्ट उन्हीं बनियादों पर अपनी खोज की नींव रखता है, जो उसके अगलों ने तैयार की थी, भले ही वे उसकी जाति से संबंध रखते हों या किसी और जाति से। ऐसे ही एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक, एक नस्ल से दूसरी नस्ल तक, एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता तक बनाव-सुधार और उन्नति का काम बराबर जारी रहता है, इसलिए कि अगर किसी विशेष युग या विशेष सभ्यता में ये काम पूरे किये जायें तो यह कभी भी कहना सही न होगा कि वे उस काल या सभ्यता के लिए मुख्य हैं। ऐसा तो हो सकता है कि किसी समय में कोई दूसरी जाति, जो अधिक साहसी और बड़े हौसले वाली हो, ज्ञान-विज्ञान में बढ़-चढ़कर भाग ले, पर बहरहाल सभी इस काम में बराबर के हिस्सेदार हैं।

एक युग ऐसा भी आया था, जब मुसलमानों की संस्कृति व सभ्यता यूरोप की संस्कृति व सभ्यता से अधिक शानदार थी, उसने

यूरोप को बहुत से क्रान्तिकारी औद्योगिक व कलात्मक आविष्कार दिये। इससे बढ़कर यह कि उसने यूरोप को उस व्यवहार के सिद्धान्त व मूलतत्व दिये जिस पर आज की सभ्यता और आज के विज्ञान की नींव है, पर इसके बावजूद जाबिर इब्न हय्यान का केमिस्ट्री का ज्ञान अरबी नहीं कहलाया, ऐसे ही अलजबरा और ज्योमिटरी को इस्लामी ज्ञान नहीं कहा गया, हालांकि पहले का आविष्कारक खवार्जमी है और दूसरे का कातिबानी और ये दोनों ही मुसलमान थे, ठीक उसी तरह आकर्षण सिद्धान्त को कोई अंग्रेज़ी ज्ञान नहीं कह सकता, यद्यपि उसका आविष्कारक अंग्रेज़ था। ये बड़े-बड़े काम और ये अहम खोजें, सच पूछिये तो मानव-जाति की मिली जुली मीरास हैं।

ऐसे ही अगर मुसलमान जैसा कि उनका कर्तव्य है, औद्योगिक ज्ञान व कला के नये साधनों को अपनाते हैं तो वे ऐसा सिर्फ़ उन्नति व प्रगति की स्वाभाविक इच्छा व भावना से करते हैं– दूसरों के तजूर्बों और जानकारियों से फ़ायदा उठाने की स्वाभाविक इच्छा और भावना, पर अगर वे (और उन्हें इसकी ज़रूरत भी नहीं है) पाश्चात्य जीवन के रूप-रंग, रीति-नीति और सामूहिक विचारों व भावनाओ को अपनाते हैं तो इससे उन्हें तनिक भी फ़ायदा न होगा, इसलिए कि यूरोप उन्हें इस मैदान में जो दे सकेगा, वह इससे बेहतर नहीं होगा जो स्वयं उनकी सभ्यता और उनके धर्म ने उन्हें दिया है।

अगर मुसलमान तनिक साहस से काम लें, हौसले को ऊंचा उठायें और उन्नति को एक साधन और माध्यम के रूप में अपनायें तो वे इस तरह न सिर्फ़ अपनी अनदरूनी आज़ादी की हिफ़ाज़त कर सकेंगे, बल्कि शायद यूरोप के मनुष्य को जीवन के खोये हुये आनन्द रहस्य भी बता सकेंगे।

नये मुसलमान भाई से प्रेम

जहाज पर जो यमनी मुसाफ़िर थे, उनमें एक छोटे क़द का आदमी भी था, जिसकी नाक 'उकाब' की तरह थी और चेहरे से रुखाई और ताक़त ज़ाहिर होती थी, पर उसकी चाल-ढाल में बड़ी गम्भीरता और बड़ा सन्तुलन था। जब उसे यह मालूम हुआ कि मैं अभी हाल ही में मुसलमान हुआ हूं तो उसने मुझसे विशेष प्रेम का बर्ताव किया। हम घन्टों जहाज़ पर बैठे बातें करते रहते थे और वह मुझे यमन के पहाड़ों में अपने गांव की बातें बताता रहता। उसका नाम मुहम्मद सालेह था।

एक शाम को जब मैं डेक में उसके रहने की जगह पर गया तो मुझे पता चला कि उसका एक दोस्त बुख़ार में भुन रहा है और लोहे के पंलग पर लेटा हुआ है। मुझे मालूम हुआ कि जहाज़ का डाक्टर तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के पास आने का कष्ट सहन करने को तैयार नहीं है। जब मुझे अन्दाज़ा हो गया कि उसे मलेरिया बुख़ार है, तो मैंने उसे कुनैन की कुछ गोलियां दीं। जब मैं अपने काम में लगा हुआ था तो दूसरे यमनी मुहम्मद सालेह को घेर कर एक ओर खड़े हो गये और आपस में कुछ कानाफूसी करने लगे। वे मुझे अजनबी नज़रों से घूर रहे थे। अन्त में उनमें का एक आदमी, जिसका क़द लम्बा और चेहरा सांवला था, आंखें काली और चमकदार दीख पड़ती थीं, मेरी ओर बढ़ा और उसने मेरे सामने फ्रान्क की एक थैली रख दी:—

"यह हमने मिलजुल कर जमा किया है, इसका अफ़सोस है कि रक़म कुछ अधिक नहीं है, पर हमें आशा है कि आप इसे स्वीकार करेंगे।"

मैं घबराया हुआ कुछ पीछे हटा। फिर मैंने उनको बताया कि दवा मैंने रुपया लेने के लिए नहीं दी थी।

"ठीक है, ठीक है, हम जानते हैं, पर इसके बावजूद भी हम आशा करते हैं कि आप इन पैसों को स्वीकार करेंगे। यह मुआवज़ा नहीं, बल्कि भेंट है आपके भाइयों की ओर से आपके लिए, हम आप से बहुत ख़ुश हैं और इसलिए ये पैसे आपको दे रहे हैं, आप मुसलमान हैं, हमारे भाई हैं और हम सबसे श्रेष्ठ और बेहतर हैं, इसलिए कि हम लोग मुसलमान परिवार में पैदा हुये, हमारे बाप-दादा भी मुसलमान थे, पर आपने इस्लाम को अपने दिल से पहचाना है, रसूलुल्लाह के वास्ते से ये कुछ पैसे अवश्य स्वीकार कर लीजिये, मेरे भाई।"

लेकिन चूंकि अभी तक मैं यूरोपीय रीति-रिवाज और सभ्यता से प्रभावित था, इसलिए मैं इन्कार ही करता रहा और यह कहता हुआ अपना बचाव करता रहा:—

"मेरे लिये कैसे भी सम्भव नहीं है कि मैं अपने बीमार भाई की सेवा के बदले में यह भेंट स्वीकार करूं। दूसरी बात यह है कि मेरे पास काफी रुपये हैं और मुझे यक़ीन है कि आपको उसकी मुझसे ज़्यादा ज़रूरत है, पर अगर इसके बावजूद आपको देने पर आग्रह है तो आप उसे पोर्ट सईद में ग़रीबों में बांट दीजियेगा।"

"यह नहीं हो सकता, आप ही स्वीकार कीजिए और अगर अपने पास नहीं रखना चाहते तो अपनी ओर से ग़रीबों को बांट दीजिए।"

उनके बराबर आग्रह और मेरे बराबर इन्कार की वजह से वे चुप तो हो गये पर उनके चेहरों पर दुख के चिन्ह प्रकट होने लगे, मानो मैंने सिर्फ़ उनका रुपया लेने से इन्कार नहीं किया था, बल्कि उनके प्रेम व निष्ठा को भी ठुकरा दिया था। उस समय यकायकी मुझे एहसास हुआ कि जिस दुनिया से मैं आ रहा हूं, वहां लोगों ने "मैं और तुम" के बीच दीवारें खड़ी कर दी हैं और जिस वर्ग से अब मेरा

संबंध है, उसके व्यक्तियों में कोई रोक, बाधा या दीवार खड़ी नहीं कर दी गई है।

"लाओ भाइयो, पैसे मुझे दे दो, मैं उन्हें स्वीकार करता हूं और आप लोगों का कृतज्ञ हूं।"

"हाज़िर हूं मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूं"

मैंने पांच बार हज के मौक़े पर न जाने कितनी संख्या में यह आवाज़ सुनी थी और आज भी जब कि कई साल बीत चुके हैं, यह आवाज़ मेरे कानों में गूंज रही है।

मैंने अपनी आंखे बन्द कर लीं और चांद-तारे मेरी निगाहों से छिप गये। मैंने अपने चेहरे को अपनी बाहों से छिपा लिया, ताकि आग की रोशनी और आंच भी मेरी पलकों के क़रीब न पहुंच सकें। रेगिस्तान पर चुप्पी छाई हुई थी, सिर्फ़ "हाज़िर हूं मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूं" की आवाज़ मेरे कानों में गूंज रही थी। यह आवाज़ समुद्र की उद्दण्ड मौजों की तरह जबकि वे जहाज़ से टकराती हैं, या पंखा चलने की तेज़ आवाज़ की तरह घड़घड़ा रही थी। मैंने विचार-जगत ही में पंखों को चलते हुये देखा और समुद्र में जहाज़ के निचले हिस्से को कांपते और थरथराते हुये देखा, इसके बाद तेल और धुयें की बू महसूस की और यह आवाज़ "हाज़िर हूं मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ" मुझे सुनाई दी, जो इस जहाज़ पर सैकड़ों लोगों के गले से ऊपर उठ रही थी। यह जहाज़ मुझे पहली बार हज को लिये जा रहा था।

यह जहाज़ (सन् २७ में) मुझे मिस्र से अरब प्रायद्वीप लिये जा रहा था और लाल सागर को पार कर रहा था। यह 'लाल सागर' नाम क्यों है, इसका कारण कोई भी नहीं बता सकता, वैसे इसके पानी का रंग स्वेज़ की खाड़ी के इस पूरे सफ़र में मटियाला था, दाईं ओर अफ़्रीक़ा महाद्वीप के पहाड़ थे और बाईं ओर सीना प्रायद्वीप, ये सब खुले हुये पहाड़ी सिलसिले थे, शुष्क, बिना पानी और घास के,

जितना हम आगे बढ़ते थे, इन सिलसिलों की दूरी भी बढ़ती जाती थी और इनका धुंधलापन गहरा होता जाता था, ज़मीन दीख नहीं पड़ती थी, सिर्फ़ महसूस की जा सकती थी। संध्या समय हम जब लाल सागर के बीच में थे इसका पानी रूम सागर की तरह नीला हो गया। ठंडी और नम हवा समुद्र को छूती हुई चल रही थी।

इस जहाज़ में हाजियों के अलावा और कोई मुसाफ़िर न था। इनकी तायदाद ही इतनी अधिक थी कि जहाज़ में बड़ी तंगी पैदा हो गई थी, इसलिये कि जहाज़ की कम्पनियां ज़्यादा कमाने की लालच में और हज के मौसम से पूरा फ़ायदा उठाने के लिये इसमें जितने आदमी ठूंसे जा सकते थे, ठूंस देती थी, उनके सुख-सुविधा का विचार किये बिना—कमरों में, सीढ़ियों और रास्तो पर और दूसरे-तीसरे दर्जे के बावर्चीख़ानों में हर जगह उनको भर दिया गया था।

हाजी लोग अधिकतर मिस्र और उत्तरी अफ़्रीक़ा के थे जो खुले मन से ये कष्ट सहन कर रहे थे। हज सिर्फ़ उनका मक़सद था, उन्हें इस तंगी की कोई शिकायत न थी। जिसे मौक़ा मिलता वह देख लेता कि वे लकड़ी के फ़र्श पर किस तरह पालती मारे हुये बैठे हैं, मर्द औरत, बच्चे सभी गिरोह बनाये हुए और कैसी कठिनाई और तकलीफ़ के साथ अपना खाना खुद पकाते थे (इसलिए कि कम्पनी ने उनके खाने का प्रबन्ध नहीं किया था) और किस तरह पानी के पीपे लाने के लिये वे दौड़ते भागते रहते थे।

मनुष्यों के इस समुद्र में उनकी दौड़-भाग और चलत-फिरत एक स्थाई सेवा थी। दिन में पांच बार वे किस तरह नलों के पास वुज़ू के लिये भीड़ लगाये खड़े रहते थे,सामान व असबाब रखने की जगह पर जहां उस वक़्त सामान के बजाय आदमी ही दीख पड़ रहे थे, किस तरह उनकी सांस फूलने लगती थी। अगर किसी को यह देखने

का मौक़ा मिलता तो वह इस ईमानी शक्ति का अन्दाज़ा किये बिना न रहता जिससे इन हाजियों के दिल छलक रहे थे। यह पता ही नहीं चलता था कि उनको इन कष्टों और कठिनाइयों का कुछ एहसास भी है, इसलिए कि वे मक्का के विचार में इतने डूबे हुये थे कि हज के अलावा उनके पास बातें करने का और कोई विषय ही न था। और सच तो यह है कि जिस दशा और भावना के साथ वे अपने भविष्य की ओर देख रहे थे, उसने चेहरों को चमका दिया था।

औरतें मदीना के भी गीत गा रही थीं। फिर एक के बाद एक यह आवाज़ मेरे कानों में आने लगी:—

"हाज़िर हूं, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूं।"

दूसरे दिन ज़ुहर को जहाज़ ने सीटी दी, यह इस बात की निशानी थी कि हम राबिग पहुंच गये हैं। राबिग जिद्दा के उत्तर में छोटा-सा बन्दरगाह है, यहां शरीअत के हुक्मों के मुताबिक़ उत्तर से आने वाले हाजियों को अपने रोज़ के कपड़ों को उतार कर 'इहराम' बांधना होता है। इहराम दो बिना सिले सूती कपड़ों को कहते हैं। एक टुकड़े को देह के बीच से इस तरह लपेटा जाता है कि वह घुटने के नीचे तक आ जाता है, दूसरा कंधों पर डाला जाता है और सिर खुला रहता है। इससे कपड़े के पहनने का कारण, जो रसूल की शिक्षाओं के अनुसार है, यह है कि हज शुरू होते ही विभिन्न जातियों और नस्लों के तमाम भेद-भाव ख़त्म हो जाने चाहिएं। धनी, निर्धन, ऊंच-नीच सभी एक रंग में रंग कर यह दिखा दें कि वे अल्लाह और दुनिया के सामने बराबर के भाई हैं।

देखते-देखते तमाम तड़क-भड़क वाले पहनावे नज़रों से ओझल हो गये। अब न आपको लाल ट्युनिसी टोपियां दीख पड़ती हैं, न मोरक्को की क़ीमती पगड़ियां. न मिस्री किसानों की कामदार इबाएं—हर जगह यही मामूली सफ़ेद पहनावा दीख पड़ता है, हर

शोभा और सौन्दर्य से दूर, जिसे पहन कर लोग अब अधिक बराबरी और इज़्ज़त के साथ चल-फिर रहे हैं, यह परिवर्तन हज की हालत पर भी अपना प्रभाव डालती है। इहराम में चूंकि औरतों के देह के कुछ अंग दिखाई पड़ने लगते हैं, इसलिये वे रोज़ वाले कपड़े ही इस्तेमाल करती हैं। पर चूंकि वे (जैसा कि हमारे जहाज़ पर भी था) सफ़ेद और काली इबाएं पहनती हैं। (काली इबाएं और चादरें मिस्री औरतों की और सफ़ेद उत्तरी अफ्रीक़ा की) इसलिये चित्र में किसी गहरे रंग की बढ़ती नहीं होती।

तीसरे दिन सुबह जहाज़ अरब प्रायद्वीप के किनारे पर आ लगा। बहुत से लोग उठ-उठकर जहाज़ के किनारे आ गये और उस भू-भाग को देखने की कोशिश करने लगे जो सुबह के कुहासे में से धीरे-धीरे उभर रहा था।

लाल रंग के किनारे जो पानी में डूबे हुये थे, उस लम्बे सिलसिले का एक अंग थे, जो लाल सागर के पूर्वी तट पर फैला था, उसके पीछे पूरब में कुछ उभरी-उभरी-सी चीज़ दिखाई पड़ रही थी, काली और झुकी हुई—सूर्य जब उसके पीछे से उदय हुआ तो यही उभरी हुई चीज़ समुद्र के किनारे का एक शहर बन गई, जिसके मकान किनारे से बीच तक धीरे-धीरे ऊंचे उठते जा रहे थे। आख़िरी सिरे पर लाल मोतियों और भूरे रंग के पत्थरों की एक इमारत बनी हुई थी। यह ज़िद्दा का बन्दरगाह था। आप उन जालीदार और बेल-बूटे वाली खिड़कियों और लकड़ी के जंगलों के पर्दों को आसानी से देख सकते थे, जिसका रंग नम हवा के असर से मटियाला हो गया था। बीच शहर में एक सफ़ेद और इतना सीधा मनारा दीख पड़ रहा था जैसे सीधी उंगली हो।

अरब का तट

दूसरी बार आवाज़ वायुमंडल में गूंजी— "हाज़िर हूं, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूं।" —अल्लाह को सुपुर्द कर देने और उसकी प्रसन्नता प्राप्त करने की एक हर्षीली आवाज़, जो सफ़ेद इहराम में

लिपटे उन गर्मदिल हाजियों के मन से निकल रही थी जो जहाज़ पर खड़े अपनी कामनाओं के नगर की ओर बढ़ रहे थे।

उनकी कामनाएं और मेरी कामनाएं भी! इसलिए कि अरब प्रायद्वीप की यह तटीय यात्रा मेरे कई वर्षों की खोज का उत्कर्ष थी। मैंने अपनी पत्नी अलसा की ओर देखा, जो इस हज में मेरे साथ थी। उसकी आंखों में भी यही भावना दीख पड़ रही थीं।

यकायकी हमारी नज़र सफ़ेद पंखों के एक झुण्ड पर पड़ी जो भू-भाग से हमारी ओर आ रहा था। यह अरबी नावें थीं जो अपने पतवारों के साथ लाल तटों के बीच में शान्त समुद्र को चीरती हुई बढ़ रही थीं। जब वे धीरे-धीरे बढ़ती हुई दोनों ओर की रस्सियों के साथ भीड़ में आ जातीं तो उनके पतवार एक-एक करके गिरा दिये जाते, मानो वे उन चिड़ियों के पंख हों, जो खाने को देखकर खुशी से ताली बजाने लगी हों।

फिर इस खामोशी के भीतर से एक शोर पैदा हुआ। यह उन मल्लाहों की आवाज़ें थीं जो कूदकूद कर एक नाव से दूसरी नाव पर आ जा रहे थे और जहाज़ की सीढ़ियों पर पहुंच कर हाजियों का सामान लेने की कोशिश कर रहे थे। हाजी लोग इस भू-भाग में इतने मस्त और गुम थे कि वे बिना किसी रुकावट और झिझक के अपना सब सामान दिये दे रहे थे।

ये नावें काफी बड़ी और भारी थीं। उनके इस भोंडेपन में भी सफ़ेद पतवारों और ऊंची रस्सियों का सौन्दर्य और निखर रहा था। मैं समझता हूं कि हौसले वाले सिन्दबाद जहाज़ी ने अपनी यात्रा ऐसी ही नाव में की होगी। ऐसी ही नावों में फीनीकियों सिन्दबाद से बहुत पहले इसी लालसागर के दक्षिण में यात्रा की थी और दक्षिणी अरब के गर्म मसाले और ऊद व लोबान और वहां के ख़ज़ानों की खोज में अरब सागर को पार किया था।

अब हम लोग भी—इन साहसी समुद्री यात्रियों के

उत्तराधिकारी—इस लाल सागर को पार कर रहे हैं, उन लाल चट्टानों और तटों से बचते-बचाते और कतराते हुये जो समुद्र के भीतर डूबे रहते हैं, हाजी लोग, उजले कपड़े पहने, बक्सों और सामानों की जगहों और हर जगह ठुंसे हुये, एक शान्त और बे मुंह की सेना, जो आशाओं और कामनाओं में डूबी हुई थी।

मैं भी यद्यपि आशाओं से भरा हुआ था, पर इस स्थिति में, जबकि मैं जहाज़ के अगले हिस्से में बैठा था और मेरी पत्नी का हाथ मेरे हाथ में था, मैं यह भविष्यवाणी कैसे कर सकता था कि हज की यह सादी रस्म हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकती है। मैं फिर सिन्दबाद के बारे में सोचने पर मजबूर हो गया, जब उसने स्वदेश को त्याग दिया था, उस वक़्त मेरे विपरीत उसे अपने भविष्य का कोई ज्ञान न था, न उसने कोई भविष्यवाणी की थी और न उसे जोखिम की इच्छा थी, जो रास्ते में उसे सहना पड़े, वह केवल धन-प्राप्ति और व्यापार का उद्देश्य लेकर चला था, जैसा कि हज जैसे फ़र्ज़ के अदा करने का मक्सद लेकर मैं चला हूं, पर जब बीच में हम दोनों के साथ ऐसे हालात पेश आ गये, जिनका पेश आना भाग्य में लिख गया था तो हम संसार को अपने पुराने दृष्टिकोण से कैसे देख सकते थे।

यह सही है कि मैंने वे विचित्रताएं नहीं देखीं, जैसे जिन्न और जादू की हुई औरतें और रुख[1] चिड़ियां जिसका सामना हमारे इस बसरा के व्यापारी को हुआ था, पर इस पहले हज ने मेरे जीवन पर बड़ा ही गहरा प्रभाव डाला, पिछली तमाम यात्राओं से अधिक। जहां तक मेरी पत्नी का ताल्लुक़ है तो मौत उसकी बाट जोह रही थी और हम में से किसी को मालूम न था कि वह कितनी क़रीब है। जहां तक मेरा ताल्लुक़ है, मैं मुसलमानों के साथ रहने के लिए यूरोप छोड़ रहा था, पर मुझे मालूम न था कि मैंने अपने पीछे अपनी तमाम

१. वह शानदार चिड़िया जिसका उल्लेख अलिफ़ लैला की कहानियों में किया गया है।

पिछली यादें भुला दी हैं। मेरी पुरानी दुनिया बिना किसी नोटिस के अपने अन्त को पहुंच रही थी—पश्चिमी चिन्तन, व सोच-विचार और भावनाओं और कोशिशों की दुनिया—मेरे पीछे एक दरवाज़ा बहुत धीरे से बन्द हो रहा था, इतने धीरे से कि मैं उसकी आहट भी नहीं सुन सकता था। मेरा विचार था कि यह यात्रा भी पिछली यात्राओं की तरह होगी, जिसके बाद मैं फिर अपने भूतकाल की ओर लौट आऊंगा, पर अब समय का बदलना ज़रूरी था और इसके साथ उसके रुझानों का बदलना भी अनिवार्य था।

इससे पहले मैं पूरब के बहुत से देशों को देख चुका था, ईरान व मिस्र को मैं यूरोप से अधिक जानता था— काबुल एक ज़माने से मेरे लिए कोई अनजान शहर नहीं रहा था, दमिश्क और असफ़हान की सड़कें मेरी जानी-पहचानी थीं, इसलिए जिद्दा के बाज़ार में चल कर जिस चीज का मुझे सब से पहले एहसास हुआ, वह उसका पिछड़ापन था। पूरब में जो अव्यवस्था और बेतरतीबी दीख पड़ती थी वह यहां ज़्यादा बड़े पैमाने पर थी।

बाज़ार की छत लकड़ी के तख़्तों और बोरों से बनाई गई थी ताकि धूप से रक्षा हो सके। उसके छेदों से निकलती हुई सूर्य की किरणें सुबह की रोशनी पर सोने का लेप कर रही थीं, खुले हुये रसोई-घर, जिसके सामने हब्शी लड़के सीख के कबाब तैयार करते थे, काफ़ीहाऊस, जहां तांबे के चमकदार बर्तन और खजूर के पत्तों और टहनियों की कुर्सियां दीख पड़ती थीं, छोटी-छोटी दुकानें जो पश्चिमी और पूर्वी सामानों से भरी पड़ी थीं हर जगह नम गर्मी मछली की बदबू और धूल-आंधी, इहराम बांधे हुये हाजियों की बड़ी भीड़, जिसकी कोई गिनती नहीं और उनके साथी जिद्दा के नागरिक जिन के चेहरों पर इस्लामी नस्ल के लगभग हर तरह का रंग देखा जा सकता था। अगर बाप भारत का है तो दादा मलाया का, जिसने जिद्दा में ऐसी लड़की से ब्याह किया, जिसका बाप

तुर्किस्तान का था और मां सोमाली लैण्ड की। यह हज का और इस्लामी वातावरण का फल था, जहां रंग व नस्ल की कोई अहमियत नहीं। जिद्दा के स्थानीय निवासियों और हज की नीयत से आने वालों के बीच इन दाम्पत्य संबंध के अलावा भी जिद्दा उन दिनों (सन् १९२७) हिजाज़ का वह अकेला शहर था, जहां ग़ैर-मुस्लिमों को ठहरने की इजाज़त थी, इसीलिए अधिक दुकानों पर अंग्रेज़ी साइन बोर्ड दीख पड़ते थे। वे लोग भी दिखाई पड़ते थे जो दोपहर का हल्का पहनावा और हैट आदि इस्तेमाल करते थे, विदेशी झंडे भी दूतालयों पर दीख पड़ते थे।

ये तमाम चीज़ें विदेशी प्रभावों का फल थीं। ये प्रभाव, बन्दरगाहों के शोर में, लंगर पड़ी हुई नावों और उजली त्रिभुजाकार पतवार वाली मछली का शिकार करने वाली नाबों में हर जगह दीख पड़ रहे थे।

सार यह कि यह एक ऐसी दुनिया थी जो रूम सागरीय संसार से कुछ अधिक भिन्न न थी, हां यहां के मकान कुछ अलग थे, बेल-बूटे बने हुये और सुनहरा काम किये शाही महल, जो समुद्री हवा के रुख़ पर थे।

जालीदार लकड़ी के जंगले इस तरीक़े पर बनाये गये थे कि बाहर वाले भीतर नहीं देख सकते, पर भीतर वाले बाहर देख सकते थे। लकड़ी के ये टुकड़े सुनहरे भूरे रंग के काम किए हुये दीख पड़ते थे, मानो कामदार लाल पत्थर हों। यह न रूम सागरीय संसार था और न शुद्ध अरब प्रायद्वीप ही का नमूना। यह लाल सागर के तट की दुनिया थी, जिसमें ऐसी इमारतों पर नज़र पड़ती थी जो दोनों पहलुओं से एक दूसरे से मिलती जुलती थीं।

पर अरब प्रायद्वीप अपनी झलक दिखा रहा था, लौह आकाश और रेतीले नंगे टीले, जो पूरब की ओर जाकर पथरीले हो जाते हैं,

महानता का एक एहसास या वहाव और उसके अनावृष्टि और अकाल, ये दोनों चीज़ें अरब प्रायद्वीप में अनोखे तरीक़े पर घुली मिली दीख पड़ती थीं।

पहली रेगिस्तानी यात्रा

दूसरे दिन शाम को हमारा क़ाफ़िला मक्का के लिए चल पड़ा। हाजियों, बद्दुओं और ऊंटों को, जिनके ऊपर हौदज थे, साथ ही लदे-फंदे गधों को चीरता हुआ यह क़ाफ़िला पूर्वी दरवाज़े की ओर बढ़ रहा था। कभी-कभी मोटरें हमारे पास से गुज़र जाती थीं। अरब प्रायद्वीप की यह पहली मोटरें थीं, जो हाजियों को ले जा रही थीं और अपनी आवाज़ों की वजह से उस जगह की ख़ामोशी को तोड़ती जाती थीं। मैंने देखा कि ऊंट मानो यह महसूस करते हैं कि ये मोटरें उनकी दुश्मन हैं। जब कोई मोटर क़रीब गुज़रती थी तो वह घबराकर पीछे से हटना चाहते थे और बड़े ही क्रोध के साथ मकानों की दीवारों की ओर अपना मुंह फेर लेते और दायें-बायें गर्दन हिलाने लगते। उनकी हरकतों से निराशा और विकलता टपकती थी, वे उस ज़माने से डर रहे थे, जब उन की जगह और सवारियां ले लेंगी।

थोड़ी देर बाद हमने जिद्दा के शहर की दीवारों को छोड़ दिया और अब हम एक लम्बे चौड़े चमकदार मैदान में थे, जहां कहीं-कहीं कुछ कांटेदार झड़ियां और घास-फूस दीख पड़ जाती थी। पूरब में एक पहाड़ी सिलसिला था जो कुछ ऊंचा था, पर बिना घास-पानी के इस सूखे, बन्जर और डरावने मैदान को क़ाफ़िले बड़े-बड़े जलूसों के रूप में बड़े परिश्रम से पार करते थे। सैकड़ों और हज़ारों ऊंट एक लाइन में हौदजों पर हाजियों और उनके सामानों को लादे हुये एक-एक करके दीख पड़ते और फिर ओझल हो जाते। धीरे-धीरे उन सब के रास्ते एक बड़े रेतीले रास्ते पर मिल जाते, अर्थात् वह रास्ता जिस पर शताब्दियों से इस प्रकार के काफ़िले गुज़रते रहते हैं।

रेगिस्तान की इस ख़ामोशी में, जो कभी ऊंटों के चलने की आवाज़ बद्दुओं की कभी-कभी की पुकार और किसी हाजी की गुनगुनाहट से टूट जाती थी, मुझ पर एक अनोखा भाव छाने लगा, इतना अनोखा कि मैं उसे सपना कह सकता हूं।

मैंने अपने आपको एक अथाह समुद्र में एक लम्बे पुल पर पाया, इतना लम्बा पुल कि जिस जगह से मैंने चलना शुरु किया था, वह अब मेरी नज़रों से ओझल होकर दूर कुहासे में डूब गया था और उसका दूसरा सिरा अब मुझे दिखाई देने लगा था। मैंने देखा कि मैं बीच पुल पर खड़ा हूं और यह सोच कर कि मैं उस जगह पर खड़ा हूं जहां से वापसी असम्भव है और आगे बढ़ना आसान नहीं, मेरा मन भय से डूबने लगा। कुछ क्षणों के लिए मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो मैं इसी तरह दोनों किनारों के बीच में पड़ा रहूंगा, अथाह समुद्र और तूफ़ानी मौजों के ऊपर, कि यकायकी मेरे आगे वाली सवारी पर एक मिस्री औरत के मुंह से मुझे हज की पुरानी आवाज़ सुनाई दी— हाज़िर हूं, मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूं— और सपने का क्रम टूट गया।

हर ओर लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं में बातें और कानाफूसियां कर रहे थे। कभी कुछ हाज़िर हूं हाज़िर मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूं की आवाज़ ऊंची करते या मिस्री किसान औरत रसूल की प्रशंसा का कोई गीत गाने लगती और दूसरी किसान औरत खुशी का नारा लगाती, जिसे मिस्र में 'ज़ग़रूता'' और हिजाज़ में ''ग़तरफ़ा'' कहते हैं। अरब औरतें खुशी के मौक़ों पर जैसे ब्याह, जन्म आदि के मौक़ों पर खुशी की आवाज़ें लगाती हैं। इसी तरह हज में, अरब की पुरानी लड़ाइयों में जब क़बीले के 'बड़ों' की लड़कियां लड़ाई में अपने क़बीले के मर्दों के साथ शामिल होती थीं ताकि उनमें साहस व वीरता को उकसाती रहें (इसलिये कि यह उनके यहां की आम बात थी कि दुश्मन लड़कियों को क़त्ल कर देते थे या रिहन रख लेते थे)

तो वे उस समय लड़ाई के मैदान में ऐसे ही नारे और आवाज़ें ऊंची करती थीं।

अधिक हाजी हौदजों पर सवार थे। 'होदजों' मैंने इसलिए कहा कि एक सवारी के लिए दो हौदज होते थे। सवारियों के एक ही ढंग पर हरकत से आदमी को चक्कर आने लगता था और देह के अंगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। थकन की वजह से कुछ लोगों की आंख कुछ मिनट के लिए लग जाती, फिर किसी धक्के या हरकत से खुल जाती। यह सिलसिला बराबर चलता रहता। ऊंट हांकने वाले जो क़ाफिले के साथ पैदल चलते थे, कभी-कभी अपने जानवरों को पुकारते या कोई गाना गाने लगते।

लगभग सुबह में हम बहरा पहुंच गये और दिन भर वहीं ठहरे रहे, इसलिए कि गर्मी इतनी तेज़ थी कि केवल रात में ही यात्रा करना सम्भव था। यह गांव जो वास्तव में कुछ झोपड़ियों, काफ़ी हाउसों और खजूर के पत्तों के छोटे-छोटे मकान और एक छोटी-सी मस्जिद पर सम्मिलित था, एक ऐसा ऐतिहासिक स्थान था जहां से जिद्दा और मक्के की दूरी बराबर होने के कारण वे काफ़िले यहीं ठहर जाते।

जब से हमने सागर-तट छोड़ा था, एक ही तरह की ज़मीन दिखाई पड़ती रही, रेगिस्तान और उसके साथ इक्का-दुक्का टीले और पूरब की ओर से नीले पहाड़, जो तहामा को नज्द से अलग करते हैं। यद्यपि यह जगह हमारे लिए तम्बुओं, हौदजों और सवारियों की एक बहुत बड़ी छावनी थी, जिसे गिनना भी कठिन था और विभिन्न भाषाओं का एक ऐसा संगम, जहां अरबी, उर्दू, फ़ारसी, सुमाली, तुर्की और न जाने कितनी भाषाएं बोली जा रही थीं। फिर भी सच, तो यह कि यह जगह विभिन्न जातियों का एक केन्द्र बन गई थी, पर इहराम की वजह से कोई अन्तर करना कठिन था। ऐसा जान पड़ता था जैसे सब एक ही जाति के सदस्य हों।

हाजी लोग रात भर की यात्रा से थक गये थे और सच तो यह है कि यात्रा अधिक लोगों के लिए असाधारण थी और कुछ लोगों के लिए तो जीवन की पहली यात्रा थी और फिर कैसी यात्रा और किस उद्देश्य से? उनकी विकलता और चिन्ता स्वाभाविक थी। वे एक जगह चैन से नहीं बैठे रह सकते थे, उनके हाथ-पैर बराबर हरकत करते रहते थे, भले ही यह हरकत केवल अपने थैलों को खोलने और दुबारा मज़बूती और सावधानी से बन्द कर देने तक ही हो, इसलिए कि इसके नतीजे में उनको एक ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो सकता है, जिसका संबंध इस जगह से बिल्कुल नहीं है।

मेरे ख़ेमे के पास एक ख़ेमा था, वहां यही बात हुई। ये लोग मेरे अन्दाज़े के मुताबिक़ बंगाल के किसी गांव से आये थे। उन्होंने एक शब्द भी अपने मुख से नहीं निकाला, पालती मारे हुये चुप बैठे, टकटकी बांधे वे पूरब की ओर देखे जा रहे थे, मक्का की ओर, रेगिस्तानी मैदान की ओर, जिसके ऊपर चमकदार और तेज़ धूप की चादर फैली हुई थी। इनके चेहरों से वह शान्ति व सन्तोष झलक रहा था कि आप उसे देखकर यह महसूस करते कि वे सच में, अल्लाह के घर के सामने हैं और अल्लाह से बस दो एक हाथ पर हैं।

ये सुन्दर लोग थे, इनके लम्बे बाल इनके कन्धों पर पड़े हुये थे, दाढ़ियां काली और चमकदार थीं। इनका एक साथी बीमारी के कारण फ़र्श पर लेटा हुआ था और उसके पास दो नवजवान लड़कियां बैठी थीं, जो दो सुन्दर चिड़ियां दीख पड़ रही थीं, लाल और नीला वस्त्र और कढ़ा हुआ जम्पर पहने हुये जिस पर चांदी का काम था, इनमें जो कुछ कम उम्र थी वह नाक में सोने की एक नाजुक लौंग पहने हुये थी।

उस बीमार व्यक्ति का उसी दिन दोपहर में देहान्त हो गया, पर उन दोनों लड़कियों ने न बैन किया, न रोना-पीटना शुरू किया,

जैसा कि पूर्वी लोगों की आदत है, इसलिए कि उस व्यक्ति ने हज करते हुयें इस पवित्र भू-भाग पर जान दी और "शहादत' हासिल की थी। मर्दों ने उसे गुस्ल दिया (नहलाया) और एक उजले कपड़े में, जिसे उस आदमी ने आख़िरी बार इस्तेमाल किया था, उसको कफ़ना दिया। फिर एक व्यक्ति ख़ेमे के सामने खड़ा होकर अपना हाथ अपने मुंह की ओर ले गया और ऊंची आवाज़ में नमाज़ का एलान करने लगा:—

"अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है।"

"मैं गवाही देता हूं कि एक अल्लाह के अलावा कोई दूसरा उपास्य नहीं।"

"और मैं गवाही देता हूं कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।"

नमाज़ मैयत (शव) के लिए तैयार है।"

"अल्लाह तुम सब पर दया करे"

हर ओर से लोग इहराम बांधे हुये जमा हो गये और कई लाइनें बनाकर इमाम के पीछे इस प्रकार खड़े हो गये जैसे कोई बहुत बड़ी सेना खड़ी हो। नमाज़ पढ़ने के बाद उन्होंने क़ब्र खोदी। एक बूढ़े आदमी ने कुरआन की कुछ सूरतें पढीं। फिर मैयत को क़ब्र में उतारने के बाद उसका रुख़ क़िब्ले की ओर कर दिया गया और क़ब्र को रेत से ढक दिया गया।

मक्का में

दूसरे दिन सूर्य निकलने से पहले रेतीला मैदान तंग होना शुरू हुआ और टीले एक दूसरे से क़रीब आते गये। हम एक तंग रास्ते से गुज़र रहे थे। सुबह की धुन्ध में मक्के के पहले मकान दीख पड़ रहे थे। सूर्य निकलते समय हम मक्के में दाखिल हो चुके थे।

यहां मकान अपनी उभरी हुई खिड़कियों और जालीदार रोशनदानों को देखते हुये जिद्दा के मकानों से मिलते-जुलते थे, पर जो पत्थर इनके बनाने में इस्तेमाल हुये थे वे जिद्दा के हल्के लाल रंग के पत्थरों से भारी और बड़े मालूम होते थे। अभी सुबह हुए कुछ ज़्यादा देर नहीं हुई थी, पर गर्मी बराबर पढ़ती जा रही थी। बहुत से घरों के सामने बेंचें पड़ी थीं, जिन पर थके-हारे लोग सो रहे थे। हमारा क़ाफ़िला बीच में चल रहा था। और कच्ची सड़कें धीरे-धीरे तंग होती जा रही थीं। चूंकि हज में अभी बहुत कम दिन बाक़ी रह गये थे, इसलिए सड़कों पर भीड़ बहुत ज़्यादा थी। अनगिनत हाजी इहराम बांधे दीख पड़ रहे थे, कुछ लोगों ने सामयिक रूप से अपने राष्ट्रीय पहनावे पहन लिये थे। पनभरे कमर झुकाये हुये, मश्कें लादे, गधे वाले अपने गधों को लिए, जिनकी गरदनों में बजने वाली घंटियां लगी होतीं और रंगबिरंगे तड़क-भड़क वाले वस्त्र उनकी पीठ पर पड़े हुये, दूसरी ओर से ऊंट वाले, होदज ख़ाली करके वापस आ रहे थे। सड़कों पर एक विचित्र चहल-पहल और शोर-हंगामा, नज़र आ रहा था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे हज हर साल नहीं आता, बल्कि संयोग से ऐसी हालत में आ गया है कि लोग उसके स्वागत के लिए तैयार भी न हो सके थे। हमारा काफ़िला सिर्फ़ काफ़िला नहीं था, बल्कि ऊंट, हौदज, सामान, हाजी, ऊंट वाले और एक हलचल का योग था।

जिद्दा ही से मैंने एक प्रसिद्ध तवाफ़ (परिक्रमा) कराने वाले (मुतव्विफ़) हसन आबिद के घर में ठहरने का फ़ैसला कर लिया था, लेकिन भारी भीड़ में उनके मिल जाने की कुछ अधिक आशा मुझे नहीं थी कि यकायकी एक ओर से आवाज़ आई हसन आबिद के हाजी किस ओर हैं? और जिस तरह जिन्न बोतल से निकलकर खड़ा किया जाये, सहसा एक नौजवान मेरे सामने आकर सीधा खड़ा हो गया। फिर बड़े ही सम्मान के साथ काफ़ी झुकते हुये हम लोगों से अपने साथ चलने को कहा। यह हसन आबिद का दूत था, जो हमको लेने के लिए आया था।

मुतव्विफ के मकान पर एक शानदार नाश्ते के बाद मैं मस्जिदे हराम के इरादे से बाहर निकला। उस समय भी मेरा रहनुमा वही नौजवान था जिसने इससे पहले हम लोगों का स्वागत किया था। हमने चालू और शोर वाली सड़कों पर चलना शुरू किया रास्ते में कुछ कसाइयों की दुकानें मिलीं, जिनके सामने खाल उतारी हुई भेड़ें लटकी हुई थीं। तरकारी बेचने वाले दीख पड़े जो चटाइयों पर तरकारियां लगाये बैठे थे। मक्खियों की अधिकता, तरकारी की गन्ध, धूल और पसीने का सब को सामना करना पड़ रहा था। फिर एक छतदार तंग बाज़ार आया, यह वहां का बज़्ज़ाज़ा था। हर रंग और हर प्रकार के कपड़े यहां मिल सकते थे। यहां पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ़्रीक़ा की दुकानों की तरह एक छोटी सी कोठरी की दुकान थी जो सड़क की सतह से सिर्फ़ एक मीटर ऊंची होती थी। बीच में पालथी मार कर दुकानदार बैठता और उसके चारों ओर भिन्न-भिन्न कपड़ों के ढेर-लगे रहते और इस्लामी जगत के विभिन्न पहनावे उसके सिर पर लटकते होते।

यहां हर टाइप और स्वभाव के आदमी दीख पड़ रहे थे। कुछ लोग अमामा बांधे थे, कुछ नंगे सिर थे, कुछ लोग सिर झुकाये

चुपके-चुपके चल रहे थे, कभी उनके हाथ में तसबीह (माला) भी होती थी और कुछ लोग भीड़ में बहुत तेज़ी से चल रहे थे। सांवले, और भरे शरीश वाले सोमाली, जिनका देह उनके कपड़ों के भीतर से तांबे की तरह चमकता था; ऊंचे क़द, तंग चेहरे और तीखे त्योवरों वाले नज्द के अरब, भरे हुये देह और मोटे हाथ-पैर वाले बुख़ारा तुर्किस्तानी, जो इस तेज़ गर्मी में भी अपने कई रंगों वाले जुब्बे, पगड़ी और इबाएं पहने हुये थे, जो उनके घुटनों तक थीं, बादाम जैसी आंखों वाली जावा की बेपर्दा लड़कियां, मराकशी जो बहुत गम्भीरता और सम्मान के साथ अपने सफ़ेद कपड़ों में घूम-फिर रहे थे, मक्का के लोग अपने सफ़ेद पहनावे में थे, सिरों पर छोटी-छोटी गोल टोपियां रखे हुये मिस्री किसान, जिनके चेहरों पर हर्ष व प्रसन्नता के चिन्ह थे, भारतवासी अपने उजले कपड़ों में , जिनके बर्फ़ की तरह की पगड़ियों से उनकी काली आंखें झांकती थीं, भारतीय औरतें जो अपने सफ़ेद कपड़ों में इस तरह सिमटी-सिमटाई रहती थीं कि निगाह को उनके हरम (भीतर) में दाख़िल होने का कैसे भी मौक़ा न मिल सके, ऐसा जान पड़ता था मानो वे चलते फिरते तम्बू हों; टम्बक्टो और दाहोमी के काले लोग जो अपना नीला पहनावा पहने और लाल टोपियां लगाये थे, चीनी लड़कियां दुबली पतली कोमल, सुन्दर तितलियों की तरह जो हिरन के पैरों की तरह अपने छोटे-छोटे पैरों पर बहुत अन्दाज़ के साथ चल रही थीं, सार यह कि हर ओर एक विचित्र हलचल और अजीब शोर था। ऐसा महसूस होता था मानो कोई व्यक्ति हज़ारों मौजों के बीच घिर गया है, जिसकी कुछ रेखायें तो वह खींच सकता है, लेकिन सबका एक साथ चित्र नहीं बना सकता, हर चीज़ अनगिनत जीभों और तेज़ चलत-फिरत के बीच में तैर रही थी कि यकायकी हमने अपने आपको हरम के एक दरवाज़े पर पाया।

काबे का सौन्दर्य

वह एक त्रिभुजाकार मेहराबों वाला दरवाज़ा था जो पत्थर की सीढ़ी के बाद मिलता था। ड्योढ़ी पर एक भारतीय भिखारी अर्द्धनग्न दशा में अपना कमज़ोर व दुबला हाथ फैलाये बैठा था। मैंने पहली बार हरम के भीतर चौकोर दालान देखा था, जो सड़क की सतह के नीचे और ड्योढी से काफ़ी क़रीब था और इस ढंग से एक "बड़ा क़टोरा" मालूम होता था। एक बड़ा वर्गाकार मैदान जिसके चारों ओर शामियाने थे, और बहुत से खम्भे थे, इसके बीच में एक घनाकार था, जिस की लम्बाई लगभग ४० इंच होगी। यह एक काले कपड़े से लपेट दिया गया था, जिस पर एक चौड़ी बेल थी और इस पर सुनहरे अक्षरों से कुरआन की आयतें लिखी हुई थीं, यह बेल वस्त्र के ऊपरी हिस्से पर थीं।

तो यह वह काबा था जो शताब्दियों से आज तक लाखों करोड़ों मनुष्यों के प्रेम का केन्द्र है, न जाने कितने हाजियों ने हज के इस केन्द्र तक पहुंचने के लिए बड़ी-बड़ी कुर्बानियां दीं, बहुत से रास्ते ही में ख़त्म हो गये और बहुत से मेहनत के बाद पहुंच गये। सब की निगाहों में यह छोटी सी वर्गाकार इमारत बसी हुई थी, उनकी कामनाओं का केन्द्र और सुन्दर सपनों का संसार।

यहां काबा हमारे सामने मौजूद था, पूरी तरह काले रेशमी कपड़े में लिपटा हुआ, मस्जिद के फैले हुये विशाल वर्गाकार मैदान में एक शान्त द्वीप, संसार की हर रचनात्मक यादगार और ऐतिहासिक इमारत से अधिक सादा। ऐसा जान पड़ता था कि इसके पहले बनाने वालों ने—काबे का निर्माण और मरम्मत इब्राहीम अलै० के बाद से बराबर होती आई है—इसको अल्लाह के सामने मनुष्य की दुर्बलता और विवशता का एक रहस्य बनाना चाहा है। काबा के बनाने वालों को मालूम था कि सुन्दर सुन्दर निर्माण-कला

अल्लाह के विचार को स्पष्ट नहीं कर सकती, इसलिए उसने एक तीन भुजाओं की शक्ल बनाई जिसे बुद्धि पत्थर का एक त्रिभुजाकार टुकड़ा सोच सकती है।

मुझे इससे पहले विभिन्न इस्लामी देशों में शानदार मस्जिदों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिसमें निर्माताओं और इंजीनियरों ने अपनी कला का उत्कर्ष दिखाया था, मैंने उत्तरी अफ्रीक़ा के मस्जिद और पूजा-घर देखे जो संगमरमर से बनाये गये थे। बैतुलमक़्दिस का "क़ुब्बतुस्सख़र:" भी देखा जो एक क़लात्मक इमारत के ऊपर बनाया गया था, भारी और हल्केपन का ऐसा सपना जो किसी प्रतिकूलता के बिना पूरा हो गया। इस्तम्बूल की शानदार इमारतें, सुलैमानिया, मस्जिद बायज़ीद और अनातूलिया की मस्जिदें, बोरसा, और ईरान की सफ़वी मस्जिदें, जो क़ीमती और सुन्दर पत्थरों और रंगीन पच्चीकारी और चांदी के काम वाले दरवाज़ों पर सम्मिलित हैं; समरकन्द में मैंने तैमूर लंग की शानदार मस्जिद के चिन्ह देखे, जो इस टूटी-फूटी हालत में भी बहुत शानदार लग रही थी।

यह सब मैं देख चुका था, पर मेरी चेतना और मेरी भावना इतनी शक्तिशाली और इतनी जगी हुई कभी न हुई थी, जितनी काबे को अपने सामने देखकर, इसलिए कि इसके बनाने वाले का हाथ धार्मिक अर्थों से अधिक निकट था। त्रिभुजाकार की पूरी सादगी और रूपों व रेखाओं से साज-सज्जा का इन्कार इस विचार को प्रकट कर रहा था कि "मनुष्य सौन्दर्य की रचना जो भी अपने हाथ से बनाता है, उसको यह समझना कि यह अल्लाह के योग्य है, एक धोखा है, इसलिए यद्यपि मनुष्य इसको सादा न मानना चाहे, फिर भी अपने पैदा करने वाले की बड़ाई बखानने के लिए वह अधिक से अधिक यही कर सकता है।"

कुछ ऐसा ही विचार मिस्र के फ़ौजियों को देखकर होता है। यद्यपि इसकी लम्बाई-चौड़ाई की वजह से धोखाधड़ी को मनुष्य के भीतर दाखिल होने का रास्ता मिल जाता है, पर यहां काबे में उसकी मोटाई तक विनम्रता का दृश्य प्रस्तुत करती है। इस छोटी सी इमारत में इस प्रसन्नतापूर्ण विनम्रता का उदाहरण संसार में मिलना कठिन है।

मुसल्ला (नमाज़ पढ़ने की जगह) इब्राहीम के सामने मैं कुछ देर के लिए रुक गया और उसकी महानता बिना किसी सोच-विचार के देखता रहा। मेरे मन की गहराइयों से हर्ष व शान्ति का एक सोता उबलने लगा, जैसे वह कोई शान्त गीत हो।

संगमरमर के टुकड़ों पर, जिस पर सूर्य की किरणें नाच रही थीं और जो काबे के चारों ओर एक वृत्ति में फैले हुये थे, बहुत से मर्द और औरतें इस काले पहनावे वाले अल्लाह के घर की परिक्रमा कर रहे थे, इनमें बहुत से ऐसे थे जो रो रहे थे, कुछ ऊंची आवाज़ से गिड़गिड़ा कर दुआयें मांग रहे थे, कुछ ऐसे थे जो न बोलते थे, न रो रहे थे, बल्कि केवल सिर झुकाये तवाफ़ में लगे हुये थे।

अल्लाह के घर का तवाफ़

हज का एक अंग यह भी है कि काबे का सात बार तवाफ़ (परिक्रमा) किया जाये, केवल इस्लाम के पवित्र केन्द्र के नाते नहीं, बल्कि मन को इस्लामी जीवन का मूल ध्येय याद दिलाने के लिए कि काबा अल्लाह के 'एक होने' का केन्द्र है, इसके चारों ओर हाजी की शारीरिक गतिविधियां वास्तव में मनुष्य की प्रसन्नता का व्यक्त रूप हैं जिसका मतलब यह है कि हमारे विचार और भावनाएं और जो चीज़ें भी "आन्तरिक जीवन" से संबंध रखती हैं, केवल उन्हीं की धुरा अल्लाह को नहीं होना चाहिए, बल्कि हमारे वाह्य जीवन, हमारे कर्म, हमारी कोशिश और दौड़-धूप की धुरा भी अल्लाह ही को होना चाहिए।

मैं आगे बढ़ा और काबे के चारों ओर उस गोल बाढ़ का एक अंग बन गया। कभी-कभी मुझे अपने क़रीब किसी मर्द या औरत का एहसास होता, भिन्न-भिन्न रूप मेरी निगाहों के सामने आते और फिर छट जाते। एक मोटा-ताज़ा हब्शी इहराम बांधे हुये आया, उसकी कलाई से लकड़ी की इतनी मोटी तसबीह (माला) लटक रही थी मानो ज़ंजीर हो। फिर मेरे सामने एक बूढ़ा जावी गुज़रा जिसकी बाहें इतनी लचकदार और ढीली थीं मानो उसमें कोई जान बाक़ी न रही हो। 'काले पत्थर' – के सामने गोल भीड़ में मुझे एक नवजवान भारतीय औरत दीख पड़ी, उस पर कमज़ोरी के चिन्ह थे और इसके छोटे चेहरे से एक विचित्र कामना और अनोखी भावना इतनी साफ़ दीख पड़ रही थी, जैसे साफ़-सुथरे पानी के तलाव में मछलियां दीख पड़ती हैं। इसकी दोनों हथेलियां ऊपर की ओर उठी हुई काबे की तरफ़ फैली थीं। उसकी उंगलियां कांप रही थीं, जैसे वे भी दुआ में शरीक हों।

मैंने अपना तवाफ़ जारी रखा और इसी दशा में कई मिनट बीत गये। मैंने महसूस किया कि जो भी मैल-कुचैल मेरे मन में था, वह सब ख़त्म हो रहा है। मैं भी उस गोल भीड़ का एक अंग बन गया था। आह! क्या यही हमारी गतिविधियों का अर्थ था? कि मनुष्य को यह महसूस हो कि वह धुरा की हरकत का अंग है। क्या यही तमाम अशान्ति और अव्यवस्था का अन्त था? मिनट मिटते गये, खुद समय चुप हो गया और यह जगह संसार की धुरा बन गई।

"अलसा" का देहान्त"

नौ दिन के बाद मेरी पत्नी का यकायकी देहान्त हो गया। वह सहसा चल बसी। बीमारी में एक हफ़्ता भी पूरा नहीं गुज़रा। शुरू में मुझे विचार हुआ कि गर्मी और अनचाहे खानों की वजह से मन पर कुछ बुरा असर पड़ गया है, पर बाद में उसने एक गम्भीर रोग का रूप ले लिया जिसके सामने मक्का के अस्पताल के शामी डाक्टर

भी हथियार डाल चुके थे। मेरे ऊपर निराशा और अंधियारी के बादल छा गये।

वह मक्का के रेतीले मक़बरे में दफ़न हुई और उसकी क़ब्र पर एक पत्थर लगा दिया गया, लेकिन मैंने पत्थर पर कुछ लिखना पसन्द न किया, इसलिए कि लिखने के बारे में सोचना वास्तव में भविष्य के बारे में सोचना था और मैं इस समय किसी भविष्य का विचार करने में विवश था।

अहमद (जो अलसा से मेरा छोटा बच्चा था) एक साल तक मेरे साथ रहा और अरब प्रायद्वीप के भीतरी स्थानों में मेरी यात्राओं का साथी बना रहा। उस समय उसकी उम्र दस साल की थी, पर कुछ मुद्दत के बाद मुझे उसको यूरोप भेजना पड़ा, इसलिए कि उसकी मां के घर वालों ने उसे यूरोप के किसी स्कूल में दाख़िल करने के लिए मुझे तैयार कर लिया था।

अब मेरे पास केवल अलसा की याद थी और मक्का के मक़बरे का पत्थर! वह अंधियारी बहुत दिनों तक आंखों से न दूर हो सकी, अर्थात् अरब प्रायद्वीप से मेरे मिलने के बहुत ज़माने के बाद तक।

रेगिस्तानी आंधी !
और ईमान का सहारा[1]

जैद ने चुप्पी तोड़ते हुये कहा, "वह देखिये जैद ख़रगोश?"

मैंने नज़र उठाई तो देखा कि जंगली ख़रगोश की एक पूरी टुकड़ी एक झाड़ी से कूदती-फांदती चली जा रही है। इतने में जैद तुरन्त ही अपने घोड़े से उतर पड़े और धनुष-बाण उठाए हुये बहुत तेज़ी के साथ उसकी ओर लपके, पर तुरन्त ही उनका पांव किसी तने से टकराया और वे मुंह के बल ज़मीन पर आ रहे।

इतनी देर में ख़रगोश ग़ायब हो चुके थे।

"एक शानदार दावत का नुक़्सान हो गया" मैंने हंसते हुये कहा।

जैद ज़मीन से उठते हुये ललचाई नज़रों से धनुष को देख रहे थे।

"पर इसमें आपकी ग़लती क्या है? ये ख़रगोश हमारे भाग्य ही में नहीं थे।"

"हां, कुछ ऐसा ही जान पड़ता है" उन्होंने कुछ अनमना-सा उत्तर दिया।

मैंने देखा वे कुछ लंगड़ा कर चल रहे हैं।

"क्या कुछ अधिक चोट तो नहीं आ गई है"

"ओह! कोई ख़ास बात नहीं, बस तनिक मोच आ गई है। थोड़ी देर में पीणा दूर हो जायेगी।"

---

१. यह अंश पिछले अंशों से कुछ बेजोड़-सा जान पड़ता है, पर इसमें उनके जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख बड़े महत्त्वपूर्ण ढंग से हुआ है, जिसके पढ़ने से अन्दाज़ा होता है कि वह रेगिस्तान की इस भयानक और ख़तरनाक आंधी में मान-ईमान के सहारे किस तरह जमे रहे, इसी कारण इसे शामिल किया जा रहा है।

पर दर्द कैसे भी कम नहीं हुआ, बल्कि कुछ और समय बीतने के बाद मुझे ज़ैद के चेहरे पर पसीने की बूंदें दीख पड़ीं। जब मेरी नज़र उनके पांवों पर पड़ी तो मुझे अन्दाज़ा हुआ कि टखने में बड़ी कड़ी चोट आ गई है और वह अच्छा भला सूज चुका है।

"इस हालत में यात्रा करने से कोई लाभ न होगा, हमको थोड़ा आराम करना चाहिए। मेरा विचार है कि एक रात आराम कर लेने के बाद यह बहुत कुछ ठीक हो जायेगा" मैंने कहा।

"रात भर ज़ैद को पीड़ा रही और वे फ़ज्र से बहुत पहले ही जाग उठे। उनकी इस यकायकी हरकत और आवाज़ से मेरी आंख खुल गई।

वे कह रहे थे, "मुझे एक ही ऊंट नज़र आ रहा है।"

जब हमने चारों ओर नज़र दौड़ाई तो मालूम हुआ कि एक ऊंट जो ज़ैद का था, सच में, ग़ायब हो गया है। उन्होंने इरादा किया कि मेरी सवारी लेकर उसे खोजने निकलें, पर पीड़ा से उनका खड़ा होना भी कठिन था, न कि चलना और सवार होना।

"आप आराम कीजिए, आपकी जगह पर मैं जाता हूं। अपने पद चिन्हों को देखकर आसानी से मैं वापस आजाऊंगा।"

तात्पर्य यह कि भोर होते ही मैं गुम हुये ऊंट की खोज में निकल पड़ा। मैं उन पद-चिन्हों को देख-देखकर आगे बढ़ रहा था जो ऊंट ने बना दिये थे और जो टीलों के पीछे तक चले गये थे।

एक घंटा बीता, दो घंटे बीते और फिर तीन बीत गये, गुम हुये ऊंट के पद-चिन्ह वैसे ही मिलते रहे। जान पड़ता था, मानो वे किसी विशेष निश्चित स्थान तक चले गए हों।

जब मैं आराम करने के लिए रुका तो दिन अच्छा-भला निकल चुका था। मैं अपनी सवारी से उतरा, कुछ खजूर खाये और ऊंट के कजावे से लटकी हुई मशक से पानी पिया।

सूर्य सिर पर आ गया, पर इसमें अभी अधिक गर्मी नहीं थी। भूरे बादल जो आम तौर पर उस समय दीख नहीं पड़ते थे, आसमान पर ठहरे हुये थे, हवा बड़ी मस्ती में रेत को छूती हुई चल रही थी।

मैंने अपने सामने वाले टीले पर सहसा कुछ हरकत-सी महसूस की। क्या वह कोई जानवर है? हो सकता है मेरा वही गुम हुआ ऊंट हो, पर जब मैंने उसको ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि हरकत रेत के ऊपर नहीं थी, बल्कि उसकी सतह के भीतर हो रही थी। वह सतह बहुत धीरे-धीरे हिल रही थी। फिर मुझे ऐसा महसूस हुआ कि वह मेरी ओर लुढ़क रही है। आसमान लाल हो रहा था और लाली मैदानों में फैलती जा रही थीं। इसके बाद रेत के बादल के बादल मेरे चारों ओर इकट्ठा होने लगे और मेरे चेहरे पर चोटें मारने लगे। जल्द ही घाटी के हर ओर हवा की ज़बरदस्त घड़घड़ाहट सुनाई देने लगी। आसमान पर अंधेरा छा गया और रेत के बादलों ने लाल कुहासे की तरह सूर्य और उजाले को छिपा लिया। निस्सदेह यह रेगिस्तान की आंधी थी।

मेरा ऊंट प्रकृति के इस प्रकोप से घबड़ा कर उठने की कोशिश करने लगा, पर रस्सियों के ज़ोर से उसे रोके रखा। साथ ही साथ मैं इसकी भी कोशिश करता रहा कि हवा का दबाव कहीं मुझे ही न गिरा दे। मैंने उसके आगे की दोनों टांगें और पीछे की एक टांग बांधी दी, फिर अपने सिर को चादर से ढांक कर ज़मीन पर पड़ गया और अपना मुंह ऊंट की बग़ल में दबा दिया, ताकि रेत के झक्कड़ उसे कष्ट न पहुंचा सकें। लेकिन मैंने महसूस किया कि ऊंट खुद अपनी गर्दन से मुझे दबा रहा है, दूसरी ओर मेरे देह का वह भाग जो ऊंट की आड़ में नहीं था रेत से बन्द हुआ जा रहा था और मैं बार-बार जगह बदल रहा था, इसलिए की अगर ऐसा न करता तो मेरे वहीं रेत में दफ़न हो जाने का ख़तरा था।

मैं बहुत ज़्यादा भयभीत नहीं था, इसलिए कि रेगिस्तानी आंधी से मेरी यह पहली भेंट न थी। मेरे लिए बस यही एक रास्ता था कि मैं अपनी चादर को ख़ूब मज़बूती से कसे हुये ज़मीन पर पड़ा रहूं और आंधी रुकने का इन्तिज़ार करूं और तेज़ हवा की सनसनाहटों को सुनता रहूं जो मेरी चादर को किसी पाल या झंडे की तरह हिला रही है।

अन्त में जब आंधी का ज़ोर ख़त्म हुआ तो मैंने अपने को रेत से निकाला। मेरा ऊंट भी आधा रेत में धंस चुका था। पर यह तजुर्बा मेरे अनेकों पिछले तजुर्बों से ज़्यादा बुरा नहीं था। शुरू में मुझे अन्दाज़ा हुआ कि इस आंधी से मुझे कोई नुक़्सान नहीं पहुंचा, बस, इतना हुआ है कि मेरे कान, नाक, मुंह रेत से भर गए हैं और मेरे जीन पर पड़ी हुई खाल उड़कर ग़ायब हो गई है, लेकिन जल्दी ही मुझे अपनी ग़लती का एहसास हो गया।

रेत के तमाम टीले और रास्ते बिल्कुल ही बदल गये थे। मेरे और मेरे ऊंट के पद-चिन्हों का भी दूर-दूर तक पता न था। मैंने महसूस किया कि मैं बिल्कुल एक नई घाटी के नए भू-भाग पर खड़ा हूं।

अब मेरे सामने इसके अलावा कोई रास्ता न था कि सूर्य के रुख़ और रेगिस्तान के मुसाफ़िरों की अन्तर्चेतना की मदद से अपनी मंज़िल का रुख़ करूंगा अधिक शब्दों में वापस जाने की कोशिश करूं, पर इन दोनों चीज़ों पर पूरा भरोसा तो नहीं किया जा सकता था और न अपने निश्चित रुख़ ही के बाक़ी रखने की कोई गारंटी थी।

आंधी की वजह से मुझे प्यास लग रही थी, लेकिन जो मशक अपने साथ लाया था, उसमें अब पानी की एक बूंद भी न थी, हां मुझे उम्मीद थी कि यहां से ज़ैद के ठिकाने की दूरी कुछ घंटों से ज़्यादा की

न थी। यद्यपि मेरे ऊंट ने भी दो तीन दिन से पानी नहीं पिया था, पर इस वफ़ादार ऊंट और हर समय के फ़ौजी पर भरोसा किया जा सकता था।

उसने अपना रुख़ उसी ओर कर लिया जहां मुझे ज़ैद के होने की आशा थी और तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाता हुआ चल पड़ा।

इस यात्रा पर पूरे तीन घंटे बीत गये, पर ज़ैद का कैसे भी पता न चला, न रेत के चिन्ह ही दिखाई दिये, जहां हम उतरे थे। मुझे याद नहीं कि मैंने वे "ग्रेननाइट" रंग के टीले देखे हों। सच में इन चीज़ों का पहचानना मेरे लिये बड़ा कठिन था, अगर आंधी न चली होती, जब भी।

सूर्य डूबने से कुछ पहले मैं 'ग्रेनाइट' (Granite) की चट्टान के पास से गुज़रा जो इन रेगिस्तानी मैदानों में बहुत ही कम मिलती और बड़ी ही मूल्यवान होती हैं। मैंने उसे तुरन्त पहचान लिया, जहां से हम और ज़ैद पिछले दिन गुज़रे थे। मुझे इसमें बड़ी राहत महसूस हुई। यद्यपि यह बात स्पष्ट थी कि मैं उस जगह से अभी बहुत दूर हूं जहां मुझे ज़ैद के मिलने की आशा थी, पर मुझे महसूस हुआ कि अगर मैं दक्षिण-पश्चिम की ओर चल पड़ा तो वहां पहुंचना कुछ कठिन नहीं होगा।

इन चट्टानों और मेरे ठिकानों के बीच कोई तीन घंटे की दूरी रही होगी, मैंने ये तीन घंटे पूर कर लिये, पर ज़ैद का फिर भी कहीं पता न चला। क्या मैंने फिर ठोकर खाई है?

मैंने अपने ऊंट को फिर एड़ लगाई और सूर्य के चक्कर की मदद से उसी दिशा को चलता रहा। दो घंटे और बीत गये, पर ज़ैद का कहीं नाम व निशान न था।

जब रात हो गई तो मैंने सोचा कि अब चलना बिल्कुल बेकार है। बेहतर यह है कि रात भर आराम किया जाये, फिर सुबह को

खोजना शुरू किया जाये। मैंने ऊंट को बिठाया और रस्सी से बांध दिया। मैंने चाहा कुछ खजूर खा लूं, पर हलक में कांटे पड़े हुए थे। अंत में खजूर भी मैंने ऊंट के आगे डाल दिये और उसके देह से टेक लगाकर लेट गया। लेकिन न सो सका, न जाग सका, बल्कि बीच की दशा में पड़ा रहा। थकन की वजह से भांति-भांति के विचार मन में आ रहे थे, प्यास भी धीरे-धीरे बड़ी तेज़ और कष्टप्रद होती जा रही थी। फिर उन भयानक गहराइयों से जिसका विचार करने से भी आदमी बचना चाहता है, मुझे यह भय झांकता हुआ दिखाई दिया कि अगर मुझे ज़ैद का रास्ता न मिला या पानी हाथ न लगा, तो फिर क्या होगा, इसलिए कि यह मैं अच्छी तरह जानता था कि किसी ओर भी कई दिन की दूरी तै करने के बाद ही पानी मिल सकता है।

फ़ज्र के वक़्त मैंने फिर चलना शुरू किया। रात को मुझे विचार हुआ था कि मैं दक्षिण की ओर अधिक बढ़ आया हूं और ज़ैद, जिस जगह मैंने रात बिताई थी उसके उत्तर पूर्व में होंगे, इसलिए मैंने अपने ऊंट का रुख़ उस ओर कर दिया। प्यास, थकन और भूख हर क्षण बढ़ती ही जा रही थी। हम दोनों एक घाटी से दूसरी घाटी में भटकते फिर रहे थे। कभी टीलों के दाहिने ओर से निकल जाते, कभी बायें ओर से। ज़ुहर के वक़्त हमने कुछ आराम किया। मेरी ज़ुबान तालू से चिपक गई थी और ऐसा जान पड़ता था जैसे वह किसी पुरानी मशक का फटा हुआ चमड़ा हो। आंखें जल रही थीं। मैंने ऊंट के पेट के पास चादर से अपने चेहरे को बंद करके कुछ सोने की कोशिश की, पर इसमें भी सफलता नहीं हुई और ज़ुहर के बाद हमने दुबारा चलना शुरू किया। इस बार हम पूरब की ओर जा रहे थे, इसलिए कि मेरा विचार था कि हम पश्चिम की ओर ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ आये हैं, पर ज़ैद का कहीं पता न था।

दूसरी रात भी आ गई। अब प्यास अच्छे भले अज़ाब में बदल चुकी थी और बड़ी चिन्ता इस बात की थी कि पानी कैसे प्राप्त किया

जाए। यद्यपि मैं सही तौर पर कुछ विचार करने के योग्य भी नहीं रहा था फिर भी भोर होते ही चल पड़ा। सुबह हुई, ज़ुहर हुई फिर संध्या भी हो गई। रेतीले टीले और आग बरसती गर्मी, टीलों का एक न खत्म होने वाला सिलसिला, पर शायद यही मेरा अंत था, इन रास्तों पर मेरी तमाम खोजों का अंत और उन लोगो से भेंट का अंत जिनके बारे में यह समझ रहा था कि अब मुझे उनके बीच अनजाना बनकर नहीं रहना है। मैंने अल्लाह से दुआ की हे अल्लाह! तू इस दशा में मेरा अंत न कर।

ज़ुहर के बाद मैं एक ऊंचे टीले पर चढ़ा कि वहां से अच्छी तरह हर ओर का निरीक्षण कर सकूं। जब मैंने दूर पूरब में एक काला बिन्दू देखा तो क़रीब था कि मैं ख़ुशी से चिल्ला पड़ा। यह और बात है कि कमज़ोरी की वजह से चिल्ला भी न सका। मुझे यक़ीन हो गया, यह काला बिन्दू ज़रूर ही ज़ैद की जगह होगी और यहीं मुझे पानी से भरी हुई दो मशकें मिलेंगी। जब मैंने दूसरी बार सवार होना चाहा तो मेरे क़दम डगमगा गये, फिर भी बड़े ही धीरे-धीरे और संभल-संभल कर उसी बिन्दू की ओर बढ़ने लगा जो ज़ैद के ठिकाने के अलावा कुछ और नहीं हो सकता था। इस बार मैं पूरी तरह सावधान रहा, ताकि अब कोई ग़लती न हो सके और बिल्कुल सीध पर चलने लगा। टीलों पर चढ़ने और घाटियों में उतरने के कारण मेरे परिश्रम और मेरी थकन में और बढ़ौतरी हो गई थी। लेकिन बस यह आशा मुझे धीरे-धीरे खींचे लिए जा रही थी कि ज़्यादा से ज़्यादा दो घंटे के भीतर मैं अपनी मंज़िल तक पहुंच जाऊंगा।

जब मैं एक और रेतीले टीले को पार करके नीचे उतरा तो वह निशान और साफ़ हो गया। ऐसा जान पड़ा मानो मेरे दिल की धड़कन रुक जायेगी। यह निशान जो मैं अपने सामने देख रहा था,

ग्रेनाइट की वही चट्टानें थीं, जिनके पास से हम और ज़ैद तीन दिन पहले गुज़रे थे और जिसके पास से मैं दो दिन हुए अकेला गुज़रा था।

दो दिन और हो चुके थे और मैं एक अनजाने गोले में चक्कर काट रहा था।

जब मैं अपने ऊंट से उतरा तो मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे मेरे अंग-अंग जवाब दे चुके हैं। मुझे अपने ऊंट को बांधने का भी होश न रहा और सच में, वह भी इतना थका हुआ था कि भागने के बारे में कुछ सोच भी न सकता था। मैं रो दिया, पर मेरी सूजी और सूखी आंखों से आंसू भी न निकल सके।

आह, कितना लम्बा ज़माना है जो बिना रोये बीता है, पर क्या अब यह समय सदा के लिये ख़त्म हो चुका है। क्या अब मेरे हिस्से में केवल प्यास, गर्मी, जलन और अज़ाब है।

तीन दिन हो चुके, मेरे हलक में पानी की एक बूंद न पहुंची। मेरे ऊंट को भी पानी पिए हुये पांच दिन हो चुके हैं। वह तो एक दो दिन और सहन कर ले जायेगा, पर मैं कैसे सहन कर सकूंगा। शायद मरने से पहले मैं पागल हो जाऊं, इसलिए कि मेरे देह का कष्ट और पीणा मेरे मस्तिष्क व बुद्धि के भय व डर के साथ मिलकर कराह रही है और वे दोनों पीणाएं एक दूसरे को बल दे रही हैं और मेरे शरीर व मस्तिष्क को छलनी किये दे रही हैं।

मैंने अपने भीतर आराम करने की इच्छा पाई, पर सहसा मुझे यह विचार हुआ कि अगर इस समय मैं आराम कर लेता हूं तो दूसरे वक़्त शायद मेरे भाग्य में उठना भी न हो। मैं अपने ऊंट को दूबारा खड़ा करने के लिए मारने और कोचने लगा। उसने जब अपनी पीछे की दो टांगें खड़ी कीं तो मैं गिरते-गिरते बचा। ऐसे ही जब उसने आगे की टांगे उठाईं और पीछे की ओर चला तो उस वक़्त भी मैं गिरने के क़रीब हो गया। फिर मैंने बड़ी ही सावधानी से पश्चिम की

ओर चलना शुरू किया— पश्चिम की ओर? क्या मज़ाक़ है? इस भयंकर विशाल और बेवफ़ा रेगिस्तानी समुद्र में पश्चिम का क्या अर्थ हो सकता है?— पर मैं ज़िन्दा रहना चाहता था और इसीलिए मैंने अपनी खोज जारी रखी।

जितनी भी शक्ति थी, उसी के सहारे हम रात भर चलते रहे। मेरा विचार है कि सुबह से पहले ही में अपने ऊंट से गिर जाऊंगा, पर गिरने से मुझे कोई चोट नहीं आएगी, इसलिए कि नर्म रेत मुझे अपनी गोद में ले लेगी। मेरा ऊंट रुक गया, फिर अपने घुटनों और पीछे की दोनों टांगों के बल मेरे क़रीब रेत पर गर्दन फैलाकर बैठ गया। मैं उसके साये में रेत पर लेट गया और बाहर की गर्मी और भीतर के कष्ट और प्यास और भय से बचने के लिए अपनी चादर लपेट ली। मुझ में अब न सोचने की ताक़त थी और न आंख तक बन्द करने की, इसलिए कि मेरे पपोटों की तनिक भर हरकत भी ऐसी जान पड़ती थी जैसे कोई धधकती धातु मेरी पुतलियों को दाग़ रही हो। वहां प्यास और गर्मी के अलावा कुछ न था— प्यास और भयानक सन्नाटा, ऐसा निर्दय सन्नाटा जो मनुष्य को निराशा और भय के समुद्र में डुबा दे। कभी-कभी मुझे ऊंट की बलबलाहट और आवाज़ें सुनाई देने लगती थीं और मैं सोचने लगता कि शायद यह आख़िरी आवाज़ है जो मैं सुन रहा हूं और शायद मैं और यह (ऊंट) जीवन की आख़िरी सांसें ले रहे हैं।

बहुत ऊंचाई पर छाई और तैरती गर्मी में एक गिद्ध धीरे-धीरे उड़ रहा था। ऐसा जान पड़ता था जैसे वह आसमान के शान्त चेहरे पर एक काला तिल हो—क्षितिज से बहुत दूर!

मैंने अपने गले में और सांस लेने में बड़ी तंगी महसूस की और मेरी जीभ सूज गई— वह जीभ जिसके पास अब हिलने की भी शक्ति नहीं रही थी, पर वह आगे और पीछे की ओर बराबर हरकत कर रही थी।

मेरे अंग-अंग ज्वर से भुनने लगे और मौत की मंज़िल क़रीब आ गई। आसमान मेरी नज़रों में काला और अंधेरा दिखाई पड़ने लगा।

अनजाने ही मेरे हाथ को हरकत हुई और वह जीन से लटकी हुई बन्दूक़ पर पड़ा और वहीं रुक गया। यकायकी मेरा मन एक रोशनी से चमक उठा। मेरी निगाह कारतूस की पेटी पर पड़ी। मैंने उन पांच कारतूसों पर नज़र डाली और ऐसा जान पड़ा जैसे कोई कहने वाला कह रहा है। जल्दी करो और इसके पहले कि तुम निराश हो जाओ, इस बन्दूक़ को इस्तेमाल कर लो।

फिर मैंने महसूस किया कि मेरे होंठों को हरकत हो रही है और उससे कुछ अलग-अलग कटे-कटे से शब्द निकल रहे हैं जो ठीक से सुनाई भी नहीं दे रहे हैं "हम अवश्य ही तुम्हें आज़मायेंगे—हम अवश्य ही तुम्हें आज़मायेंगे"— फिर पूरी आयत जीभ पर जारी हो गई— "और हम तुम्हें अवश्य ही भय से, भूख से, माल, जान फलों की क्षति से आज़मायेंगे और शुभ-सूचना दे दो उन सब्र करने वालों को, जिन पर मुसीबत आती है, तो कह उठते हैं कि हम तो केवल अल्लाह के लिए हैं और हमें उसी की ओर पलट कर जाना है।

मेरे चारों ओर गर्मी और अंधेरे के अलावा कुछ न था, पर इस गर्भ अंधेरे में मैंने हवा का एक ठंडा झोका महसूस किया। मुझे ऐसा लगा कि हवा पानी के पास पेड़ों के पत्तों को हिला रही है और पानी वास्तव में वह शान्त नहर है जिस के किनारे हरा-भरा तट है और नहर वह है जो लड़कपन में मेरे मकान के सामने से गुज़रती थी। मैंने देखा कि मैं उस सोते के किनारे लेटा हूं, मैं ९ साल का बच्चा हूं और कुछ घासफूस चबा रहा हूं और स्वप्निल मासूम निगाहों के साथ सामने चरने वाली सफ़ेद गायों को देख रहा हूं, ऐसी निगाहें,

जिन में शान्ति, सन्तोष और भोलापन है, दूर कुछ किसान लड़कियां खेत में काम कर रही हैं जिन में से एक लड़की नीली क़मीज़ पहने हुये है जिसमें चौड़ी धारियां हैं। उसके सिर पर एक लाल रूमाल बंधा हुआ है। सोते के क़िनारे सनूबर के पेड़ लगे हैं और पानी की सतह पर एक सफ़ेद बत्तख़ पानी को चीरती हुई तैर रही है। ठंडी हवा के झोंके मेरे चेहरे पर आ-आ कर लग रहे हैं, इनके साथ कोई धीमी ज़नानी आवाज़ भी आ रही है, आह, यह तो किसी जानवर की आवाज़ है, बड़ी सफ़ेद गाय जिस पर मटियाले धब्बे पड़े थे, मेरे क़रीब आकर बड़ी नर्मी से मुझे छूने लगी और फुंकारने लगी। मैं अपने पहलू में उसकी हरकत महसूस कर रहा था।

मैंने अपनी आंख खोल दी। यह तो मेरे ऊंट की आवाज़ थी। मैंने महसूस किया कि उसकी अगली टांगे मेरे पहलू में हरकत कर रही हैं। वह अपनी पिछली टांगों से कुछ-कुछ खड़ा होने की कोशिश कर रहा था। उसने अपनी गर्दन ऊपर उठाई और अपने नथुने फुलाने लगा, जैसे दोपहर की लू में उसे कोई मनपसन्द सुगन्ध महसूस हुई हो। उसने दुबारा फुफकारना शुरू किया, उस पर कुछ ग़ुस्से के चिन्ह उभरने लगे। उसका भारी भरकम देह ज़मीन से आधा उठा हुआ था और वह अपनी गर्दन दाहिने और बाएं हिला रहा था।

मुझे इस से पहले तजुर्बा हो गया था कि ऊंट इस अन्दाज़ में उसी समय सिर हिलाता और फुफकारता है, जब रेगिस्तान में उसे कहीं दूर से पानी की गन्ध महसूस होने लगी हो, पर यहां पानी कहां? फिर भी, बहरहाल इसकी सम्भावना हो चली थी। मैंने अपना सिर उठाया और उस ओर निगाह दौड़ाई जिस ओर ऊंट का रुख़ था। मेरी निगाह क़रीब के रेत के एक टीले पर पड़ी, वह किसी हरकत से ख़ाली दीख पड़ रहा था, पर वहीं से मुझे गीत गाने की आवाज़ आई जो किसी पुराने सितार से आ रही हो। यह एक बद्दू की

आवाज़ जान पड़ रही थी जो अपने ऊंट की चाल पर कोई संगीत छेड़े हुए था, इसी टीले के पीछे, जो फ़ासले को देखते हुये मेरे क़रीब था, पर मेरी स्थिति के अनुसार बहुत दूर था।

चूंकि मुझ में उठने की शक्ति बाक़ी नहीं रह गई थी, इसलिए मैंने चिल्लाने की कोशिश की, पर एक भद्दी से आवाज़ गले में फंस कर रह गई। अनजाने ही मेरा हाथ हिला और वह ऊंट के सामान से लटकी हुई बन्दूक पर पड़ा और अपनी अक्ल की आंख से मैंने वे पांच कारतूस देखे जो अच्छी हालत में थे।

मुझे बन्दूक़ लेने में काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। जब वह मेरे क़ब्ज़े में आ गई तो मैंने घोड़ा चढ़ाना चाहा, लेकिन ऐसा महसूस हुआ जैसे मुझे पहाड़ खिसकाना पड़ा रहा है। अन्त में किसी तरह मैं इसमें सफल हो गया और बन्दूक़ के कुन्दे को ज़मीन पर टेक घोड़ा दबा दिया। कुछ गोलियां हवा में सनसनाती हुई तैर गईं और वायुमण्डल एक पतली और हल्की आवाज़ से गूंज गया, मैंने दूसरा कारतूस भरा और गोली चला दी और उसके बाद कान लगा कर उसकी प्रतिक्रिया की बाट जोहने लगा। गाने की आवाज़ बन्द हो गई और कुछ क्षण बिल्कुल शान्ति रही। इसके बाद उसी टीले के पीछे से एक आदमी का सिर उभरा, फिर उसकी बांह निकली। उसके पहलू में एक और आदमी दीख पड़ रहा था। इन दोनों ने थोड़ी देर तक हर ओर नज़र दौड़ाई, फिर मुड़ कर अपने साथियों को पुकारने लगे जो मेरी नज़रों से ओझल थे और एक आदमी मेरी ओर बढ़ने लगा।

मुझे ऐसा लगा कि मेरे चारों ओर अच्छी भली भीड़ लगी हुई है। वे दो या तीन आदमी थे, पर इस लम्बे अकेलेपन के बाद मेरे लिए मानो भीड़ ही थी। मैं आधा अचेत था और वे मुझे उठाने की कोशिश कर रहे थे, फिर मैंने महसूस किया कि मेरे होंठों पर बर्फ़

की तरह ठंडी और आग की तरह जलाने वाली कोई चीज़ रखी जा रही है। मुझे एक दाढ़ी वाला बद्दू दिखाई दिया जो मुझ पर झुका हुआ, एक भीगा हुआ चिथड़ा मेरे मुंह में निचोड़ रहा था और अपने दूसरे हाथ में एक खुली हुई मशाक लिए था, जिसमें पानी था, अनजाने की मेरा मुंह पानी के लिए उठ गया, पर बद्दू ने नरमी के साथ मेरे सिर को पीछे की ओर हटा दिया। फिर उस चिथड़े को पानी में डुबो कर कुछ बूंदे मेरे मुंह में टपका दीं। मैं बहुत मज़बूती से अपने दांतों को दबाये हुये था ताकि किसी तरह यह जलाने वाली चीज़ मेरे मुंह में भीतर न जा सके, पर उस बद्दू ने मेरे दोनों दांतों को ज़बरदस्ती एक दूसरे से अलग करके मेरे मुंह में पानी की कुछ बूंदे टपका ही दीं। यह पानी नहीं था, बल्कि यों कहना चाहिए कि पिघला हुआ सीसा था जो ज़बरदस्ती मेरे हलक़ में उतारा जा रहा था। आख़िर मेरे साथ यह सब कुछ क्यों किया जा रहा है? मैंने इरादा किया इस अज़ाब से निजात पाने के लिए भाग खड़ा होऊं, पर इन "शैतानों" ने ज़बरदस्ती पकड़ कर मुझे फिर बिठा दिया। मेरी खाल जल रही थी और पूरा शरीर भुन रहा था। क्या वे मुझे मार डालना चाहते हैं? ओह! काश!! मुझ में ताक़त होती और मैं बन्दूक़ से अपनी रक्षा कर सकता, पर उन्होंने मुझे उठने भी नहीं दिया और पूरी ताक़त से मेरा मुंह खोलकर उसमें पानी की कुछ बूंदे टपका दीं और मुझे उसे निगलना पड़ा। पर मैं चकित हो उठा कि अब ये बंदे मेरे हलक़ को नहीं जला रही थीं जैसा कि मैंने कुछ क्षण पहले महसूस किया था। मैं भीगे हुये चीथड़े से बहुत आराम महसूस कर रहा था जो मेरे माथे पर रखा था। मेरे देहे में एक सिहरन-सी हुई। उन्होंने मेरे ऊपर पानी उंडेल दिया और मेरे कपड़े भीग गये।

मैं एक गहरे अथाह अन्धेरे में डूब गया और मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मैं गहरे और अन्धे कुएं में गिर रहा हूं, अति अन्धेरे और गहरे कुएं में।

गहरा अन्धेरा —एक बिना शोर व हंगामे का और नरम व कोमल अन्धेरा, एक पवित्र और दयालु अंधेरा मुझे अपनी गोद में लिए हुये था और नरम-गरम रज़ाई में मुझे छिपाये हुये था। मेरा दिल चाहा कि मैं सदा इस हालत में रहूं, थका हुआ, अर्द्ध स्वप्निल, शान्त!!! सच तो यह है कि मुझे इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी कि मैं ख़ामख़ा अपनी आंखें खोलूं या अपनी बांहों को हरकत दूं, पर इसके बावजूद मैंने अपनी आंखें खोलीं और अपनी बांहों को हरकत दी, फिर भी मुझे अलावा अंधियारी के और कुछ न दीख पड़ा— उस बद्दू के काले तम्बू की अंधियारी जिस में एक जगह इतना छेद था कि उससे आसमान का थोड़ा भाग सितारों से जुड़ा हुआ दीख पड़ रहा था और साथ ही रेगिस्तानी टीलों की एक पेचदार पगडंडी भी।

इसी जंगले या सूराख़ से मुझे एक आदमी का चेहरा दीख पड़ा और उसके साथ ही मेरे कान में ज़ैद की आवाज़ आई जो चिल्ला कर कह रहे थे "ये होश में आ गये" मैंने महसूस किया उनका चेहरा मेरे चेहरे के क़रीब हो रहा है और उनका हाथ मेरी बांहों पर रखा हुआ है। इसी क्षण एक दूसरा व्यक्ति घर में दाख़िल हुआ मैं उसे अच्छी तरह पहचान न सका, पर थोड़ी ही देर में जब वह अपनी धीमी, पर गम्भीर आवाज़ में बात करने लगा तो मैं समझ गया कि वह शिम्र क़बीले का कोई बद्दू है।

मैंने फिर प्यास महसूस की और अपने दोनों हाथों से दूध का प्याला पकड़ लिया जो ज़ैद ने मेरे क़रीब कर दिया था। अब चूंकि मेरे हलक़ में कोई पीणा न थी, इसलिए मैं उसे एक ही बार में पी गया। इसी बीच ज़ैद मुझे पूरी कहानी सुनाते रहे कि जब आंधी ख़त्म हुई तो किसी तरह उनकी इन बद्दुओं से भेंट हो गई जो उधर से गुज़र रहे थे और यह कि जब खोया हुआ ऊंट अकेला उस रात को वापस आ गया तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। इस तरह वे सब

मिलकर खोजने निकले, फिर किस तरह तीन दिन की लगातार खोज के बाद जब वे निराश हो चुके थे, उन्होंने टीले के पीछे गोली चलने की आवाज़ सुनी और फिर मेरे पास पहुंच गये।

थोड़ी देर बाद जै़द सहारा देकर मुझे घर से बाहर लाये और ज़मीन पर ऊनी चादर बिछा दी गई और मैं तारों की छाया में उस पर लेट गया।

मोमिन की नमाज़

"इशा का वक़्त आ गया है।"

मेरे साथी ने अंधेरे आसमान की ओर घूरते हुये कहा। हम एक लाइन बनाकर दिन की आख़िरी नमाज़ पढ़ने खड़े हो गये। ज़ैद और मन्सूर एक साथ पीछे खड़े थे और मैं उनका इमाम था। मैंने अपने हाथ उठाये और 'अल्लाहु अक्बर' (अल्लाह सबसे बड़ा है) कहते हुये नमाज़ शुरू की।

यहां बहुत कम चीज़ें ऐसी हैं जो लोगों को अल्लाह से उतना क़रीब करती हों जितनी कि नमाज़। मेरे विचार से यह बात हर धर्म में पाई जाती है, पर इस्लाम में यह चीज़ सबसे ज़्यादा उभरी हुई है। उसका कहना है कि मनुष्य और उसके पैदा **करने वाले** के बीच में किसी माध्यम का होना आवश्यक नहीं है, या अधिक उचित शब्दों में सम्भाव भी नहीं है।

पुरोहितों और पादरियों के न होने के कारण हर मुसलमान यह अनुभव करता है कि वह केवल हाज़िर ही नहीं है, बल्कि इस आम इबादत नमाज़ में बराबर का साझीदार भी है। चूंकि इस्लाम में "पवित्र रहस्य" सरीखी कोई बात नहीं है, इसलिए हर बालिग़ मुसलमान मर्द या औरत हर धार्मिक कार्य को (वह जैसा भी हो) पूरा कर सकता है, भले ही नमाज़ का इमाम बनाना हो, या निकाह पढ़वाना या कफ़न-दफ़न की समस्या। इन कामों के लिए कोई भी व्यक्ति नियमित ठेकेदार नहीं है। धार्मिक गुरुओं और इस्लामी समाज के नेताओं की हैसियत बस इतनी है कि वे अपने ज्ञान और विचारों की व्यापकता के कारण प्रसिद्ध हो जाते हैं। (कभी सही तौर पर और कभी ग़लत तौर पर भी)

नबी की पुकार

हरम के भीतर वर्गाकार आंगन की कंकरीट पर क़ालीन की जानमाज़ें बिछी हुई थीं। इन पर बहुत से लोग बैठे थे। कुछ लोग आपस में बातें कर रहे थे। और कुछ मौन धारण किये मग़रिब की नमाज़ के इन्तिज़ार में थे।

मस्जिद के कोने से क़ुरआन के पढ़ने (तिलावत) की आवाज़ मेरे कानों में आ रही थी। (मग़रिब की नमाज़ से पहले वहां क़ुरआन पढ़ने की रस्म है) शायद पढ़ने वाला २९ वीं सूरः का पाठ कर रहा था, सूरः जो सबसे पहले नबी (सल्ल०) पर उतरीः–

"पढ़ो, अपने पालनहार के नाम से जिसने पैदा किया।"

इन्हीं आयतों द्वारा अल्लाह ने पहली बार मुहम्मद (सल्ल०) को हिरा की गुफा में अपना सन्देश भेजा था।

आप एकान्त में, एक अल्लाह के ध्यान में मग्न थे, जैसा कि इससे पहले भी कई बार कर चुके थे और सत्य की खोज में लगे हुये थे कि सहसा एक फ़रिश्ता आपके सामने आकर खड़ा हो गया और कहा, "पढ़ो'–

चूंकि आप अपने समाज के और लोगों की तरह पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, इसलिए उत्तर दिया "मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं।"

ऐसा सुनकर फ़रिश्ते ने आपको इतनी ज़ोर से भींचा कि आपकी पूरी शक्ति क्षीण-सी हो गई। फिर आपको छोड़ दिया और कहा, "पढ़ो।" आपने फिर यही उत्तर दिया कि 'मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं।'

फिर फ़रिश्ते ने पकड़ कर इतनी ज़ोर से भींचा कि पूरा शरीर आटे की तरह ढीला हो गया, महसूस हुआ मानो अब ख़त्म हो

जायेंगे। फिर फ़रिश्ते की कड़कती आवाज़ गूंजी, "पढ़ो" जब आपने तीसरी बार यही उत्तर दिया और पीणा से तड़पने लगे तो फ़रिश्ते ने आपको छोड़कर कहा "पढ़ो, अपने पालनहार के नाम से जिसने पैदा किया।"

इस प्रकार मुनष्य की चेतना, ज्ञान और विवेक की ओर संकेत करते हुये कुरआन उतरना शुरू हुआ और २३ वर्ष तक इसका सिलसिला बराबर जारी रहा, यहां तक कि मदीने में नबी की ६३ वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का वह्य से यह पहला ताल्लुक़ हमें हज़रत याक़ूब और फ़रिश्ते का वह मुक़ाबला याद दिला देता है कि जिसका उल्लेख तौरात में मिलता है अन्तर इतना है कि याक़ूब ने मुक़ाबला किया था और मुहम्मद (सल्ल०) ने कष्ट व पीणा सहन करने के बावजूद अपने आपको फ़रिश्ते के आगे डाल दिया, यहां तक कि आप बिल्कुल थक गये और इतनी भी शक्ति बाक़ी न रही कि आप उस आवाज़ को सुन सकें। आपको नहीं मालूम था कि आज से ख़ाली भी रहना है और भरा हुआ भी— एक मानव-अस्तित्व, मानव-भावनाओं, प्रवृत्तियों और अपने विशेष जीवन की चेतना से भरा हुआ— और ठीक उसी समय सन्देश प्राप्त करने का एक आज्ञापालक माध्यम भी —आदिकालिक तथ्य की अदृश्य पुस्तक आपके सामने इस इन्तिज़ार से खुली हुई थी कि आप उसे समझें। फिर आपसे कहा जा रहा था कि संसार के सामने उसे पढ़ें ताकि दूसरे भी उसे समझ सकें, और जो नहीं जानते या जो स्वतः जानने की शक्ति नहीं रखते, वे उसको जान लें।

इस घटना में जो अर्थ निहित थे, उसे देखकर मुहम्मद (सल्ल०) पर भय और डर छा गया, जैसा कि मूसा को जलता हुआ वन देखकर हुआ था, इस बात का डर कि आप नबूवत के इस उच्च

पद के योग्य नहीं हैं। आप ऐसा सोचकर कांप गये कि शायद अल्लाह ने आप ही को इस काम के लिए चुन रखा है। इतिहास से जान पड़ता है कि आप अपने घर वासप आये और अपनी बीवी हज़रत ख़दीजा को पुकार कर कहने लगे, "मुझे चादर उढ़ा दो, मुझे चादर उढ़ा दो" इसलिए कि आप वेद की तरह कांप रहे थे। ख़दीजा ने आपको चादर उढ़ा दी। जब धीरे-धीरे डर व भय कम हुआ, आपने उन्हें पूरी घटना सुनाई और कहा मुझे अपनी जान पर ख़तरा है। पर ख़दीजा ने अपने शान्त स्वभाव और शुद्ध मन से यह समझा लिया कि आप वास्तव में उस महान उत्तरादायित्व से भय खा रहे हैं, जो आपकी बाट जोह रहा है। ऐसा उन्होंने प्रेमवश ही समझा था। उन्होंने यह सुनकर कहा, "नहीं; अल्लाह की क़सम! अल्लाह आप पर ऐसा बोझ कभी न डालेगा जिसे आप सहार न सकें और अल्लाह की क़सम! अल्लाह आपको कभी अपमानित न करेगा, आप नातेदारों को जोड़े रखते हैं, सच बोलते हैं, बोझा उठाते हैं, कमज़ोरों की मदद करते हैं।"

फिर आपका धीरज बंधाने के लिए अपने चचेरे भाई वर्क़ा के पास गईं। वे एक सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे और कुछ साल पहले ईसाई हो गये थे। जैसा कि इतिहास बताता है वे इब्रानी में तौरात भी पढ़ सकते थे। उस समय उनकी आंखों की रोशनी ख़त्म हो चुकी थी, और अच्छे भले बूढ़े हो गये थे।

हज़रत ख़दीजा ने कहा, "हे चचेरे भाई! अपने भतीजे की बात सुनिये।" जब मुहम्मद (सल्ल०) अपनी घटना सुना चुके तो वर्क़ा ने साश्चर्य अपना हाथ उठाया और कहा, "यही वह मर्यादा थी जिसे अल्लाह ने हज़रत मूसा पर उतारी थी। काश! मैं उस वक़्त तक ज़िन्दा रहता जब तुम्हारी जाति वाले तुम्हें निकालेंगे।'

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने साश्चर्य उनसे पूछा, 'क्या वे मुझे निकाल देंगे?'

वर्क़ा ने उत्तर दिया, "हां, जो भी यह सन्देश लेकर इस संसार में आया, उसके सब सदा शत्रु हो गये हैं।"

तेरह साल तक लोगों ने उनके साथ शत्रुता का व्यवहार किया, यहां तक कि अन्त में उन्हें मदीने को हिजरत करनी पड़ी, इसलिए कि मक्के के लोग सदा से ही वज्र हृदय रहे हैं।

X X X X

किन्तु क्या हमारे लिए इस क्रूरता का अन्दाज़ा करना कठिन है जिसका प्रदर्शन मक्के वालों ने मुहम्मद (सल्ल०) की पहली पुकार के बाद किया था?

वे हर आध्यात्मिक भावना एवं प्रेरणा से ख़ाली थे और केवल भौतिक प्रयत्नों को जानते थे। उनकी समझ में यह न आता था कि प्रत्यक्ष समृद्धि प्राप्त करने वाले साधनों को बढ़ाये बिना ही जीवन-मर्यादाओं को कैसे उच्च किया जा सकता है। ऐसा तो वे सोच भी न सकते थे कि अपने को बिल्कुल ही एक नैतिक आध्यात्मिक समस्या के सुपुर्द कर दें। इस्लाम का शाब्दिक अर्थ भी "अल्लाह के सामने मनोकामनाओं को बिल्कुल सुपुर्द कर देना" है। इससे बढ़कर यह कि मुहम्मद (सल्ल०) की शिक्षाओं ने सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था और क़बीलों के चलन को ख़तरे में डाल दिया था, जिनसे मक्का वालों का गहरा लगाव था।

जब आपने अपना संदेश पहुंचाना शुरू किया और एक अल्लाह के विश्वास का एलान कर दिया यहां तक कि साफ़-साफ़ कहा गया कि मूर्ति-पूजा महा पाप है तो इसे उन लोगों ने अपने धार्मिक विश्वासों पर हमला ही नहीं बल्कि पूरी सामाजिक व्यवस्था का नाश समझा। इसीलिए उन्होंने इस्लाम के हस्तक्षेप को, मुख्य रूप से सांसारिक मामलों में पसन्द नहीं किया, जैसे आर्थिक मामले, सामूहिक न्याय की समस्यायें और सामूहिक रूप से लोगों का आम

रवैया इत्यादि, इसलिए कि यह हस्तक्षेप उनके व्यापारिक मामलों और उनके क़बीलों के स्वार्थ के ख़िलाफ़ पड़ता था, धर्म उनकी दृष्टि में एक व्यक्तिगत समस्या थी, पद्धति और रीतियों की समस्या नहीं, केवल रुझानों की समस्या।

पर यह बात नबी के विचारों के बिल्कुल विपरीत थी, इसलिए कि आपका दृष्टिकोण यह था कि तमाम सामाजिक संस्थायें और प्रयत्न, आचार-विचार, धर्म-क्षेत्र में दाख़िल हैं। अगर कोई आपसे कहता कि धर्म केवल व्यक्तिगत समस्या है, सामाजिक व्यवहार की चीज़ नहीं, तो आप अवश्य चकित रह जाते। आपके सन्देश की इस आश्चर्यजनक विशेषता ने मक्का के मूर्ति-पूजकों को उन से घिन खाने पर उतारू कर दिया था। अगर वे सामाजिक मामलों में हाथ न डालते तो हो सकता था उनका रोष, झुंझलाहट और दूरी इतनी न होती जितनी अब थी। इसमें सन्देह नहीं कि इस्लाम ने उनके धार्मिक विश्वासों का विरोध करके उनका सोना दूभर कर दिया था, पर अगर यह नबी भी ईसाइयों की तरह ईमान, निजात की दुआ और आपस के निजी मामलों में अच्छे व्यवहार तक सीमित कर देते तो वे लोग थोड़े बहुत रोष, झुंझलाहट और विरोध के बाद इसे सह लेते, पर अरबी नबी ने ईसाइयों का अनुकरण नहीं किया[१] और धर्म को केवल ईमान, रस्म व रिवाज और व्यकितगत चरित्र की सीमाओं में बांध नहीं दिया और वे ऐसा कर भी कैसे सकते थे? क्या उनके पालनहार ने यह दुआ नहीं सिखाई थी? — 'हे मेरे पालनहार! हमें इस लोक में भी भलाई दे और परलोक में भी।'

---

१. हमारे विचार में कोई भी दैवी धर्म अपने को व्यक्तिगत व चारित्रिक क्षेत्र की हद तक सीमित नहीं करता। स्वयं ईसाई धर्म को भी वास्तव में चर्च वालों की धार्मिक सूझ-बूझ, राजनीतिक मसलहतों और फिर भौतिकता के विकास व चर्च व राज्य के संघर्ष ने इस मंज़िल पर पहुंचा दिया है कि अब वह एक घरेलू व व्यक्तिगत समस्या बनकर रह गया है।

इस आयत में कुरआन ने लोक की भलाई को परलोक की भलाई पर प्रधानता दी है, एक तो इसलिए कि वर्तमान को भविष्य पर प्रधानता है, दूसरे यह कि मनुष्य की रचना और बनावट कुछ ऐसी हुई है कि आत्मा की आवाज़ पर दौड़ पड़ने और परलोक की भलाई और सफलता पा लेने से पहले उसे अपने शारीरिक तक़ाज़ों और सांसारिक ज़रूरतों को पूरा करना पड़ता है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के सन्देश ने आत्मा को शरीर से अलग पर शरीर के विरुद्ध नहीं बताया, बल्कि आप का पूरा ज़ोर इस बात पर है कि आत्मा और शरीर तस्वीर के दो रुख़ हैं, जिसके योग को हम मानव-जीवन के नाम से याद कर सकते हैं, इसलिए इस्लाम प्राकृतिक रूप से मात्र व्यक्ति के व्यक्तिगत रुझानों के फलने-फूलने की ज़िम्मेदारी नहीं ले सकता, बल्कि उसे इस रुझान से एक ऐसी निर्धारित सामाजिक व्यवस्था के लागू करने का काम भी हाथ में लेना पड़ता है, जिसमें हर व्यक्ति के लिये आख़िरी हदों तक शारीरिक व भौतिक हित की गारंटी हो और साथ ही आध्यात्मिक विकास का पूरा मौक़ा जुटा दिया जाये।

शुरू ही में आपने लोगों से कह दिया कि अमल ईमान का हिस्सा है, इसलिए कि अल्लाह को सिर्फ़ इतने से दिलचस्पी नहीं है कि मनुष्य क्या विश्वास रखता है बल्कि वह यह भी देखना चाहता है कि उसके अमल कैसे हैं, मुख्य रूप से वे अमल, जिनका प्रभाव दूसरों पर पड़ सकता है।

आपने पीड़ितों को अत्याचारियों के ख़िलाफ़ खुशख़बरी दी और यह नियम दिया कि मर्द और औरत अल्लाह के नज़दीक बराबर हैं और तमाम ही धार्मिक कर्तव्य मर्दों और औरतों के लिए समान हैं और सच तो यह है कि उन्होंने इससे भी आगे बढ़कर एक ऐसा एलान किया जिससे मक्का के मूर्ति-पूजकों के मन हिरास व

भय में पड़ गये। वह एलान यह था कि "औरत को पूरे अधिकार प्राप्त हैं और उसे मिल्कियत, व्यापार और पति के चुनने का पूरा अधिकार प्राप्त है।"

आपने जुये की तमाम क़िस्मों और हर प्रकार की नशीली चीज़ों को हराम ठहरा दिया, इससे बढ़कर यह कि आपने एक मनुष्य का किसी दूसरे मनुष्य का अनुचित रूप से शोषण करना बहुत बड़ा अपराध बताया। आपने ब्याज, (भले ही उसकी दर कोई हो) जमाखोरी, सट्टा, ब्लैक मेलिंग और क़बीलागत छाप या दृष्टिकोण के अनुसार ग़लत या सही हुक्म का लगाना (जिसे आज हम (Nationalism कहते हैं) आदि तमाम चीज़ों को ख़त्म कर दिया और नस्ल, वर्ग या क़बीले के पैमानों और भावनाओं को हर नैतिक वैद्यता से महरूम कर दिया।

सच तो यह है कि नबी ने तमाम सामाजिक दृष्टिकोणों व सिद्धान्तों को पूरी तरह छान-फटक कर रख दिया– वे सिद्धान्त जो बिल्कल अटल और अपरिवर्तनीय समझे जाते थे और जिस तरह आज राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप अप्रिय बात समझी जाती है, वैसे ही इन सिद्धान्तों से द्रोह भी अप्रिय बात समझी जाती थी।

मक्का के मूर्ति-पूजक (हर ज़माने के लोगों की तरह) इस बात पर सन्तुष्ट थे कि उनके रीति-रिवाज, सामूहिक मामले और सोचने के ढंग इन सब से बेहतर कोई बात सोचना भी कठिन है, इसलिए उनका राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप को बुरा समझना अनिवार्य था। उन्होंने इसे द्रोहपूर्ण बिगाड़ समझा जो सभ्यता, रख-रखाव और समाज के आचार के विरुद्ध था, पर यह चीज़ जब उनके सामने खुलकर आ गई कि इस्लाम स्वप्न देखने वाला धर्म नहीं है, बल्कि वह जानता है कि किस प्रकार मनुष्यों में अमल की रूह फूंकी जाये, तो प्राचीन व्यवस्था के तमाम हिमायती सख़्ती पर उतर आये और

आप पर,आपके साथियों और अनुयायियों पर भांति-भांति के अत्याचार करने लगे।

तमाम नबियों ने अपने अपने ढंग पर चालू व्यवस्थाओं को चुनौती दी थी। इसलिए इस बात पर कोई आश्चर्य न होना चाहिए कि वे सभी अपनी अपनी जातियों के अत्याचार के शिकार हुये और आख़िरी नबी का नाम तो आज तक यूरोप में बड़े अपमान के साथ लिया जाता है।

नबी का नगर

अस्र का वक़्त था। मैं मदीना मुनव्वरा के बाहर एक दोस्त के खजूर के बाग़ में जो क़ुबा के पास है, बैठा हुआ था। खजूर के घने पेड़ों के भीतर से डूबते हुये सूर्य की रोशनी छन-छन कर आ रही थी। पेड़ अभी छोटे थे और सूर्य की रोशनी उसके तनों और खजूर के गोदों पर पड़ रही थी और उसके पत्ते रेतीली आंधियों के कारण जो हर साल इस मौसम में लगभग हर दिन चलती हैं, धूल से भर गये थे, बस खजूर के नीचे का हिस्सा हरा था और उस पर धूल का असर न था। मुझ से कुछ दूरी पर नगर की उजली-उजली दीवारें दीख पड़ रही थीं, लाल पत्थर और गारे की बनी हुई, इधर-उधर के गुम्बद और मनारे भी साफ़ दिखाई पड़ रहे थे। दीवारों के पीछे मदीने के भीतर एक दूसरा खजूर का बाग़ था और कीलें ठुकी हुई खिड़कियों वाले पुराने मकान थे जिसमें कुछ मदीना की दीवारों से मिले हुये थे। दूर से मस्जिदुन्नबी के ५ मनारे दीख पड़ रहे थे— ऊंचे और मनभावक। इसके बाद बड़ा क़ुब्बा ख़ज़रा था, जिसने नबी के घर को (जो उनके जीवन में उनका घर और उनकी मृत्यु के बाद उनकी समाधि बन गई) छिपा दिया था। इससे दूर मदीना के पीछे उहद की पहाड़ियों का एक सिलसिला था।

आकाश सांझ के तेज़ उजाले से रंगीन हो उठा था और नगर एक नीले, हरे और सुनहरे रंग के मिले-जुले रंग में नहाया हुआ था।

हवा बोझल बादलों के साथ अठखेलियां कर रही थी— बादल अरब प्रायद्वीप में लोगों को बहुत धोखे में रखते हैं। उन्हें देखकर आप यह कभी नहीं कह सकते कि आकाश पर बादल छाये हुये हैं और जल्द वर्षा होने वाली है, इसलिए कि लाख बादल छाए हुये हों और पानी से लदे हों, तेज़ हवाओं के झोंके रेगिस्तानों से सहसा आते और तमाम बादलों को उड़ा ले जाते। लोग अपने चेहरों को चुपके से छिपा लेते और कहने लगते:—

"ला हौला व ला कुव्वता इल्ला बिल्लाह"

और आकाश दुवारा नीली रोशनी से चमकने और तपने लगता।

थोड़ी देर बाद मैंने अपने दोस्त को विदा दिया और मदीना के बाहरी फाटक की ओर चल पड़ा। मेरे पास से एक आदमी जो दो गधों पर जानवरों का दाना लादे हुये जा रहा था और खुद तीसरे गधे पर सवार था, उसने अपनी छड़ी उठाकर मुझे सलाम किया, "अस्सलामु अलैकुम"

मैंने उसी तरह उसे जवाब दिया। फिर काला कपड़ा पहने हुये एक छोटी सी बद्दू बच्ची दीख पड़ी। उसकी आंखें इतनी काली थीं कि उसकी आंख की पुतली और सफ़ेदी में पहचान करना कठिन था। वह हिरनियों की तरह चल रही थी।

मैं मदीने में दाखिल हुआ और मुनाखा के खुले हुये बड़े मैदान को पार करके मदीने की भीतरी दीवार में चला गया और मिस्री गेट के पीछे से, जिसके ऊंचे मेहराब में सर्राफ़े अपने चांदी-सोने के सिक्कों से खेल रहे थे, मुख्य बाज़ार में आ गया। यहां सड़क की चौड़ाई १२ फिट से कम थीं और दुकानें हर ओर लगी हुई थीं। फेरी वाले गा-गा कर अपने सामान की प्रशंसा कर रहे थे, रंग-बिरंगे मफ़लर, काश्मीर की सुन्दर शालें और चादरें राहगीरों को अपनी

ओर खींच रही थीं, सुनार पालथी मारे शो केश के सामने बैठे थे, जिसमें बद्दुओं के गहने थे, कंगन, पाज़ेब, बुन्दे और हार आदि, इत्र बेचने वाले हिना की शीशियां बेच रहे थे, सुर्मा से भरी हुई छोटी-छोटी थैलियां और विभिन्न रंगों की शीशियां, इत्र और तेल आदि की, तरह-तरह के मेवों और फूलों के ढेर, नज्द के व्यापारी बद्दुओं के पहनावे, ऊंट के जीन और बड़ी-बड़ी झालरों वाले नीले और लाल लबादे बेच रहे थे, एक दल्लाल ऊंट पर सवार चीखता हुआ गुज़रा, उसके हाथों में अजमी जा-नमाज़ थी और ऊंट के बाल की एक इबा उसके कांधे पर पड़ी थी और उसके बग़ल में तांबे का समाउर दिया हुआ था।

हज को ख़त्म हुये थोड़ा ही समय बीता था, इसलिए सिगाल, कर्गेज के बीच में स्थित देश, हिन्द के पूर्वी द्वीप और एटलांटिक महासागर, अस्त्ररा खां, और जंजीबार के मध्यवर्ती क्षेत्रों के लोग वहां मौजूद थे, पर सड़क की तंगी और मनुष्यों के इस विचित्र मिलन के बावजूद किसी को कोई जल्दी न थी, लड़ाई और टकराव न था, इसलिए कि मदीना मुनव्वरा में समय लोगों को हांकता-भगाता नहीं है।

पर सबसे विचित्र बात यह है कि मानव-स्वभाव और आदत के इस प्रबल विरोधाभास के बावजूद जो मदीना की सड़कों पर पूरी तरह दीख पड़ रहा था, वहां कोई ऐसी बात नज़र नहीं आती थी जिससे किसी असंयुक्त भीड़ का अन्दाज़ा होता। बहुत जल्द उनका एक मिश्रित स्वभाव बन गया था और इसके नतीजे में एक मिश्रत जीवन, मिश्रित दृष्टिकोण और मिश्रित विचारधारा ने जन्म ले लिया था, इसलिए कि नबी के व्यक्तित्व ने उन सबको अपने में लीन कर लिया था, जिनका यह नगर था और जिस नगर के आप उस समय मेहमान थे।

तेरह सौ साल बीत जाने के बाद भी आपका आध्यात्मिक

अस्तित्व वैसे ही ज़िन्दा है जैसे उस समय था। आपकी वजह से गांवों का वह योग जिसका नाम यसरिब था, मुसलमानों का प्रिय नगर बन गया है— इतना प्रिय कि संसार का कोई नगर इतना प्रिय नहीं है। इसका कोई ख़ास नाम भी नहीं। तेरह सौ वर्ष से आज तक इसको मदीनतुन्नबी (नबी का नगर) कहते चले आ रहे हैं। इस लम्बी मुद्दत में न जाने मुहब्बत के कितने तूफ़ान इस तरह यहां आ-आ कर मिले थे कि एक-एक गति-विधि ने एक परिवार और घराने के माहौल जैसा रूप अपना लिया था और तमाम ऊपरी विरोधी बातें एक संयुक्त गीत में गुम होकर रह गई थीं।

यह उस प्रसन्नता और सौभाग्य की बात है, जिसका यहां हर व्यक्ति को एहसास रहता है— एक विशेष प्रकार की एकरूपता व समानता। यद्यपि मदीने का आज का जीवन नबी के नक़्शे से 'ऊपरी सा ताल्लुक़' रखने लगा है और यद्यपि इस्लाम का आध्यात्मिक चिन्तन और भागों की तरह यहां भी सुस्त और कमज़ोर पड़ चुका है, फिर भी अपने शानदार बीते हुये समय से भावनात्मक लगाव, जिसका चित्रांकन किसी के वश में नहीं, आज भी ज़िन्दा है। कोई नगर ऐसा नहीं है, जिससे लोगों ने किसी व्यक्ति विशेष के कारण इतना प्रेम किया हो, जितना कि मदीना, न संसार में कोई ऐसा व्यक्ति गुज़रा है जिसने अपने मरने पर तेरह सौ साल बीत जाने के बावजूद इतने मनुष्यों के दिलों में जगह बनाई हो, अलावा उस व्यक्ति के जो इस महान हरे गुम्बद के नीचे आराम कर रहा है।

पर इसके बावजूद आपने एक दिन के लिए भी अपने को महामानव नहीं समझा और न मुसलमानों ने कभी आपकी ओर ऐसी बातों को चेपा, जिस तरह बहुत से नबियों के अनुयायियों ने अपने नबी के साथ किया था, बल्कि क़ुरआन स्वयं ऐसे कथनों से भरा

हुआ है, जिनमें नबी का मनुष्य होना सिद्ध किया गया है। आपके साथ रहने वालों ने आपसे इतना जो प्रेम किया तो इस कारण कि आप एक श्रेष्ठ मनुष्य थे और दूसरे लोगों की तरह ही जीवन बिताते थे और जीवन के दुख-दर्द और सुख-आराम दोनों से आपका नाता पड़ता था।

आपकी मृत्यु के बाद भी यह प्रेम वैसे ही बाक़ी रहा और आज तक आपके मानने वालों के दिलों में ज़िन्दा है, एक ऐसें गीत या तरांने की तरह जिसके अनेकों स्वर और कहने के ढंग हों। आप मदीना में आज भी ज़िन्दा हैं, उसका एक-एक पत्थर इसकी गवाही देता है। कोई भी इसे छूकर मालूम कर सकता है पर शब्दों में उसे अदा नहीं कर सकता।

पाश्चात्य सभ्यता की रूप-रेखा

मग़रिब की नमाज़ के बाद मैं शैख़ इब्न बलीहद की सभा में (जो नज्द के प्रसिद्ध ज्ञानी व विद्वान थे) बैठा हुआ अपने विचारों में डूबा हुआ था और यह सोच रहा था कि क्या वास्तव में यूरोप के मनुष्य ने अपने आपको दज्जाल की पूजा के लिए वक़्फ़ कर दिया है। बहुत दिन हुये वह अपनी पवित्रता खो चुका है और इस सृष्टि या प्रकृति के साथ उसका कोई आन्तरिक या भीतरी ताल्लुक़ बाक़ी नहीं रह गया है, जीवन उसकी नज़र में एक मुअम्मा या एक पहेली बन गया है। उसके मन में सन्देह या शंका की आंधियां उठती रहती हैं, इसलिए वह अपने भाई से भी जुदा होकर एकान्त में जा बैठा है, पर एकान्त की पीणा से बचने के लिए उसे वाह्य साधनों द्वारा जीवन पर क़ब्जा करने की ज़रूरत पड़ रही है। यह बात कि वह ज़िन्दा है, उसे भीतरी सन्तोष और हार्दिक शान्ति देने के लिए काफ़ी नहीं। इसलिए उसे (कष्टों के बावजूद) हर क्षण इस सन्तोष व शान्ति के पीछे दौड़ते रहना और हाथ-पांव मारना पड़ता है। और चूंकि वह हर धार्मिक शिक्षा व आदेश से महरूम है और वह

उदासीनता का फ़ैसला कर चुका है, इसलिए उसे यह कमी पूरी करने के लिए मेकनिकल (Mechanical) सहायकों का सहारा लेना पड़ता है और इसलिए नये यन्त्रों को पाने के लिये उसकी पागलपन से भरी हुई कोशिश जारी रहती है।

वह हर दिन नये-नये यंत्र और मशीन ईजाद करता है और इस ईजाद की ओर पूरे मन से आकृष्ट हो जाता है ताकि, वह इसके वजूद के लिए सहायक बन सके और सच तो यह है कि यह ईजाद उसके लिए किसी न किसी रूप में यह सेवा भी करती है, पर उसके साथ वह हर दिन इसके लिए नये-नये संकट और कठिनाइयां भी पैदा करती रहती हैं, इसमें नये और अधिक कृत्रिम सहायक की प्यास भी पैदा करती रहती है और इस तरीके से उसकी आत्मा मशीनों और यंत्रों के शोर में नष्ट होती रहती है, यहां तक कि मशीन और यंत्र दिन ब दिन अधिक शक्तिशाली, अधिक पेचदार और अधिक आश्चर्यजनक होती जाती है। नतीजा यह है कि मशीन और यंत्र का मूल उद्देश्य (मानव-जीवन की सुरक्षा) नष्ट हो जाता है और वह स्वतः 'उपास्य' बन जाता है। कैसा है यह लोहे का ख़ूनी व डरावना ज़ीव।

उसके पादरियों को यह ख़बर नहीं कि कला और उद्योग-धन्धों में प्रगति की यह रफ़्तार स्वीकारात्मक पहलू के विकास का फल नहीं, बल्कि आध्यात्मिक निराशा का नतीजा है। यह महान भौतिक विजय, जिसकी रोशनी में यूरोप का मनुष्य बार-बार यह एलान कर रहा है कि वह जल्द ही प्रकृति पर छा जाने वाला है, स्वयं अपने भीतर रक्षात्मक रूप रखती है। उसके शानदार प्रत्यक्ष के पीछे एक अनदेखी शक्ति का भय छिपा हुआ है।

पाश्चात्य सभ्यता मनुष्य की सामूहिक व शारीरिक ज़रूरतों और आध्यात्मिक कामनाओं के बीच कोई सन्तुलन नहीं पैदा कर

सकी। उसने अपनी पिछली धार्मिक पूंजी को त्याग तो दिया ही पर उसकी जगह पर किसी दूसरी नैतिक व्यवस्था का प्रबन्ध न कर सकी जो सिद्धान्त के रूप में ही सही बुद्धि के आधीन होती और सांस्कृतिक क्षेत्र में आगे बढ़ते रहने के बावजूद मनुष्य अभी तक युद्ध घोष करने और शत्रु के नारे में फंस जाने की मूर्खतापूर्ण हरकतों पर कन्ट्रोल नहीं कर सका, भले ही यह नारा बोदा और मूर्खता से भरा हुआ हो, और लड़ाकुओं ने अपना मतलब पूरा करने के लिए इसे इस्तेमाल किया हो।

फिर भी इसके बावजूद पश्चिमी जातियां दिन ब दिन उन शक्तियों को वश में करने में अपनी विफलता व विवशता दिखाती रहती हैं जिन्हें गणितज्ञों ने खोज निकाला था। पश्चिमी जातियां इस समय एक ऐसी मंज़िल में पहुंच गई हैं, जिस में असीम वैज्ञानिक सम्भावनाओं के साथ वैज्ञानिक अनेकत्व भी साथ में लगा हुआ है और चूंकि एक पश्चिमी व्यक्ति हर सही और सच्ची शिक्षा का मुहताज है, इसलिए वह उस ज्ञान की रोशनी से लाभ नहीं उठा पाता जो उसके शास्त्र उस पर उंडेल रहे हैं। इस पर कुरआन की यह आयत चरितार्थ होती है:—

"उनका उदाहरण ऐसा है जैसे किसी ने आग रोशन की। जब उसके चारों ओर सब रोशन हो गया तो अल्लाह उस रोशनी को ले गया और उनको अंधेरे में छोड़ दिया जहां उन्हें कुछ सुझाई नहीं देता। बहरे हैं, गूंगे हैं, अंधे हैं, वापस नहीं आ सकते।"

इसके बावजूद यूरोप के लोग अपने अन्धेपन के दम्भ में, इस पर सन्तुष्ट हैं कि उन्हीं की सभ्यता संसार को रोशनी और खुशी दे सकेगी। १८ वीं शताब्दी और १९ वीं शताब्दी में उन्होंने ईसाई धर्म को चालू करने के बारे में सोचा था, पर बीसवीं शताब्दी में, जबकि उनका पूरा धार्मिक उत्साह ठंडा पड़ चुका हैं, वे धर्म को

व्यवहारिक जीवन पर प्रभाव डालने का कोई अधिकार देने को तैयार नहीं, इसकी जगह अब वे पाश्चात्य जीवन-पद्धति का भौतिक सन्देश दूर-दूर तक फैला रहे हैं, जिसका विश्वास यह है कि तमाम मानव-समस्यायें, कारख़ानों, प्रयोगशालाओं और आंकड़े इकट्ठा करने वाले आफ़िसों में हल हो सकती हैं।

और इस तरह मानो दज्जाल का शासन स्थापित हो चुका है।

लड़ाई के मैदान में

(यह घटना इसलिए लिखी जा रही है कि इससे लेखक का धैर्य, साहस और उसकी ईमानी शक्ति का पता चलता है।)

मस्जिदे नबुवी से निकलते समय मुझे ऐसा जान पड़ा मानो कोई व्यक्ति मेरे हाथ को छू रहा है। मैं पीछे मुड़ा तो देखा कि श्रद्धेय श्री मुहम्मद ज़वी सन्नूसी हैं।

"लम्बी मुद्दत की इस जुदाई के बाद इस समय आपको देख कर अपार हर्ष हो रहा है। अल्लाह मदीने में आपके इस आगमन और यात्रा को स्वीकार करे।" श्री मुहम्मद ज़वी ने कहा।

हम दोनों हाथ में हाथ दिये धीरे-धीरे उस सड़क पर चल रहे थे जो मस्जिद से मुख्य बाज़ार तक जाती थी। श्री मुहम्मद, जो अपनी उत्तरी अफ्रीका की विशेष सफ़ेद "बुर्नुस"[१] पहने हुये थे मदीना के सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे। वह यहां दस साल से निवास कर रहे थे। रास्ते में बहुत से लोगों ने रोक कर बड़े आदर के साथ उनको सलाम किया, इसलिए नहीं कि व सत्तर साल के एक बुज़ुर्ग थे, बल्कि इसलिए कि वह लीबिया के प्रसिद्ध नेताओं और स्वतंत्रय-संग्राम के सेनानियों में से एक थे।

"मैं आप को यह बताना चाहता हूं, कि सय्यद अहमद इस समय मदीना ही में हैं, उनका स्वास्थ अच्छा नहीं है। वह आप से मिल कर बड़े प्रसन्न होंगे। आप यहां कब तक ठहर रहे हैं?" उन्होंने चलते-चलते पूछा।

---

१. एक ऐसा पहनावा जिस में टोपी साथ सिली होती है।

"परसों तक।" मैंने बताया, "पर ज़ाहिर है कि सय्यद अहमद से भेंट किये बिना मैं किसी प्रकार भी नहीं जा सकता। चलिये, इसी समय उनके पास चलें।"

पूरे अरब प्रायद्वीप में किसी व्यक्ति से मुझे इतना प्रेम और लगाव न था जितना सय्यद अहमद से था। इसलिए कि उस ज़माने में किसी व्यक्ति ने भी, अपने स्वार्थ और हित से उदासीन होकर, मात्र श्रेष्ठ मानदण्डों और उच्च सिद्धान्तों के लिए, इतना त्याग नहीं किया था, जितना कि उन्होंने, अपना सारा जीवन एक विद्वान और एक 'मुजाहिद' की हैसियत से, इस्लामी समाज के आध्यात्मिक पुनर्जागरण तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लगा रखा था, इसलिए कि उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि एक के बिना दूसरा पूर्ण नहीं हो सकता।

आज भी मुझे सय्यद अहमद से पहली भेंट याद है जो कुछ साल पहले मक्का में हुई थी। मदीना मुनव्वरा के उत्तर में अब कबीस पर्वत स्थित है जिससे बहुत सी घटनायें संबंधित हैं। इसकी बुलन्द चोटी पर एक, 'दो मनारों' वाली छोटी सी सफ़ेद मस्जिद है। मक्का की घाटी से इसका दृश्य बड़ा आकर्षक दीख पड़ता है।

अबू कबीस पर्वत को चोटी पर ढाल की ओर सन्नोसियों का केन्द्र था जहां यह बूढ़े व्यक्ति ठहरे हुये थे। ३० वर्ष की लड़ाई और काला सागर और यमन के पर्वतों के बीच अपने जीवन के सत्तर साल बिताने के बाद वह निर्वासित कर दिये गये थे और उनके स्वदेश बरका के द्वार उनके लिए बन्द थे।

उनका नाम पूरे इस्लामी जगत में प्रसिद्ध था। सय्यद अहमद शरीफ सन्नोसियों के नेता— किसी नाम ने उत्तरी अफ़्रीक़ा के विदेशी सामन्तों व साम्राज्यवादियों की नींदें इतनी हराम न की होंगी, जितनी इस नाम ने, यहां तक कि १९वीं शताब्दी में, अब्दुल

क़ादिर अल्जीरियाई या अब्दुल करीम रीफ़ी ने भी नहीं, जो फ्रान्स के हलक़ के कांटे बने हुये थे। ये दोनों नाम जितने भी अहम और मुसलमानों के नज़दीक जितने भी मान्य हों, पर उनका मात्र एक राजनीतिक पहलू था। इसके विपरीत सय्यद अहमद और उनका तरीक़ा राजनीतिक पहलू के साथ-साथ कई वर्ष तक प्रबल आध्यात्मिक शक्ति का भी पोषक रहा। सन् १९२७ में मेरे दोस्त हाजी आग़ोस सालिम ने (जो उस समय जावा में इंडोनेशिया के स्वतंत्रता-आन्दोलन के नेता थे) उनसे मेरा परिचय कराया था। जब उनको मालूम हुआ कि मैं नव-मुस्लिम हूं तो उन्होंने बड़े प्रेम व स्नेह से अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाते हुये कहा—

"बधाई हो, मेरे नव-युवक भाई, बधाई,"

इस बूढ़े मुजाहिद के चेहरे पर दुख व कष्ट के चिन्ह स्पष्ट रूप से देखे जा सकते थे, ऐसा मुजाहिद जो धर्म और स्वतंत्रता के लिए अनवरत लड़ाई लड़ रहा था। उनका चेहरा थका हुआ था और पपोटे भारी और झुके हुये थे। ऐसा जान पड़ता था मानो वह ऊंघ रहे हों उनकी आवाज़ नर्म थी, पर दुख व कष्ट में डूबी हुई। कभी-कभी जब उनको जोश आ जाता तो उनकी आंखों में गर्मी और चमक पैदा हो जाती और आवाज़ भारी होने लगती। उनकी सफ़ेद चमकदार 'बरनुस' के भीतर से उनका मोढ़ा बाहर निकला हुआ था, जैसे वह शकरे का बाज़ू हो। और चूंकि वह उस सन्देश के आवाहक थे जो अगर सफल हो जाता तो, इस्लाम का पुनर्जागरण संभव हो सकता था, इसलिए उत्तरी अफ्रीक़ा के इस हीरो में वह चिंगारी बराबर चमकती रहती थी। बीमारी, कमज़ोरी, बुढ़ापा और असफलता भी उसे बुझा न सकी थी।

उन्हें निराश होना भी न चाहिए था, इसलिए कि वे जानते थे कि इस्लाम का धार्मिक व राजनीतिक जागरण तथा उन्नति करने

की उमंग (जिस के लिए सन्नोसी आन्दोलन प्रयत्नशील था और जिहाद कर रहा था) मुसलमानों से कभी समाप्त नहीं की जा सकती।

मैंने श्री मुहम्मद से पूछा—

"अब मुजाहिद किस हालत में हैं? एक वर्ष हो रहा है मुझे बरका की कोई खबर नहीं मिल सकी।"

श्री मुहम्मद ज़वी का सफेद दाढ़ी वाला किताबी चेहरा दुख व कष्ट के भाव से यकायकी बदल गया।

"खबरें बहुत बुरी हैं मेरे बेटे? लड़ाई ख़त्म हुये कई महीने बीत चुके हैं। मुजाहिदों की कमर टूट चुकी है और उन्होंने अपनी आख़िरी गोली भी ख़त्म कर दी है। अब केवल अल्लाह की कृपा व सहायता ही हमारी विवश ज़ाति को इन अत्याचारियों के 'चंगुल' से बचा सकती है।"

"और सैयद इदरीस?"

श्री मुहम्मद ने एक गहरी सांस लेते हुये कहा—

"सैयद इदरीस मिस्र में हैं। वे क्या कर सकते हैं। वे इन्तिज़ार कर रहे हैं, पर किस का? वह बहुत नेक आदमी हैं। अल्लाह उन्हें दीर्घायु दे। पर उनमें लड़ने की क्षमता नहीं। वह अपनी पुस्तकों के साथ जीवन बिता सकते हैं। तलवार उनके हाथ में नहीं ठहरती।"

"और हां, उमर मुख़्तार! ज़ाहिर है उन्होंने किसी हालत में भी हथियार न डाले होंगे। क्या वह मिस्र चले गये?"

श्री मुहम्मद चलते-चलते यकायकी रुक गये और चकित हो मुझे घूरने लगे:—

"क्या आप को कुछ ख़बर नहीं है?"

"मैंने कोई ख़बर नहीं सुनी!"

उन्होंने बड़े धीमे से कहा–

"मेरे बेटे! श्री उमर के देहान्त को एक वर्ष हो गया। अल्लाह उन पर अपनी कृपा करे।"

उन्होंने बड़े खेदपूर्ण स्वर में आगे कहा–

"उमर मुख़्तार.... मर चुके हैं? बरक़ा का वह शेर, वह मुजाहिद, जो अपने जीवन के ७०वें वर्ष में भी आज़ादी के लिए लड़ता रहा– आज मर चुका है, आज दस साल होते हैं, वर्तमान हथियारों–टैंक, हवाई जहाज़, और तोपों से सुसज्जित इटली की सेनाओं के साथ उनकी जाति एक निराशाजनक लड़ाई में लगी हुई थी, जब कि उमर मुख़्तार और उनके उपवास करते रहने वाले साथियों के पास बन्दूक़ें और कुछ घोड़ों के सिवा कुछ न था। फिर भी वे गुरिल्ला लड़ाई लड़ रहे थे, वह भी उस देश में जो एक बहुत बड़े क़ैदख़ाने में तबदील हो चुका था।

आज से डेढ़ साल पहले अर्थात बरक़ा से वापसी से पहले मैं यह समझ गया था कि उनका और उनके साथियों का यही नतीजा निकलने वाला है। कितनी बार मैंने उनको इस बात पर तैयार करने की कोशिश की कि वे अपने शेष मुजाहिदों को साथ लेकर मिस्र चले जायें ताकि अपनी जाति की सेवा के लिए कुछ दिन और जीवित रहें। पर हर बार उन्होंने मुझे ऐसा कहने से रोक दिया। उनको अच्छी तरह मालूम था कि मौत और सिर्फ़ मौत उनके इन्तिज़ार में है और अन्त में सौ लड़ाइयों के बाद मौत ने उनको आ दबोचा।"

"पर यह तो बताइये कि किस लड़ाई में मृत्यु की यह घटना घटित हुई?"

श्री मुहम्मद ज़वी ने अपने सिर को हल्के से हरकत दी और जब हम तंग बाज़ार से मुनाख़ा के खुले हुये अंधेरे मैदान में आ गये, तो उन्होंने मुझे उत्तर दिया–

"वे किसी लड़ाई में क़त्ल नहीं हुये, बल्कि घायल हो गये और ज़िन्दा क़ैदी बना लिये गये, फिर उनको इटली वालों ने क़त्ल कर डाला। सामान्य अपराधियों की तरह उनको फांसी दे दी गयी।"

मैं बोल पड़ा–

"उन्होंने यह किया कैसे? स्वयं Grazini भी शायद इतनी क्रूरता नहीं दिखा सकता था।"

एक हल्की मुस्कान के साथ उन्होंने उत्तर दिया–

"श्री उमर अपने कुछ व्यक्तियों के साथ उस भाग में घुस गये थे जो इटली वालों के अधिकार में था। वह हज़रत सफ़िअी (रज़ि०) (जो अल्लाह के रसूल के साथी थे) की समाधि का दर्शन करना चाहते थे। किसी तरह इटली वालों को इस बात की ख़बर लग गयी और उन्होंने दोनों ओर से घाटी को घेर लिया। अब उनके सामने भागने की भी कोई शक्ल न थीं। श्री उमर और उनके मुजाहिद अपना प्रतिरक्षण करते रहे, यहां तक कि मैदान में केवल तीन व्यक्ति रह गये– एक स्वयं श्री उमर और दो व्यक्ति और– अन्त में उनका घोड़ा बन्दूक़ की गोली से घायल होकर ख़त्म हो गया और उनका पांव उसके नीचे दब गया। वे खड़े भी नहीं हो सके, पर बूढ़े शेर ने अपनी बन्दूक़ से गोली चलाना बराबर जारी रखा, यहां तक कि शत्रु की एक गोली उनके हाथ में चुभ गयी। अब उन्होंने दूसरे हाथ से गोली चलानी शुरु कर दी, यहां तक कि उनके सारे कारतूस ख़त्म हो गये। उस समय इटली वालों ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और बेड़ियां पहना कर सलूक़ तक लाये। इसके बाद उनको जरनैल Grazini के पास लाया गया। उसने इन से पूछाः–

"तुम्हारी क्या राय है अगर इटली की सरकार अपनी राजकीय दया तुम पर दर्शाये और तुम्हें जीवित छोड़ दें? क्या तुम वायदा करते हो कि अपने जीवन के शेष दिन चुप चाप और शान्तिपूर्ण ढंग से बिता दोगे?"

"श्री उमर ने उत्तर दियाः—

"मैं उस समय तक तुम से और तुम्हारी जाति से लड़ता रहूंगा जब तक तुम हमारे देश से न निकल जाओगे या हमारा प्राण हमारे देह से अलग न हो जायेगा। मैं उस खुदा की क़सम खा के कहता हूं कि अगर मेरे दोनों हाथ इस समय बंधे न होते तो मैं इन निहत्थे, हाथों से भी लड़ने में कोई कमी न करता, मैं बूढ़ा और कमज़ोर आदमी!!"

जरनैल यह सुन कर हंसा और आदेश दिया कि सलूक के बाजार में खुले आम इनको फांसी दे दी जाये। अतएव यही हुआ। इटली वालों ने हज़ारों मुसलमान मर्दों और औरतों को, जो बैरकों में क़ैद थे, चार व नाचार यह दृश्य देखने के लिए जमा किया और उनकी निगाहों के सामने उनके नेता व पेशवा को फांसी दे दी गई।"[1]

मैं और मुहम्मद ज़वी सन्नोसी खानक़ाह की ओर बराबर चलते रहे, एक दूसरे का हाथ पकड़े हुये। बड़े मैदान पर अंधेरा छाया हुआ था। बाज़ार का हंगामा और शोर व गुल हम अपने पीछे छोड़ आये थे। रेत हमारे जूतों के नीचे चरम-चरमर कर रही थी, इधर-उधर सामान ढोने वाले कुछ ऊंट आराम कर रहे थे। इस विशाल मैदान में बहुत दूर एक सिरे पर मकानों की एक लाइन नज़र आ रही थी जो बादलों से घिरे हुये आसमान के कारण अधिक साफ़ दिखाई नहीं दे रही थी। यह दृश्य देखकर मुझे बहुत दूर का वह वन याद आ गया, सनोबरी सदाबहार झाड़ी के उन वनों की तरह जो बरका के ऊपरी भाग में पाये जाते हैं, जहां उमर मुख़्तार से मेरी पहली भेंट हुई थी। मेरे मस्तिष्क में उस कटु और कठोर यात्रा की तमाम यादें अपनी अंधियारी, भयावहता और विनाश के साथ

१. यह घटना जो इटली वालों के "शूर-वीर" होने की एक शानदार निशानी है, १६ सितम्बर सन् १९३१ ई० में घटी।

उभर आई। ऐसा जान पड़ा मानो श्री उमर का चेहरा मेरे सामने है। निराशा और पीणा के चिन्ह उस पर स्पष्ट हैं। वह एक हल्की आग के ऊपर झुके हुये हैं। उनकी भारी और कड़ी आवाज़ मेरे कानों में गूंज गई–

"अब तो हम बस केवल इसलिए लड़ाई लड़ रहे हैं कि हमें अपने धर्म और स्वतंत्रता के लिए ऐसा करना चाहिए, यहां तक कि शत्रु परास्त हो जाये या हम अपने प्राणों से हाथ धो लें, इसके अलावा हमारे सामने कोई रास्ता नहीं है।"

वास्तव में वह बड़ी अनोखी मुहिम थी जिसे सफल बनाने के लिए मैं जनवरी सन् १९३१ के अन्त में बर्का गया था।

इमाम सन्नोसी इस घटना से कुछ महीने पहले (सन् २० ई० की पतझड़ ऋतु में) मदीना तशरीफ़ लाये थे। मैं श्री मुहम्मद ज़वी के साथ घंटों उनकी संगति में बैठा करता था, वहां हम मुजाहिदों के हालात पर विचार किया करते थे, वे मुजाहिद ज़ो बर्का में उमर मख़्तार के नेतृत्त्व में युद्ध लड़ रहे थे। यह बात साफ़ हो चुकी थी कि अगर कोई उचित सहायता समय रहते न मिली तो इन सेनानियों का शत्रुओं के मुक़ाबले में अधिक समय तक ठहरना कठिन है।

बर्क़ा की सामरिक स्थिति लगभग इस प्रकार थी–

तमाम तटीय क्षेत्र और हरित पर्वत के उत्तर में (मध्य बर्क़ा) कुछ चौकियां इटली वालों के पूर्ण और कड़े कन्ट्रोल में थीं और इन चौकियों के मध्य सशस्त्र सैनिक गाड़ियां और पैदल सेना की टुकडियां बराबर गश्त करती रहती थीं, जिनमें से अधिकांश अरीटोरिया की सेना थी। इनकी सहायता के लिए हवाई जहाज़ों के समूह चलते थे जो समय-समय से ऊपर देहातों पर बम-वर्षा करते रहते थे। बदद्, जो सन्नोसियों की वास्तविक प्रतिरक्षात्मक शक्ति थे, बिना इसके कि खुल कर सामने आयें और बम-वर्षा का शिकार बनें, कोई सरगर्मी दिखा ही नहीं सकते थे। प्रायः यही होता कि कोई

हवाई जहाज़ अपने क़रीबी केन्द्र को सूचित करता कि फलां जगह बद्दूओं ने डेरा डाला है, इसके बाद एक ओर हवाई जहाज़ से गोलियां बरसाई जातीं और उन्हें तितर-बितर होने से रोका जाता, दूसरी ओर कवचधारी गाड़ियां यकायकी प्रकट होतीं और अपने रास्ते में जो भी ख़ेमे, आदमी या मवेशी मिलते सबको तबाह व बरबाद करती हुई निकल जातीं। जो आदमी या मवेशी ज़िन्दा बच जाते, उन्हें उत्तर के बैरकों में भेज दिया जाता जो कांटेदार तारों से घिरे हुये होते थे और जिनको इटली वालों ने तट के निकट बनाया था।

उस समय अर्थात् लगभग सन् १९३० में क़ैदियों की तायदाद अस्सी हज़ार तक जा पहुंची थीं जो मवेशियों सहित एक ऐसे क्षेत्र में ठूंस दिये गये थे जहां खाद्य पदार्थ उनके एक तिहाई भाग के लिए भी नाकाफ़ी था। फल यह निकला कि मरने वालों की औसत भयानक हद तक बढ़ गई। इसी के साथ इटली वालों ने तमाम मिस्री सीमा पर दक्षिण में तट से लेकर जग़बूब तक कांटेदार तारों की एक दीवार खड़ी कर दी थी ताकि मुजाहिदों की टुकड़ियों को मिस्र से अनाज, सामान और हथियार आदि सप्लाई न हो सकें। पश्चिमी क्षेत्र का वीर क़बीला अपने पराक्रमी नेता अतीवश के नेतृत्त्व में (जो उमर मुख़्तार के दाहिने हाथ थे) बर्का के पश्चिमी तट पर बड़ी वीरता के साथ लड़ रहा था, पर क़बीले के अधिक व्यक्तियों के हाथ से मामला निकल चुका था, इसलिए कि इटली वाले सामानों और हथियारों के मामलों में उनसे कहीं आगे थे। जहां तक मध्य दक्षिण का संबंध था तो क़बीला ज़वीया अपने नेता अबूकरीम के नेतृत्व में जिनकी उम्र नव्वे वर्ष की थी, निराशा के साथ लड़ रहा था, बावजूद इसके कि वह अपना प्रमुख केन्द्र जालू मरुद्यान हाथ से खो चुका था। जहां तक अन्दरूनी इलाक़ों का संबंध है, वहां भूख और बीमारी के कारण बद्दूओं की बहुत बड़ी तायदाद ख़त्म हो रही थी।

मुजाहिदों की कुल तायदाद एक हज़ार से अधिक न थी, पर इसका कारण आदमियों की कमी नहीं था, इसलिए कि गुरिल्ला लड़ाई में बहुत बड़ी सेना तैयार करने की नहीं बल्कि तेज़ और मुस्तैदी की ज़रूरत होती है। जितने भी व्यक्ति हों वे बिजली की तेज़ी के साथ और यकायकी किसी अनजानी जगह से इटली के केन्द्र पर धावा बोल दें और उसके हथियार आदि लेकर सनूबरी झाड़ियों के बनों और बर्का की गहरी घाटियों में ग़ायब हो जायें। स्पष्ट है कि ये टुकड़ियां जितनी भी वीरता और शौर्य का प्रदर्शन करें, फिर भी वे उस प्रबल सैनिक शक्ति पर विजय नहीं प्राप्त कर सकतीं जो हथियार और तायदाद दोनों में बढ़ी हुई हो। इसलिए अब समस्या केवल यह थी कि मुजाहिदों की सहायता किस प्रकार की जाये ताकि वे न केवल अपने शत्रुओं को भारी हानि पहुंचा सकें, बल्कि उन केन्द्रों को भी मुक्ति दिला सकें जहां शत्रुओं ने अपने क़दम मज़बूती से जमा लिये हैं और उन केन्द्रों की सुरक्षा के साथ-साथ दूसरे आक्रमणों को रोक भी सकें।

पर सन्नोसियों की शक्ति में इस वृद्धि के लिए बहुत सी बातें चाहिए थीं।

एक तो यह कि खाद्य सामग्री के पहुंचते रहने का बराबर प्रबन्ध किया जाये। दूसरे ऐसे हथियार जुटाये जायें जिससे हवाई जहाज़ों और कवचधारी गाड़ियों का मुक़ाबला किया जा सके, मुख्य रूप से टैंक भेदी तोपें, बन्दूकें, भारी मशीनगनें और इसके साथ वे विशेषज्ञ जो इन हथियारों का इस्तेमाल मुजाहिदों को सिखा सकें, अन्त में बेतार के तार की ऐसी सुन्दर व्यवस्था की जाये जो मुजाहिदों और मिस्री सीमा के भीतर गुप्त सुरक्षा गृहों के मध्य संबंध जोड़ सके।

हमारी (सय्यद अहमद, सैयद मुहम्मद और मैं) बैठकें लगभग

पूरे सप्ताह हर संध्या को होती रहीं ताकि इस सम्बन्ध में जो भी सम्भव हो, वह किया जा सके। मुहम्मद ज़बी की राय यह थी कि समस-समय पर मुजाहिदों की सहायता, समस्या का हल नहीं है। उनका विचार था कि कफ़रा मरुद्यान को (जो लीबिया मरुस्थल के दक्षिण क्षेत्र में सैयद अहमद के नेतृत्व में सन्नोसी आन्दोलन का सामान्य केन्द्र था) भविष्य में दुबारा तमाम सामरिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया जाये, इसलिए कि वह अभी तक इटली वालों के हस्तक्षेप से बहुत दूर था, इससे बढ़कर यह कि वह कारवानों के राजमार्ग पर स्थित था, जो मिस्री क्षेत्र बहरिया और फ़रफ़र: तक जाता था। यद्यपि यह रास्ता बहुत लम्बा और कठिन था। इस दृष्टिकोण से यहां, किसी और जगह के मुक़ाबले में, रसद के सामान आदि का प्रबन्ध व्यावहारिक रूप से अधिक सम्भव था। इसके अलावा उसे उन शरणार्थियों का शरण-स्थल भी बनाया जा सकता था, जो बरकरा से भागकर आये थे और मिस्र में ठहर गये थे। इसी प्रकार यह उत्तर में उमर मुख़्तार की सेवाओं की सहायता का बहुत अच्छा केन्द्र बन सकता था। अगर कफ़रा की क़िलाबन्दी अच्छी तरह कर दी जाती और उसे नये अस्त्रों से लैस कर दिया जाता तो वह हवाई हमलों का मुक़ाबला बहुत कम ऊंचाई पर कर सकता था।, इसलिए कि बहुत ज़्यादा ऊंचाई से बमवर्षा दूर-दूर फैले हुये लोगों के लिए किसी वास्तविक ख़तरे का कारण नहीं बन सकता था।

इमाम सन्नोसी ने यह विचार प्रकट किया कि वह स्वयं वहां जायें और देखें कि वहां सामरिक नव-संगठन कैसे सम्भव है और उसको सामरिक गतिविधियों का केन्द्र किस प्रकार बनाया जा सकता है। पर मैंने आग्रह किया कि इस स्कीम की सफलता के लिए सैयद अहमद के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि वह ब्रिटेन से अपने सम्बन्ध बेहतर बनाने की कोशिश करें, जिससे सन् १९१५ ई. में

लड़ाई करके, बिना किसी कारण के बैर मोल ले लिया गया था और यह कुछ असम्भव भी नहीं है इसलिए कि ब्रिटेन इटली के विस्तारवादी स्वभाव को कुछ पसन्द नहीं कर रहा था, मुख्यरूप से उस समय, जबकि मसोलिनी खुल्लम खुल्ला यह एलान कर रहा था कि वह रूम सागर के दोनों तटों पर रोमन साम्राज्य की स्थापमा का निश्चय कर चुका है, इसके अलावा वह मिस्र को भी लालच की निगाह से देख रहा था।

सन्नोसियों के भविष्य से मेरी यह रुचि उनके त्याग, परिश्रम और लगन के कारण नहीं थी, बल्कि मुझे सबसे अधिक रुचि इस कारण थी, कि सन्नोसियों का आन्दोलन अरब जगत पर बड़ा गहरा प्रभाव डाल रहा था। इस्लामी जगत में उस समय कोई ऐसा आन्दोलन नहीं था जो निष्ठापूर्वक आदर्श इस्लामी समाज की स्थापना के लिए कोशिश कर रहा हो जैसा कि सन्नोसी आन्दोलन, जो उस समय अपने जीवन और उद्देश्य के लिए अन्तिम लड़ाई लड़ रहा था

चूंकि सैयद अहमद सन्नासी समस्या से मेरी गहरी दिलचर्म्पी और लगाव को जानते थे, इसलिए उन्होंने मेरी ओर रुख करते हुये और मेरी आंखों में आंखें डालते हुए कहा—

"मुहम्मद! क्या इस काम में आप हमारा प्रतिनिधित्व कर सकते हैं, कि आप बर्का जाएं और मालूम करें कि मुजाहिदों के लिए क्या किया जा सकता है, शायद आप मामले को उससे अधिक बेहतर और स्पष्ट तरीके पर समझ सकें जितना कि मेरी जाति समझती है।

मैंने एक शब्द कहे बिना उनकी ओर देखा और सिर झुका दिया। यद्यपि मुझे मालूम था कि सैयद अहमद को मुझ पर कितना भरोसा है, इसलिए मेरे लिए उनकी यह मांग अप्रत्याशित न थी।

फिर भी मैं ने महसूस किया कि मेरी सांस रुक गयी है, इसलिए कि इस बड़े जोखिम की कल्पना ने ही मुझे अचेत-सा कर दिया था कि मैं उसका उल्लेख नहीं कर सकता, पर सबसे अधिक जिस बात से मुझे प्रसन्नता थी, वह यह कि इस प्रकार मुझे उस मामले और उस काम में कुछ भाग लेने का अवसर प्राप्त हो रहा है, जिसके लिए एक बहुत बड़ी संख्या नै अपना जीवन दांव पर लगा दिया है।

सैयद अहमद ने अलमारी से एक कुरआन मजीद उठाया, जिस पर रेशम का ग़िलाफ़ चढ़ा था, और उसको अपने घुटनों पर रखने के बाद मेरे दाहिने हाथ को अपने हाथ से पकड़ कर कुरआन मजीद पर रखते हुये कहा—

"कसम खाइये मुहम्मद, अल्लाह की, जो दिलों का सब हाल जानता है कि आप इस अमानत (धरोहर) की रक्षा करेंगे।"

मैंने कसम खाई, मुझे ऐसा जान पड़ा कि अपनी प्रतिज्ञा पर इतना विश्वास मुझे अपने जीवन में कभी नहीं हुआ था जितना कि इस समय हुआ।

—o—

जो मुहिम सैयद अहमद ने मेरे सुपुर्द की थी, वह बड़ी गोपनीयता चाहती थीं। चूंकि इमाम सन्नोसी से मेरे ताल्लुक़ात को सभी जानते थे और जिद्दा के विदेशी प्रतिनिधि मंडलों से उसका छिपाये रखना असम्भव था, इसलिए यह उचित नहीं था कि मैं खुल्लम खुल्ला मिस्र जाऊं और निगरानी का निशाना बूनं।

जो लेख फ़सीलुद्दीन के षड्यन्त्र को बेनकाब करने के लिए मैंने हाल में लिखे थे, उसके कारण अंग्रेज़ स्वाभाविक रूप से मुझे अच्छी नज़र से नहीं देखते थे। इसकी बड़ी आशंका थी कि मिस्र की सीमा में पहला क़दम रखते ही मैं उनकी निगरानी का निशाना बन

जाऊं, इसलिए हमने यह निर्णय किया कि मिस्र-यात्रा को भी बिल्कुल गुप्त रखा जाये और लाल सागर को एक अरबी नाव पर पार कर के सईद के तट पर किसी जगह उतर जाऊं। मिस्र में हिजाज़ वासियों के पहनावे में स्वतंत्रतापूर्वक घूमने-फिरने में मुझे कोई ख़तरा नहीं लगा, इसलिए कि मक्का और मदीना के बहुत से लोग व्यापार के लिए या हाजियों की खोज में वहां जाया करते थे। इसलिए ये पहनावे मिस्री शहरों और देहातों के लिए कोई नई बात न थी और चूंकि मैं हिजाज़ी वाणी में बड़ी आसानी से बातें कर सकता था, इसलिए कोई सन्देह पैदा किये बिना यह आसानी से समझ सकता था कि मैं इन्हीं दो पवित्र नगरों (मक्का और मदीना) में से किसी एक का निवासी हूं।

हम को आवश्यक तैयारियों के लिए कई सप्ताह चाहिए थे, जिनमें बरका में सैयद उमर तथा मिस्र में कुछ सन्नोसियों के साथ गुप्त पत्र-व्यवहार करना भी शामिल था। इस कारण हम जनवरी सन् १९३१ के पहले सप्ताह में ही वहां से चल सके। वह रात बहुत अंधेरी थी और कठोर ज़मीन पर जूता पहन कर चलना और अधिक परेशानी का कारण था, एक बार मैंने ठोकर खाई और पिस्तौल का क़ब्ज़ा मेरी पसलियों से टकरा गया, जिसे मैंने हिजाज़ी वस्त्र के भीतर छिपा रखा था। उस समय मुझे अन्दाज़ा हुआ कि मैं कितनी ख़तरनाक मुहिम पर निकला हूं। मैं एक अप्रसिद्ध अरबी कप्तान के साथ जा रहा था जिसके ज़िम्मे यह था कि मुझे "सम्बूक"[1] द्वारा लाल सागर को पार कराके मिस्री तट पर किसी जगह उतार दे और बस!

चूंकि मेरे पास ऐसे काग़ज़ात भी नहीं थे जो मेरे व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल सकते, इसलिए अगर वे मुझे मिस्र में गिरफ़्तार कर

१. एक विशेष प्रकार का जहाज़ जो अरब सागर, फ़ारस की खाड़ी और लाल सागर में इस्तेमाल किया जाता है और आम तौर पर उसको 'सम्बूक' कहते हैं।

लेते तो मैं उनको अपना पेशा भी नहीं बता सकता था, पर मिस्र की जेल में कई हफ़्ते ठहराये जाने की, इन ख़तरों के मुक़ाबले में, जो मेरे इन्तिज़ार में थे, कोई वास्तविकता न थी। मुझे पश्चिमी रेगिस्तान को इस सिरे से उस सिरे तक पार करके जाना था, इसको ध्यान में रखते हुये कि इटली के किसी हवाई जहाज़ की नज़र मुझ पर न पड़ जाये, या कवचधारी गाड़ियों का जो बराबर गश्त लगाया करती थीं, निशाना न बन जाऊं। फिर इन सब मरहलों से गुज़र कर मुझे उस देश के मध्य में जाना था, जहां केवल हथियार की भाषा चल रही थी।

मैंने अपने मन में कहा, "मैं यह सब आख़िर क्यों कर रहा हूं?"

ये ख़तरे मुझ से छिपे न थे और मेरे लिए नई चीज़ भी न थे। पर ऐसा नहीं था कि मैंने कभी मनोविहार या दिल-बहलावे के लिए इसका स्वागत किया हो। मैंने जब भी ख़तरे मोल लिये तो उन प्रेरक तत्वों के कारण जो जाने या अनजाने रूप में मेरे निजी ज़ीवन से संबंधित थे। पर इस नई मुहिम का रूप क्या था? क्या मैं सच में यह समझता था कि मेरा हस्तक्षेप मुजाहिदों के हक़ में स्थिति को बेहतर बना देगा। कभी-कभी मैं यही समझने लगता था, पर मन की गहराइयों में उतरने के बाद मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचता कि यह एक जल्दी में किया गया, बुद्धिहीनता से भरा फ़ैसला है।

फिर ख़ुदा के लिए बताइये कि मैं इस प्रकार अपने जीवन से खेल करने पर आख़िर क्यों तुल गया हूं, जब कि सफलता की आशा बहुत ही कम है?

पर इससे पहले कि मेरा प्रश्न पूरा हो, उत्तर मेरे सामने था।

इस्लाम स्वीकार करने और उसे अपने जीवन की प्रणाली व व्यवस्था मानने के बाद मैं यह सोचने लगा था शायद मेरी खोज ने

अपनी मंज़िल पा ली है। पर धीरे-धीरे, बल्कि बहुत ही धीरे-धीरे मैंने महसूस किया कि न वह मंज़िल थी, न ही लक्ष्य। इसलिए कि, जहां तक मेरा ताल्लुक़ है, मैं समझने लगा हूं कि जीवन में किसी विश्वास या पद्धति को अपनाने का संबंध इस इच्छा या इस भावना से है कि जो लोग यही विश्वास या पद्धति अपनाये हुये हों उनके साथ समरस हो जाया जाये; केवल व्यक्तिगत क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि उस समाज के व्यावहारिक जीवन में भी।

जहां तक मेरा संबंध था, इस्लाम मेरे लिये एक रास्ता था, 'मंज़िल' नहीं और उमर मुख़्तार के मुजाहिद उसी रास्ते और उसी तरीक़े पर चलने के लिए स्वतंत्रय-युद्ध लड़ रहे थे, ठीक वैसे ही जैसे आज से १३०० वर्ष पहले प्यारे नबी के सहाबियों (साथियों) ने लड़ाई लड़ी थी। इसलिए इस लम्बी कड़वी और सख़्त लड़ाई में उनकी सहायता और मदद (भले ही परिणाम कुछ हो) मेरे लिए ऐसी ही ज़रूरी थी जैसी नमाज़।

हम तट पर पहुंच गये।

पानी के थपेड़ों के मध्य, हमारी वह चप्पू वाली नाव एक ओर को झुक गयी, वह नाव जो अंधेरे में लंगर पड़े हुये जहाज़ तक पहुंचाने के लिए तै की गयी थी।

जब मल्लाह खड़ा हुआ तो मैंने ज़ैद की ओर रुख़ करते हुये कहा:—

''ज़ैद मेरे भाई! क्या आप जानते हैं कि हम किस प्रकार के ख़तरों का सामना करने जा रहे हैं। शायद यह मुहिम द्वैश[1] की मुहिम से भी ज़्यादा ख़तरनाक साबित हो। क्या आप को नगर के मित्रों में शान्तिपूर्वक बैठना पसन्द नहीं है।''

---

१. इससे तात्पर्य फ़ैसल द्वैश है, जिसने शाह इब्ने सऊद के विरुद्ध विद्रोह किया था।

"जो आप का रास्ता है, वही मेरा रास्ता है मेरे दोस्त! फिर आप ही ने तो यह कहा था कि पानी जब एक जगह ठहरा रहता है तो वह ख़राब हो जाता है। हम को चलने दीजिए और पानी को जारी रहने दीजिये ताकि वह साफ़ होता रहे!"

अरब प्रायद्वीप के तटों पर जिन नावों का चलन है, उसी प्रकार की एक नाव पर हम रवाना हुये। यह सिर्फ़ लकड़ी की बनी हुई थी और उसके भीतर से सूखी मछलियों और ज्वार की गन्ध आ रही थी। उसका पिछला हिस्सा कुछ ऊपर को उठा हुआ था, दो खम्भे थे। एक छतदार बड़ा कमरा था।

रीस हमें बधाई देने आगे बढ़े। यह मसकत के एक शेख़ थे। उनकी छोटी चमकदार काली आंखें, एक बहुत बड़ी और विभिन्न रंगों वाली पगड़ी के भीतर से झांक रही थीं। इन आंखों की चमक और अंदाज़ से इस का भास तो मिल ही जाता था कि इस व्यक्ति के जीवन के न जाने कितने वर्ष ख़तरों का मुकाबला करने में और ग़ैर-कानूनी सरगर्मियों में बीते हैं। उनका खंजर, जिस पर चांदी का काम था, मात्र दिखाने के लिए न था।

जब हम नाव पर चढ़े तो रीस ने उच्च स्वर में कहा:—

"मुबारक हो मेरे दोस्त: मुबारक। वास्तव में यह बड़े हर्ष का क्षण है।"

—–०—–

मैं विचारों के समुद्र में डूब गया। कितनी बार इन "रीस" ने बेचारे हाजियों को, जो हज-टैक्स से बचने के लिए गुप्त रूप से हिजाज़ के तट पर उतरते थे, मिस्र से हिजाज़ पहुंचाते समय इस अभिनन्दन का प्रदर्शन किया था और उसके बाद उन्होंने भूल कर भी ख़बर न ली थी।

चार रातों के बाद नाव एक जगह ठहरी और एक छोटी नाव पर हम लोग सईद के तट पर क़सीर बन्दरगाह के उत्तर में उतर पड़े।

हमें सच में बड़ा आश्चर्य हुआ जब मल्लाह ने रुपया लेने से इन्कार कर दिया और हंसते हुये कहने लगा:—

"मेरे स्वामी मुझे रुपया दे चुके हैं। आप जायें! ख़ुदा हाफ़िज़!!"

क़सीर में लोगों की निगाहों से बचना अधिक कठिन न था, इसलिए कि वहां के लोग हिजाज़ी पहनावा देखने के आदी हो गये थे।

दूसरी सुबह हमने असीवत के दो टिकट लिये और एक पुरानी बस पर सवार हो गये।

अफ़्रीक़ा-यात्रा की यह हमारी पहली मंज़िल थी।

हमारे एक पहलू में एक भयानक हद तक मोटी-भद्दी औरत थी जो अपनी गोद में मुर्गियों का एक बड़ा-सा पिंजरा लिये हुये थी, दूसरी ओर एक बूढ़ा किसान था, जिस ने हमारे वस्त्र को देख कर अपने दस साल पहले की हज की यादें छेड़ दीं और वहां की घटनायें सुनाने लगा।

मेरा सदा से विचार था कि जब एक व्यक्ति कोई अपराध कर बैठता है तो उसके मन में ख़ामख़ाही का चोर पैदा हो जाता है और वह हर व्यक्ति से भेंट करते हुये संकोच करता है। पर विचित्र बात है कि उस समय मुझे ऐसा कुछ भी एहसास नहीं हुआ। शायद इसलिए कि अरब प्रायद्वीप में पिछले कुछ वर्षों में मैं वहां के जीवन से इतना घुल-मिल गया था कि मैं अपने आप को उन्हीं में का एक व्यक्ति जानने के अलावा कुछ सोच भी नहीं सकता था और यद्यपि मैंने मक्का और मदीना वासियों जैसा रहन-सहन अपनाया नहीं था,

फिर भी इस बात-चीत में मैं इस तरह शामिल हो गया जैसे मैं हज का कोई मुअल्लिम (सिखाने वाला) या वकील हूं, मैं हज की श्रेष्ठता बखानता रहा। ज़ैद ने भी मनः भाव से इस वार्ता में खुलकर भाग लिया।

इस प्रकार यात्रा के आरम्भिक घंटे इन रोचक बातों में बीत गये।

असीवत में हमने ट्रेन पकड़ी और बनी सुवैफ़ के छोटे से गांव में पहुंचे, जहां से हम सीधे उन सन्नोसी से मिलने गये जिन से हमारी भेंट पहले से तै थी।

उनका नाम इस्माईल ज़ैवी था। वह छोटे क़द के मोटे आदमी थे। उनके चेहरे के चिन्हों से उनका हंसमुख और खुश-दिल होना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता था। वह सईद वालों की स्थानीय भाषा में बातें कर रहे थे। यद्यपि वे कपड़े के एक औसत दर्जे के व्यापारी थे, नगर के धनी-मानियों और श्रेष्ठ जनों में उनकी गिनती न थी, फिर भी सन्नोसी आन्दोलन से उनकी वफ़ादारी और लगाव का प्रमाण बहुत से अवसरों पर मिल चुका था। फिर आन्दोलन के संचालक सैयद अहमद के साथ उनके निजी संबंध व प्रेम के कारण उनको सैयद अहमद सन्नोसी का पूरा विश्वास प्राप्त हो गया था।

यद्यपि रात अधिक बीत चुकी थी, पर शेख़ इस्माईल ने खाना तैयार करने के लिए अपने नौकर को जगा दिया और खाने के इन्तिज़ार की मुद्दत में वे अपने वे उपाय बताते रहे जो उन्होंने इस संबंध में किये थे।

सैयद अहमद का पत्र मिलते ही उन्होंने पहला काम यह किया कि वे मिस्र के शाही परिवार के एक ऐसे व्यक्ति से मिले जो वर्षों से सन्नोसी आन्दोलन और सन्नोसी समस्या का जोशीला हामी था। उनको मेरी ज़िम्मेदारी और मुहिम से सूचित किया। अतएव वे इस

बात पर राज़ी हो गये कि जितनी रक़म की ज़रूरत होगी, वह मुझे दी जायेगी। इसके अलावा इस रेगिस्तानी यात्रा में बर्क़ा की सीमाओं तक दो मार्ग-दर्शक मेरे साथ रहेंगे।

ये दोनों मार्ग-दर्शक बनी सुवैफ़ के बाहर खजूर के बाग़ के एक कोने में पहुंच कर चलने के लिए मेरा इन्तिज़ार करने लगे। अब मैंने और ज़ैद ने हिजाज़ी वस्त्र उतार दिये, इसलिए कि वह रास्ते में यात्रियों के ध्यान को ख़ामख़ाही हमारी ओर आकृष्ट कर सकते थे। उसके स्थान पर दो ऊनी इबायें और उत्तरी अफ्रीक़ा में चालू दो और कपड़े पहन लिए। इसके ऊपर 'बरनुस' डाल ली जो पश्चिमी मिस्र और लीबिया के निवासियों का पहनावा है।

इस्माईल अपने घर के तहख़ाने से इटली की बनी हुई दो बन्दूक़ें ले आये। इस प्रकार की बन्दूक़ें मुजाहिदों से ज़रूरत भर आसानी से मिल सकती थीं।

दूसरी रात हमने अपने मार्ग-दर्शकों की रहनुमाई में उस शहर से चलना शुरू किया। हमें यह मालूम हुआ कि हमारे ये दोनों मार्ग-दर्शक मिस्र के एक क़बीले "औलादे अली" से संबंध रखते हैं। जिसमें सन्नोसी आन्दोलन के हिमायतियों की बहुत बड़ी संख्या पाई जाती है। इनमें से एक का नाम अब्दुल्लाह था– जो हंसमुख, मुस्तैद और तेज़ नवजवान था। वह एक साल पहले बर्क़ा की लड़ाई में शरीक हुआ था। इसलिए उसने वहां के बारे में हमें सविस्तार बताया।

दूसरे का नाम मैं भूल गया हूं। वह बहुत दुबला-पतला, कम बोलने वाला और गम्भीर स्वभाव का व्यक्ति था। फिर भी बुद्धिमत्ता के साथ कर्त्तव्य पालन में वह अब्दुल्लाह से कैसे भी कम न था।

चारों ऊंट जो हम लोगों के साथ थे, बहुत तेज़ रफ़्तार और

बहुत अच्छी नस्ल के थे। अरब के चलन के अनुसार वे अपनी पीठ पर बहुत सा सामान लादे हुये थे। चूंकि हमें बहुत तेज़ रफ़्तारी के साथ बढ़ना था और रास्ते में कम से कम रुकना था, इसलिए ताज़ा पके हुये खाने का प्रश्न ही नहीं था। एक बड़ी-सी थैली थी जिसमें तमाम खजूरें भर ली गई थीं। एक उससे कुछ छोटी थैली थी जिसमें गेहूं और खजूर के बिस्कुट थे, पानी की तीन मशकें थी जो तीन ऊंटों पर रखी हुई थीं।

आधी रात के करीब इस्माईल विदा होते हुये हम से गले मिले और हमारी सफलता के लिए दुआ की। गहरे प्रभावों के चिन्ह उन के चेहरे पर साफ़ प्रगट थे। फिर अब्दुल्लाह आगे बढे और एक ही क्षण में मरूद्यान हमारे पीछे छूट चुका था। हम चांद की तेज़ रोशनी में उस रेगिस्तान के भीतर उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ रहे थे।

चूंकि इसका बड़ा ख़तरा था कि मिस्र की सीमावर्ती चौकियों की मोटरें और ऊंट जैसा कि रेगिस्तान में आते-जाते थे, कहीं हमारे काफ़िले के सामने न आ जायें, इसलिए हमनें कोशिश की यथासम्भव क़ाफ़िलों के आम रास्ते से हट कर चले, फिर भी चूंकि बहरिया और नील की घाटी के मध्य गमनागमन साधारणतः फ़्यूम के रास्ते से होता था, जो उत्तरी क्षेत्र में था, इसलिए बहुत ज़्यादा ख़तरे की बात न थी।

विदाई की पहली रात को हमने लगभग ३० मील का फ़ासला तै कर लिया। दिन बिताने के लिए 'टिर्मस' के वन के एक झुंड में हम लोग आराम करने के लिए उतर गये। दूसरी रात और उसके बाद की तमाम रातों में हम लोगों की रफ्तार बहुत तेज़ रही। चौथे दिन सुबह से पहले ही हम लोग तराई के उस क्षेत्र में पहुंचे जहां बहरिया का मरुद्यान स्थित था।

जब हम उस मरूद्यान के बाहर कुछ बड़ी-बड़ी चट्टानों की आड़ में छिपे हुये थे (जो विभिन्न ख़ानक़ाहों और बस्तियों पर

सम्मिलित था, जिसमें सबसे अहम गांव बादियती था) तो अब्दुल्लाह पथरीले ढालू रास्ते से निचले इलाक़े की ओर उतरे जो खजूर के पेड़ों से ढका हुआ था। वह उस व्यक्ति से संबंध जोड़ने जा रहा था, जिस से हमको "बादियती" में मिलना था। चूंकि रात से पहले उनका आना संभव न था, इसलिए हम लोग इस कठिन और थका देने वाली यात्रा के बाद कुछ आराम पाने और सोने के लिए लेट गये। यह अलग बात है कि मुझे नींद नहीं आ सकी और विभिन्न प्रकार के विचार मेरे मस्तिष्क को बराबर परेशान करते रहे।

जब मैंने अपनी स्कीम पर विचार किया तो इस नतीजे पर पहुंचा कि बनी सुवैफ़ और बहरिया के बीच गुप्त रूप से डाक व परिवहन का संबंध बनाये रखना कुछ अधिक कठिन बात नहीं है, यहां तक कि बड़े-बड़े क़ाफ़िले इन दोनों केन्द्रों के मध्य (अगर सावधानी से काम लिया जाता) आ-जा सकते थे। यद्यपि बादियती में सीमावर्ती चौकी मौजूद थी और हमें अपने इस गुप्त निवास से उसकी सफ़ेद इमारतें साफ़ दिखाई पड़ रही थीं, फिर भी एक गुप्त और गश्ती ट्रान्समीटर की बहरिया के दक्षिण में व्यवस्था की जा सकती थी। इस विचार को उस समय और दृढ़ता प्राप्त हुई जब अब्दुल्लाह और उस बर्बरी व्यक्ति से, जो उसके साथ आये थे, भेंट हुई। उन्हीं से मालूम हुआ कि सेना इस मरुद्यान की पूरी निगरानी नहीं करती। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वहां के निवासी सन्नोसी आन्दोलन के जोशीले समर्थक थे।

अब पांच रातों की फिर अनवरत यात्रा थी। पहले तो रेत से भरा हुआ मैदान, पथरीली और कठिनाई से पार की जाने वाली घाटियां, उसके बाद रेतीले टीले फिर "सुतरे" की हरियाली जो आबादी से बिल्कुल ख़ाली थी। नीले रंग की नमकीन पानी की झील थी और जंगली खजूर के झुंड, उसके नीचे उतर कर विचित्र शक्लों की कुछ चट्टानें थीं जो चांदनी में ऐसी लग रही थीं जैसे भूत-प्रेत।

पांचवीं रात की समाप्ति पर हमारी नज़र मरुद्यान 'सीवा' पर पड़ी। वर्षों से मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं इस दूरस्थ मरुद्यान की सैर करूं, जहां किसी समय "आमून" का प्रसिद्ध पूजा-घर था जिसके कारण वह पूरे संसार में प्रसिद्ध है, पर मेरी यह इच्छा किसी कारण पूरी न हो सकी थी, इस इच्छा के पूरा होने का समय अब क़रीब आ गया था, वह मेरी पहुंच में था। खजूरों के पेड़ों के भीतर एक छिपा हुआ टीला था, जिस पर नगर के मकान खड़े थे, आगे-पीछे। एक ऊंचा सा मनारा भी था जो टीले की चोटी पर, क़ायम था। मिट्टी के मकानों का वह विचित्र योग था, इस प्रकार का जैसे कोई सपने में देखे। मेरे मन में बार-बार आया कि मैं उसकी सीमाओं में दाख़िल होऊं और उसकी गलियों में घूमूं, जिन्होंने फ़िरऔनों का समय देखा है। पूजा-घर के उन बचे-खुचे खंडहरों का मुआयना करूं जहां लीड़िया (Lydia) के बादशाह क्रोसस (Croesus) ने वह ईश-वाणी सुनी थी जिसने उसके जीवन का अन्त कर दिया था और जिसमें स्कन्दर मक़दूनी से संसार पर विजय पा जाने का वायदा किया गया था।

पर इस बार भी मेरी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। यद्यपि मैं सीवा से बहुत क़रीब था, पर उसके द्वारा मेरे लिए बन्द थे। वाह्य जगत से बिल्कुल अलग और इस निर्जन व वीरान जगह में जाना वर्तमान स्थिति में एक अनुचित कार्य था। इसका कारण यह था कि सीवा, चूंकि लीबिया की सीमा के निकट स्थित था, इसलिए सीमावर्ती चौकी की कड़ी निगरानी और कन्ट्रोल में था। इसमें इटली की ओर से जासूस और गुप्तचर भी नियुक्त थे जिन्हें सरकार की ओर से रुपये मिलते थे। मैंने अपने दिल को तसल्ली दी कि शायद इस यात्रा में उसकी सैर मेरे भाग्य में न थी, अतएव दक्षिण की ओर से नगर का एक चक्कर काट के हम लोग जंगली खजूरों के

झुंड में आ गये, पर अब्दुल्लाह कुछ भी आराम किये बिना, क़रीब के छोटे गांव की ओर चल पड़ा, इसलिए कि सीमा से इतने निकट हम लोग आवश्यकता से अधिक ठहरना उचित नहीं समझते थे। उसे उस व्यक्ति की खोज थी, जिसको सैयद अहमद ने इस पर नियुक्त किया था कि इस सीमा के पार हमारा साथ दे और हमारी रहनुमाई करे। कुछ घंटों के बाद वह दो नये मार्ग-दर्शक और चार ऊंट लेकर आ गया। इसलिए कि ये चार ऊंट बहुत थक चुके थे। ये दोनों मार्ग-दर्शक हरित पर्वत के बराअसमा और उमर-अल मुख़्तार क़बीलों के लोगों में से थे। उनको मुख्य रूप से इसलिए भेजा गया था ताकि जग़बूब और जालू के मध्य (जिन पर इटली का अधिकार था) जो फ़ासला है वहां से बरक़ा के ऊपरी भाग तक, जहां उमर-अल मुख़्तार का केन्द्र है, वे हमारी रहनुमाई करें।

हमनें अब्दुल्लाह और उसके साथ को विदाई दी ताकि वे मिस्र के अपने गांव को वापस हो जायें और ख़लील और अब्दुर्रहमान की रहनुमाई में हमने उस विशाल मरुस्थल की यात्रा शुरू की जो क़रीब-क़रीब पानी से ख़ाली था और हरित पर्वत के क़रीब पहुंचने पर थोड़ा-थोड़ा बुलन्द होता गया था। यह रेगिस्तानी यात्रा अब तक की यात्राओं से कहीं अधिक परिश्रम चाहती थी। वहां कुएं इतने लम्बे-लम्बे फ़ासले पर थे कि उन्होंने हमारी इस यात्रा को एक भयानक सपना सा बना दिया था। इस पूरी यात्रा में हम केवल एक बार मुर्रा घाटी के एक दूरस्थ कुएं से अपने ऊंटों को पानी पिलाने और अपनी मश्कें भरने में सफल हो सके।

हम लोग कुएं के पास अप्रत्याशित रूप से तनिक विलम्ब से पहुंचे। जब हमने पानी खींचना शुरू किया, उस समय फ़ज्र की पौ फट रही थी। जब हम पानी ले चुके उस समय सूर्य निकल रहा था। हमें उस पथरीले निचले भाग में, जहां हमें दिन को छिपना था, पहुंचने के लिए दो घंटे चाहिए थे।

ज्यों ही हमने चलना शुरू किया, एक हवाई जहाज़ की आवाज़ ने इस रेगिस्तान की चुप्पी तोड़ दी। कुछ मिनट के भीतर ही हमारे सिरों पर एक छोटा हवाई जहाज़ मंडला रहा था। देखते ही देखते वह एक भाग की ओर झुकते हुए ज़मीन से क़रीब होने लगा। यहां छिपने की भी कोई जगह न थी।

हम लोग तुरन्त ऊंटों से कूद कर ज़मीन पर आ गये और फैल गये। ठीक उसी समय हवाई जहाज़ ने गोलियां बरसाना शुरू कर दीं।

"ज़मीन पर लट जाइऐ, बिना हिले डुले पड़े रहिये। ऐसा ज़ाहिर कीजिये कि आप ख़त्म हो गये हैं।" मैं चीख पड़ा।

पर ख़लील ने मुजाहिदों के साथ रह कर शायद इन चीज़ों का वर्षों तजुर्बा किया था, उन्होंने मरने का प्रदर्शन नहीं किया, बल्कि इत्मीनान से एक पत्थर पर सिर रख कर चित्त लेट गये और अपनी बन्दूक़ अपने घुटनों से टेक कर हमलाकर हवाई जहाज़ पर गोली चलना शुरू कर दी वह अन्धाधुन्ध गोली नहीं चला रहे थे, बल्कि बड़े नियमित रूप से और शान्तिपूर्वक निशाना लगाकर इस तरह गोली चला रहे थे मानो वे निशानेबाज़ी का अभ्यास कर रहे हों। वास्तव में उनका यह कार्य बड़ी वीरता का था। जहाज़ गोली बरसाता हुआ यकायकी उनकी ओर झुका। ऐसा जान पड़ता था जैसे उसके एक पर पर गोली लगी हो। इसके बाद परन्तु ही रुख़ बदल कर वह तेज़ी के साथ ऊपर की ओर उड़ गया। शायद यान चालक ने यह सोचा कि चार आदमी को मार कर बेमतलब अपने आप को ख़तरे में डालना मूर्खता है, इसलिए वह दो-एक बार घूम-फिर जग़बूब की ओर पूरब में ओझल हो गया।

जब हम दुबारा जमा हुये तो ख़लील ने बड़े इत्मीनान से कहा कि ये दुष्ट इटली वाले बहुत कायर होते हैं। वे यह चाहते हैं कि

दूसरों को तो क़त्ल करें पर उनकी खाल को खरोंच भी न आये।

हममें से कोई भी घायल नहीं हुआ, पर अब्दुर्रहमान का ऊंट हलाक हो गया। हमने उसका सामान ज़ैद के ऊंट के ऊपर लाद दिया और अब्दुर्रहमान उनके पीछे सवार हो गये। तीन रातों की यात्रा के बाद हम हरित पर्वत की सनूबरी झाड़ियों के वनों में पहुंच गये। इन थके-मादे ऊंटों को हमने वहां छोड़ा और उनके स्थान पर घोड़े लिये, जिनको मुजाहिदों के गिरोह के कुछ व्यक्ति हमारे लिए लाए थे।

अब रेगिस्तान हमारे पीछे था। हम उस इलाक़े में चल रहे थे, जो अच्छी भली ऊंचाई पर था। इसमें काफ़ी टीले और चट्टानें थीं जिसके बीच-बीच में शुष्क घाटियां थीं, जिन में सनोबरी झाड़ियों के वन थे। कुछ जगह ये पेड़ इतने घने हो जाते थे कि उनको हटाकर आगे बढ़ना कठिन होता। यह निर्जन तथा वीरान क्षेत्र, जिसमें रास्ते का कोई निशान न था और जो इटली राज्य के आधीन था, इस क्षेत्र का मध्य भाग था, जिस को मुजाहदों के शिकार के लिए मुख्य रूप से इस्तेमाल किया जाता था।

चार और रातों के बाद हम ताबान घाटी पहुंच गये। यहां हमें उमर मुख़्तार से मिलना था। हम एक छोटी घाटी में छिप गये जो घने पेड़ों से ढकी हुई थी। एक चट्टान से अपने घोड़ों को बांध दिया और हरित पर्वत के शेर के इन्तिज़ार में वहां बैठ गये। रात बड़ी अंधेरी थी और वायुमण्डल पर गहरी चुप्पी छायी हुई थी।

हमको श्री उमर का कई घण्टे इन्तिज़ार करना पड़ा। चूंकि अंधेरा बहुत था, इसलिए हमारे मार्ग-दर्शकों ने इसमें कोई आपत्ति न समझी कि हम बसूफिया के कुओं से अपनी मश्कों में पानी भर लें जो यहां से पूरब में कुछ मील के फ़ासले पर थे, यह सही है कि बसूफ़िया के आधे मील के फ़ासले ही पर इटली वासियों का एक केन्द्र मौजूद था।

पर ख़लील ने कहा—

"ये दुष्ट और कायर इटलीवासी इतनी अंधेरी रात में अपने घरों से निकलने का साहस नहीं कर सकते।"

तात्पर्य यह कि ख़लील और ज़ैद घोड़े पर सवार हुये और दो ख़ाली मश्कें अपने साथ ले लीं। उन्होंने घोड़ों के खुर कपड़े से बांध दिये थे ताकि चट्टान पर घोड़े की टाप की आवाज़ न पैदा हो। मैं और अब्दुर्रहमान अपनी जगह पर रहे और एक नीची चट्टान से टेक लगाकर गर्मी प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से बिल्कुल मिल कर लेट गये, इसलिए कि इस अवसर पर आग सुलगाना ख़तरे को बुलाना था।

लगभग घंटे भर के बाद हमने सनोबर के पेड़ों में कुछ खड़खड़ाहट महसूस की, पत्थर से नाल के टकराने की आवाज़ आई। मेरे दोस्त अब्दुर्रहमान तुरन्त खड़े हो गये और बन्दूक़ अपने हाथों में लेकर अंधेरे में घूरने लगे। इसके बाद झाड़ी से गीदड़ के बोलने की आवाज़ आई। अब्दुर्रहमान ने अपना हाथ अपने मुंह के पास ले जाकार उस आवाज़ की नक़ल की। इतनी देर में दो व्यक्ति नंगे पैर बन्दूक़ें ताने हुये झाड़ी से निकले। जब वे हमसे क़रीब हुये तो उन्होंने कहा, " फ़ी सबीलिल्लाह् (अल्लाह की राह में)"

अब्दुर्रहमान ने उत्तर दिया, ला होला व ला कुव्वता इल्ला बिल्लाह (सारी शक्ति अल्लाह के हाथ में है)।" उस समय मुझे पता चला कि ये वे संकेत शब्द हैं जिसे मुजाहिद ऐसे अवसरों पर इस्तेमाल करते थे।

फिर मुझे पता चला कि इन आने वालों में से एक व्यक्ति अब्दुर्रहमान को जानता है, इसलिए कि उसने दोनों हाथ मिलाये और हार्दिक अभिनन्दन किया। फिर अब्दुर्रहमान ने मुझे इन दोनों से मिलाया।

"अल्लाह आप की सहायता करें। श्री उमर आने वाले हैं।"— उसने कहा।

हम चुप-चाप खड़े हो गये। लगभग दस मिनट के बाद हमने पेड़ों के पत्तों में खड़खड़ाहट सुनी और तीन व्यक्ति उसमें से निकले। हर व्यक्ति विभिन्न दिशाओं से आ रहा था। वे बन्दूकों से हमारी ओर निशाना लगाये हुये थे। जब उन्होंने अच्छी तरह इत्मीनान कर लिया कि हम वास्तव में वही लोग हैं जिन से उन्हें मिलना है तो दुबारा विभिन्न दिशाओं से उलटे पांव वापस हो गये। अब यह बात स्पष्ट थी कि उनकी यह गतिविधि अपने नेता की सुरक्षा की गारंटी के लिए थी।

थोड़ी देर के बाद उमर अपने छोटे घोड़े पर जिसके खुर पर कपड़ा लिपटा हुआ था आ गये। उनको दो-दो सवार हर दिशा में घेरे में लिये हुये थे और उनके पीछे अनेकों व्यक्ति और थे। जब वे हमारी चट्टानों के क़रीब हुये तो उनके आदमियों ने बढ़कर उनको घोड़े से उतरने में मदद दी। मैंने देखा कि वे कठिनाई के साथ चल रहे हैं (बाद में मुझे मालूम हुआ कि लगभग दस दिन हुये, एक मुक़ाबले में उनके पैर में सख़्त चोट आ गई है।)

चांद की तेज़ रोशनी में अब मैं उनको अच्छी तरह देख सका। वह एक मध्यम क़द के, सुडौल और मज़बूत शरीर के आदमी थे। उनकी छोटी दाढ़ी, जो बर्फ़ की तरह सफ़ेद थी, उनके झुर्रियों वाले चेहरे पर भली मालूम हो रही थीं। उनकी आंखें गहरी थीं। पलकों को देखकर हर व्यक्ति कह सकता था कि सामान्य परिस्थितियों में ये आंखें हंसने और मुस्कराने वाली रही होंगी, पर अब इसमें, अंधेरा, कष्ट, साथ-साथ वीरता के अलावा और कुछ न था।

उनके अभिनन्दन के लिए मैं आगे बढ़ा। उस समय मुझे उस शक्ति का एहसास हुआ, जिस शक्ति से उन्होंने हाथ मिलाते हुये मेरा हाथ दबा दिया था।

"बधाई मेरे बेटे!"

अपनी निगाहों से टटोलते हुये उन्होंने कहा। ये उस व्यक्ति की निगाहें थीं जिसके लिए यह नित्य का काम था कि मौत से खेल जाये, और जोखिम में कूद पड़े।

उनके एक व्यक्ति ने ज़मीन पर कम्बल बिछा दिया। श्री उमर उस पर टेक लगाये हुये बैठ गये। अब्दुर्रहमान उनके हाथ चूमने के लिए झुके। फिर उनसे इजाज़त लेकर चट्टान के नीचे थोड़ी सी आग जलाई और उसकी हल्की रोशनी में सैयद उमर ने वह पत्र पढ़ा जो सैयद अहमद ने उनको लिखा था। उन्होंने इस पत्र को बड़े चाव और प्रेम के साथ पढ़ा, फिर लपेट कर थोड़ी देर के लिए उसे अपने सिर पर रखा जो मान-सम्मान देने का एक तरीक़ा है, इसका चलन अरब प्रायद्वीप में तो बहुत कम, पर उत्तरी अफ्रीक़ा में बहुत ज़्यादा है। फिर उन्होंने मुस्कराते हुये मेरी ओर रुख़ किया—

"सैयद अहमद ने— अल्लाह उन्हें दीर्घायु करे— अपने पत्र में आप की बड़ी प्रशंसा की है। आप हमारी सहायता के लिए तैयार हैं, पर मैं नहीं समझता कि इस समय ख़ुदा के अलावा भी सहायता कहीं से आ सकती है। सच्ची बात है हमारा समय क़रीब आ गया है।"

"पर क्या सैयद अहमद की पेश की हुई यह स्कीम हमारे लिए नए जद्दोजेहद का आरम्भ नहीं बन सकती है।" मैंने कहा, "अगर कफ़रा से सामान और हथियार सप्लाई होते रहे तो क्या इटली वालों को आगे बढ़ने से रोका नहीं जा सकता।"

सैयद उमर के चेहरे पर हसरतों से भरी हुई ऐसी तीखी और फीकी मुस्कान फैल गई, कि ऐसी मुस्कान अपने जीवन में मैं ने कभी नहीं देखी थी। उन्होंने उत्तर देते हुये कहा—

"कफ़रा? कफ़रा को तो हम खो चुके हैं। लगभग एक सप्ताह हुआ कि इटली का उस पर अधिकार हो चुका है।

इस ख़बर ने तो मेरी चेतना ही खोदी। मैं और सैयद अहमद पिछले कुछ महीने यही सोच कर योजनायें तैयार करते रहे थे कि कफ़रा सामान और हथियार के लिए बड़ा अच्छा केन्द्र बन सकता है। पर अब कफ़रा को हम हार चुके हैं। हमारे लिए हरित पर्वत के ऊपरी भाग के अलावा अब कोई जगह नहीं।

"और कफ़रा पर उनकी विजय हुई कैसे?" मैंने पूछा।

सैयद उमर ने बड़े, थके हुये अन्दाज़ में अपने एक व्यक्ति को क़रीब आने का इशारा किया। यह साहब आप को पूरी कहानी सुनायेंगे। यह उन कुछ बचे-खुचे लोगों मे से हैं जो कफ़रा से किसी प्रकार भाग निकलने में सफल हो गये हैं। यह हमारे पास कल ही पहुंचे हैं।

वह साहब मेरे सामने आकर बैठे और अपनी इबा समेटते हुये धीरे-धीरे उन्होंने कहना शुरू किया। उनके स्वर में किसी प्रकार की लज्जा न थी। हां उनके कमज़ोर चेहरे पर उन तमाम दुखों और कष्टों की प्रति छाया अवश्य थी। उन्होंने अपनी आंखों से जो सब कुछ देखा था, बताना शुरू किया--

"उन्होंने (अर्थात् इटली वालों ने) तीन टुकड़ी बना कर तीन दिशाओं से हमें घेर लिया। उनके साथ कवचधारी गाड़ियां और बड़ी तायदाद में भारी-भारी तोंपें थीं। उनके जहाज़ों ने बहुत नीचे उड़ान भरते हुये घरों, मस्जिदों, खजूर के बाग़ों पर बम-वर्षा की।

हमारे पास कुछ सौ ऐसे आदमी थे जो हथियार उठा सकते हों, शेष औरतें बच्चे और बूढ़े थे। एक-एक घर के लिए हम लड़े पर वे हम से कहीं अधिक शक्तिशाली थे। अन्त में केवल एक गांव "हवारी" हमारे क़ब्ज़े में बाक़ी रह गया। हमारी बन्दूक़ें उनकी कवचधारी गाड़ियों को कोई क्षति न पहुंचा सकीं? परिणाम यह निकला कि वे हम पर विजयी हो गये। हममें से बहुत कम लोगों को

भागने का अवसर मिल सका। जहां तक मेरा संबंध है मैं खजूर के एक बाग़ के भीतर छिप गया था और मौक़े की घात में था कि किसी प्रकार शत्रु के ठिकानों को पार कर के भाग निकलूं।

रात भर मैं औरतों का विलाप और चीख व पुकार सुनता रहा। इटली और अरीटोरिया की सेनायें इन्हें लूटती रहीं।

दूसरे दिन एक बूढ़ी औरत ने मुझे कुछ रोटी और पानी दिया। उसने मुझे यह भी बताया कि इटली के जरनैल ने, जितने आदमी गांव में ज़िन्दा बच गये थे, सब को इमाम सैयद मुहम्मद मेहदी की क़ब्र पर जमा किया, उनके कुरआन मजीद को फाड़कर अपने जूतों से रौंदा और चिल्ला कर कहा, "अब अपने बद्दू नबी को बुलाओ। अगर उसमें कुछ शक्ति है तो तुम्हारी सहायता करे।" फिर उसने नख़लिस्तान के तमाम पेड़ों को काट देने का हुक्म दिया और कुओं को तबाह व बरबाद करवा दिया। सैयद अहमद बदवी की लाइब्रेरी में जितनी पुस्तकें थीं, सब जला दीं। दूसरे दिन उसने हुक्म दिया कि तमाम उलेमा और धर्मात्माओं को हवाई जहाज़ पर ले जाकर बहुत ऊंचाई से नीचे फेंक दिया जाये।

रात भर मैं औरतों की चीखें, फ़रियादें, सैनिकों के ठहाके और बन्दूक़ों की सनसनाहट सुनता रहा। अन्त में रात के अंधेरे से लाभ उठाकर मैं रेगिस्तान की ओर चल पड़ा। मुझे रास्ते में एक ऊंट मिल गया और मैं उस पर सवार हो तेज़ी से भाग निकला।"

जब इन साहब ने अपनी यह करुण कहानी समाप्त की तो सैयद उमर ने नम्रता और प्रेम-भाव के साथ मुझे अपने निकट किया और अपनी बात दुहराई—

"अब शायद आप भी समझ गये होंगे कि सच में हमारा अन्त निकट आ लगा है।"—

फिर उन्होंने अपनी बात-चीत इस ढंग से जारी रखी मानो

उन्होंने वह बात पढ़ ली थी, जो मेरी आंखें कह रही थीं—

"अब तो हम केवल इसलिए लड़ाई लड़ रहे हैं कि हमें अपने धर्म और अपनी स्वतंत्रता के लिए ऐसा करना चाहिए, यहां तक कि या तो शत्रु परास्त हो जायें या हम अपनी जान दे दें। इसके अलावा हमारे सामने और कोई विकल्प नहीं है। — हमने अपने बाल-बच्चों को मिस्र भेज दिया है ताकि मरते समय हम उनकी ओर से सन्तुष्ट रहें।"

यकायकी हमने घड़घड़ाहट की आवाज़ सुनी, जो काले आसमान से आती हुई जान पड़ती थीं। तुरन्त ही सैयद उमर के एक आदमी ने आग पर रेत डाल दी। बहुत ऊंचाई पर एक हवाई जहाज़ गिरता हुआ दिखाई दिया, जो चांद की हल्की रोशनी में बादलों के भीतर एक छाया के समान था।

मैंने कहा—

"पर सैयद उमर! क्या यह उचित नहीं है कि मुजाहिदों के दल को साथ लेकर कुछ दिनों के लिए मिस्र चले आयें, जबकि रास्ता इस समय खुला हुआ है। मिस्र में इसकी सम्भावना बहुत है कि बर्का के मुजाहिदों को संगठित करके उन्हें एक सजीव व कर्मठ शक्ति में बदल दिया जाये। मेरे विचार से लड़ाई को कुछ समय के लिए ख़त्म हो जाना चाहिये ताकि लोग नये सिरे से अपनी शक्ति इकट्ठी कर सकें। मेरा विचार है कि मिस्री सरकार अपनी सीमाओं के निकट इटली की सेनाओं के जमाव को अच्छी नज़र से नहीं देखेगी, इसलिए वह जान-बूझकर आप लोगों की गतिविधियों और सामरिक तैयारियों से आंखें चुरा लेगी, बस शर्त यही है कि आप उसको इस बात से सन्तुष्ट कर दें कि आपका शत्रु वास्तव में इटली है।"

उन्होंने उत्तर दिया—

"कदापि नहीं बेटे, कदापि नहीं। आज से दस-पन्द्रह साल

पहले जब सैयद अहमद ने तुर्की के समर्थन में ब्रिटेन से लड़ाई का एलान किया था। (यद्यपि तुर्कों ने हमारी कोई सहायता नहीं की) उस समय तो यह सम्भव था, पर अब कैसे भी सम्भव नहीं है। ब्रिटिश सरकार अब हमारे लिए एक उंगली को भी नहीं हिला सकती। दूसरी ओर इटली अन्त तक लड़ने का निश्चय कर चुका है। अगर मैं और मेरे साथी मिस्र चले गये तो फिर वहां से कभी वापस नहीं आ सकेंगे। फिर यह हम कैसे कर सकते हैं कि अपनी जाति को बिना किसी नेता के उनके शत्रुओं की दया व कृपा पर छोड़ कर चले जायें।''

''सैयद इदरीस की इस मामले में क्या राय है? क्या वह आप से सहमत हैं?'' मैंने पूछा।

''सैयद इदरीस निस्सन्देह बहुत अच्छे आदमी हैं और बड़े बाप के बेटे हैं। पर अल्लाह ने उनको इतना मज़बूत दिल नहीं दिया है कि वह इस संघर्ष और इन कष्टों को सहन कर सकें।''

सैयद उमर को मालूम था कि अब उन्हें केवल मौत का इन्तिज़ार है। जिस समय वह स्वतंत्रता-मार्ग में अपनी लम्बी लड़ाई के निश्चित परिणाम के बारे में बातें कर रहे थे उस समय मैंने उनकी आवाज़ में एक गहरी गम्भीरता महसूस की, पर घुटन नहीं। वह जानते थे कि मौत उनका इन्तिज़ार कर रही है। वह न मौत से भयभीत थे न उसके लिए लालायित ही।

इसी प्रकार उन्होंने इस से बचने की भी कोई कोशिश नहीं की और मुझे पूरा विश्वास है कि अगर उन्हें यह मालूम हो जाता कि किस प्रकार की मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, तब भी वह उससे बचने की कोशिश न करते। उनको इस बात का पूरा और पक्का यक़ीन था कि आदमी अपना नतीजा हर समय अपने साथ रखता है। वह जहां भी जाता है और जो कार्य भी करता है, वह उसके लिए पहले से निश्चित होता है।

यकायकी हमने जंगल में कुछ खड़खड़ाहट सुनी, इतनी हल्की कि सामान्य परिस्थिति में उसकी ओर ध्यान भी नहीं जा सकता था, पर यह साधारण परिस्थिति न थी, इसलिए मैंने अपने कान खड़े कर लिये और हर ओर ध्यान से देखने लगा। फिर मुझे ऐसा लगा मानो वे आवाज़ें रुक गई हों, पर कुछ क्षण वाद उनका सिलसिला फिर शुरू हो गया। आख़िर में झाड़ियां खुलीं और उनमें से ज़ैद और ख़लील वाहर आये। घोड़ों पर मशकें लदी हुई थीं। ज्यों ही ख़लील की नज़र सैयद उमर पर पड़ी, वह उनका हाथ चूमने तेज़ी से झपटे, फिर मैंने उनसे ज़ैद का परिचय कराया। उनकी तेज़ निगाहें पूरी पसन्द के वाद ज़ैद के सुडौल शरीर और गम्भीर चेहरे पर केन्द्रित हो गईं, फिर उन्होंने उनके कन्धे पर हाथ रखते हुये कहा:—

"स्वागत है मेरे भाई? मेरे पुरखों की भूमि से आने वाले, आप अरव के किस क़बीले से संवंध रखते हैं?"

जव ज़ैद ने उन्हें वताया कि वह शिम्र क़बीले से संबंध रखते हैं, तो उन्होंने मुस्कराते हुये कहा—

"अच्छा तो आप हातिम ताई के क़वीले से संवंध रखते हैं, जो वहुत वड़ा दाता था।"

हमारे सामने सैयद उमर के कुछ आदमियों ने खजूर रख दी और जव हम वह सादा खाना खा चुके तो वृढ़े मुजाहिद ने खड़े होते हुये कहा—

"अव हमको यहां से हट जाना चाहिये। हम वूसफ़िया के इटली केन्द्र से वहुत क़रीव हैं, इसलिए हम सुवह तक यहां नहीं रह सकते।"

अतएव घोड़ों पर सवार होकर हम लोग सैयद उमर के पीछे हो लिये। हमारे पीछे शेष तमाम आदमी पैदल चल रहे थे। जव

हम घाटियों को पार करके बाहर आये तो हमने देखा कि यहां आशा से कहीं अधिक आदमी थे, एक के पीछे एक करके चट्टानों और खोहों की आड़ से अंधेरे साये निकल रहे थे और एक क़तार बनाकर हमसे मिलते जा रहे थे।

इसका अन्दाज़ा करना कठिन था कि वे कितने आदमी होंगे, इसलिए कि सब हरकत कर रहे थे। उन पर ऐसी चुप्पी छायी हुई थी जैसे वे (Red Indians) के स्काउट हों।

फ़ज्र से कुछ पहले हम उनके मुख्य हैडक्वार्टर पहुंच गये जहां उस समय लगभग २०० व्यक्ति ठहरे हुये थे। यह हैडक्वार्टर एक तंग और गहरे दर्रे में स्थित था। चट्टानों के नीचे कई जगह आग जल रही थी। कुछ लोग ज़मीन पर सो रहे थे। कुछ लोग हथियार साफ़ कर रहे थे, कुछ पानी ला रहे थे और कुछ खाना पकाने में व्यस्त थे, कुछ ऐसे थे जो उन कुछ घोड़ों की सेवा और निगरानी पर नियुक्त थे, जो इधर-उधर पेड़ों से बंधे हुये थे। सब लोग फटे-पुराने कपड़े पहने हुये थे। इस पूरी पार्टी में (उस समय और उसके बाद भी शायद) एक बार भी मेरी दृष्टि किसी इबा या जुब्बा पर नहीं पड़ी, बहुत से ऐसे लोग थे जिनकी मरहम-पट्टी की जा रही थी, मुझे उन दो औरतों को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ जो हैडक्वार्टर में काम कर रही थीं, इनमे से एक नव-जवान थीं और दूसरी बड़ी उम्र की। वह एक जगह आग के क़रीब बैठी हुई किसी फटी ज़ीन को सीने में व्यस्त थी।

सैयद उमर ने मेरे इस हाव-भाव को नोट किया और कहने लगे, जहां भी हम जाते हैं, ये दोनों बहनें हमारे साथ-साथ रहती हैं। उन्होंने हमारी दूसरी औरतों और बच्चों के साथ मिस्र की शान्ति स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यह मां है और यह उसकी बेटी है। इनके घर के सब लोग लड़ाई में काम आ चुके हैं।

दो दिन और दो रातें में बराबर (इस बीच हैडक्वार्टर यहां से हरित पर्वत की घाटियों में बदल दिया गया था) सैयद उमर के साथ मुजाहिदों के रसदी सामान की व्यवस्था के बारे में बातें करता रहा जो थोड़ी मात्रा में मिस्र से अब तक प्राप्त हो रहा था। स्पष्ट है कि अंग्रेज़ (सैयद इदरीस सन्नोसी से समझौते के बाद जो युद्ध बन्दी के समय में हुआ था) यह चाहते थे कि मिस्र में सन्नोसियों की गतिविधियों से एक हद तक उदारता दर्शाई जाये, जबकि ये गतिविधियां स्थानीय हलचलों और प्रबंधों तक सीमित थीं, उन्होंने मुजाहिदों की छोटी-छोटी टुकड़ियों से भी आंखें बचाई जो समय-समय पर इटली की रेखाओं को पार करके हुलूम पहुंच जाती थीं, हुलूम तट पर आबाद सबसे क़रीब मिस्री शहर था जहां वे अपना लूटा हुआ माल जो प्रायः इटली के खच्चरों पर सम्मिलित होता था, बेचकर खाद्य पदार्थ प्राप्त करते थे, जिसकी उनको बड़ी आवश्यकता थी। पर इसमें बड़ा ख़तरा था और यह कारवाई अधिक समय तक जारी नहीं रखी जा सकती थी, मुख्य रूप से इस स्थिति में जबकि इटली वाले पूरी मिस्री सीमा पर बहुत तेज़ी से कांटेदार तारों का जाल बिछा रहे थे। सैयद उमर इस मामले में मुझसे सहमत हो गये कि रसद प्राप्त करने का सबसे अच्छा रास्ता वह है, जिस रास्ते से मैं यहां आया था। बहरिया, फ़रफ़रा, सेवा के मरुद्यानो में तहख़ाने बनाकर! पर उनका विचार था कि इस तरीक़े से अधिक दिनों तक इटली की निगाह से बचना कठिन है।

(बाद में यह बात साफ़ हो गई कि उनका यह सन्देह सही था। कुछ ही महीनों के बाद एक कारवां सच में, खाद्य सामग्री आदि लेकर मुजाहिदों तक पहुंचने में सफल तो हो गया पर जग़बूब और जालू के मध्य गुज़रते वक़्त इटली वालों को इसका पता लग गया और शीघ्र ही दोनों मरुद्यानों के मध्य "बेरतरफ़वी" में एक मज़बूत केन्द्र स्थापित कर दिया गया, जिसने स्थायी रूप से हवाई गश्तों

द्वारा इस प्रकार की हर कोशिश को बहुत ख़तरनाक बना दिया था।)

अब मुझे वापसी की चिन्ता थी।

चूंकि अब मैं यह चाहता था कि इस लम्बे और कठिनाई भरे मार्ग को न अपनाऊं जो पश्चिम की यात्रा में मैंने अपनाई थी, इसलिए मैंने सैयद उमर से पूछा 'क्या कोई दूसरा उचित मार्ग है?' उन्होंने उत्तर दिया है तो, पर ख़तरनाक, कांटेदार तारों को पार करके सलूम की ओर जाना होगा।'

संयोग कि उसी समय मुजाहिदों की एक टोली सलूम से आटा लाने के लिए तैयार थी। मैं भी उसके साथ चल पड़ा।

मैंने और ज़ैद ने उमर मुख़्तार को विदा किया। इसके बाद फिर उनको देखने का मौक़ा न मिल सका, इसलिए कि आठ महीने बाद इटली वालों ने उनको गिरफ़्तार करके फांसी दे दी।

लगभग एक सप्ताह की यात्रा के बाद, जो केवल रात को होती थी, अति कठिन मार्गों, और हरित पर्वत के पूर्वी भाग में सनूबरी झाड़ियों के वनों के भीतर होकर हमारी यह टोली जो लगभग २० व्यक्तियों पर सम्मिलित थी, मिस्र और लीबिया की सीमाओं के नज़दीक पहुंच गई। यहां से वह जगह क़रीब थी जिस को हमारी स्कीम के अनुसार पार करना था। यह जगह संयोग से नहीं मिली थी, बल्कि पहले से जानी-बूझी थी। बात यों थी कि यद्यपि कांटेदार तारों की ये रुकावटें बहुत बड़े क्षेत्र पर फैली हुई थीं, फिर भी कुछ जगहें ऐसी थीं जहां ये तार मात्र ८ फिट लम्बाई और ४ फिट चौड़ाई में थे। और कुछ स्थानों पर तो सीमेन्ट की बुनियाद और खम्भों पर मज़बूत तरीक़े पर तार लपेट दिये गये थे। यह जगह जिसे हमने चुना था, केन्द्र से केवल आधे मील की दूरी पर थी। हम यह जानते थे कि इस केन्द्र में कवचधारी गाड़ियां भी हैं, पर हमें इन

दो स्थानों में बहरहाल एक को श्रेष्ठता देनी थी। एक यह जगह, दूसरी वह जगह जहां कांटेदार तारों की दुहरी या तिहरी क़तारें मौजूद थीं।

इस बात की व्यवस्था पहले से कर ली गई थी कि मिस्री सीमा के भीतर कुछ मील की दूरी पर सन्नोसियों के हामी सवारी के जानवर लिए हमारा इन्तिज़ार करें। इसलिए अब यह आवश्यक नहीं था कि अपने घोड़ों को ख़तरे में डाला जाये। कुछ मुजाहिदों ने उसको दूर ले जाकर खड़ा कर दिया। इस बीच में मैं और ज़ैद और बाक़ी तमाम लोग तार से क़रीब होने लगे। यह लगभग आधी रात का समय था। केवल अंधेरा हमको छिपाये हुये था, इसलिए कि इटली की तमाम सेनाओं ने तमाम पेड़ और झाड़ियां काट डाली थीं ताकि मुज़ाहिद उसमें छिप न सकें।

हमने दो आदमी चौकीदारी के लिए उत्तर और दक्षिण में कई मीटर की दूरी पर खड़े कर दिये ताकि अगर कोई ख़तरा हो तो वे तुरन्त सूचित करें। इसके बाद हमारे छः आदमी तार काटने वाली कैंचियां लिये और चमड़े के मोटे दस्ताने पहने, जो पिछले हमलों में इटली वालों से मिले थे, आगे बढ़े। हम लोगों ने उनकी रक्षा के लिए चारों ओर बन्दूकें तान लीं। यह वास्तव में बहुत नाज़ुक वक़्त था। मैं हर आवाज़ पर कान धरे था। मैंने भारी शरीरों के दबाव, कंकड़ियों की खड़खड़ाहट सुनी और एक चिड़िया की आवाज़ आई। फिर मैंने तार काटे जाने की पहली आवाज़ सुनी। मुझे ऐसा लगा मानों वह बम फटने की आवाज़ हो।

एक दूसरी चिड़िया की आवाज़ ने रात की चुप्पी तोड़ी, पर इस बार यह चिड़िया की आवाज़ न थी, बल्कि यह इशारा था जिसे सब समझते थे। यह हमारे उत्तर के चौकीदार की चेतावनी थी कि ख़तरा क़रीब है। ठीक उसी समय हमें घड़घड़ाहट की आवाज़

सुनाई दी जो हमारी ओर आ रही थी। इतने में सर्च लाइट की रोशनी से वायुमण्डल चमक उठा। हम सबने तुरन्त ही अपने को पृथ्वी पर डाल दिया, केवल वे व्यक्ति रह गये जो तार काटने में व्यस्त थे और जो इस काम को बड़ी ही तेज़ी से किये चले जा रहे थे। उन्हें छिपने की इतनी परवाह नहीं थी जितनी बन्दूक के कुन्दों और कैंचियों से बिजली जैसी तेज़ी से तार काटने की। कुछ सिकेंड के बाद हमारे चौकीदार ने गोली चला दी। ज़ाहिर है किसी सैनिक गाड़ी ने उसको देख लिया था फिर सर्च लाइट से वातावरण चमक उठा और मशीनगनों से गोलियों की बौछार शुरू हो गई। घड़घड़ाहट बहुत तेज़ हो गई थी। हम सर्च लाइट की रोशनी में ज़मीन पर लेटे हुये थे। गोलियां हमारे सिरों पर से होकर गुज़र रही थीं, दूसरे शब्दों में निशाना कुछ ज़्यादा दुरुस्त नहीं था। हमने भी पेट के बल लेटे हुये उत्तर में गोलियां चला दीं।

"सर्च लाइट, सर्च लाइट, गोली चलाओ," एक साथी ने चीख कर कहा।

रोशनी बन्द हो गई। मेरा विचार है कि शायद हमारे दक्ष निशाने बाज़ों की एक गोली शीशे पर लगी और वह चकना चूर हो गया। गाड़ी तुरन्त रुक गयी, पर गोली अंधेरे में अंधाधुंध चलती रहीं। ठीक उसी समय किसी ने चीख कर कहा कि तार काट दिये गये। अतएव हमलोग तेज़ी के साथ उस ओर लपके और एक-एक करके उसमें से निकलने लगे। जगह बहुत तंग थी, इसलिए हमारे कपड़े भी फटे और हम भी घायल हुये। इसके बाद हमने चाप सुनी और हमारे रक्षकों ने इस छेद के क़रीब अपने को ज़मीन पर डाल दिया। शायद इटली वालों ने यह पसन्द नहीं किया कि वे अपनी गाड़ियों से उतरकर हमारे सामने आकर हम से लड़ें।

तात्पर्य यह कि अब हम मिस्री राज्य में थे या यों कहना चाहिए

कि सीमा के दूसरी ओर से गोलियों क़ी वर्षा होती रही और हम मिस्री सीमा की ओर भागते रहे। सुबह होने से पहले ही हम काफ़ी दूरी तक मिस्री सीमा के भीतर आ गये थे और ख़तरे से निकल आये थे। हमारे २० आदमी मरे और चार मामूली घायल हुये।

"अल्लाह हम पर दया करे।" एक घायल मुजाहिद ने कहा, "हम कभी-कभी यह तार पार करते समय अपने आधे साथियों से हाथ धो बैठते हैं। पर कोई अपने समय से पहले थोड़े ही मर सकता है। जब अल्लाह को मंज़ूर होता है तभी उसकी मौत क़रीब आती है। क्या अल्लाह ने यह नहीं कहा है–

"और उन लोगों को मुर्दा न कहो, जो अल्लाह की राह में जिहाद करते हैं, बल्कि वे ज़िन्दा हैं, पर इसका एहसास नहीं करते।"

दो सप्ताह के बाद मैं और ज़ैद मरसी मतरूह और स्कन्दरिया के बन्दरगाहों से सईद, फिर नाव से मदीना मुनव्वरा तक पहुंचे। यह जोखिम भरी यात्रा कोई दो माह तक रही। और लोगों को हिजाज़ में हमारी ग़ैर-हाज़िरी का विचार तक नहीं आया।

अब मैं सैयद मुहम्मद ज़वी के साथ मदीना की सन्नोसी ख़ानक़ाह में दाख़िल हो रहा था, उस समय मौत और उसकी आवाज़ों ने मुझे घेर लिया, मैंने महसूस किया कि मैं सनोबरी सदा बाहर झाड़ियों के वनों की सुगन्ध सूंघ रहा हूं। मेरे सिर के ऊपर से गोलियां गुज़र रही हैं और मेरा मन शिथिल हो रहा है। इसी प्रकार बरक़ा में मेरी इस जोखिम भरी यात्रा की याद धुंधली हो गयी, पर उसकी दर्द और कसक अब तक मन में बाक़ी है।

अब मैं फिर सन्नोसी आन्दोलन के नेता व अगुआ के सामने खड़ा हुआ उस बूढ़े मुजाहिद के चेहरे को ध्यान से देख रहा था। इस बार भी मुझे उनका हाथ चूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह हाथ

जो एक लम्बी मुद्दत तक तलवार उठाये हुये था, पर अब उसमें इसकी शक्ति बाक़ी नहीं रही थी।

"अल्लाह तुम्हें बरकत दे मेरे बेटे! हमारी पहली भेंट को एक वर्ष हो रहा है। इस वर्ष के भीतर-भीतर हमारी सारी आशाओं का अन्त हो गया, पर हर हाल में अल्लाह का शुक्र है।"

सच तो यह है कि यह वर्ष मुख्य रूप से सैयद अहमद के लिए चिन्ताओं और दुर्घटनाओं से भरा हुआ था, उनके चेहरे पर पहले से कहीं अधिक झुर्रियां नज़र आ रही थीं। उनकी आवाज़ भी पहले से पस्त थी।

आज यह बूढ़ा शेर क़ालीन पर सिमटा हुआ बैठा था। ऐसा जान पड़ता था मानो वह गर्मी प्राप्त करने के लिए अपनी इबा में लिपटे हों उनकी निगाहें शून्य में घूर रही थीं।

उन्होंने फुसफुसाने के अन्दाज़ में कहा:—

"अगर हम उमर मुख़्तार को बचाने में सफल हो जाते। अगर हम उनको मिस्र भाग आने पर तैयार कर लेते तो शायद .... हमें कुछ समय मिल जाता.......!"

मैंने उनको तसल्ली देते हुए कहा:—

"कोई व्यक्ति श्री उमर को नहीं बचा सकता था। वह स्वयं ही बचना नहीं चाहते थे। वह असफलता पर मौत को अधिक पसन्द करते थे। जब मैंने उनको विदा किया, उस समय उनका यही हाल था।"

सैयद अहमद ने अपना सिर झुका लिया और कहने लगे—

"हां, मेरा भी यही विचार है, मेरा भी यही अन्दाज़ा है। पर मैंने समय बीतने के बाद सोचा। कभी-कभी मुझे ऐसा अहसास होता है कि आज से १७ साल पहले इस्तम्बोल की पुकार पर साथ

देकर मैंने ग़लती की थी। क्या वह हमारे अन्त का आरम्भ न था, न केवल उमर के लिए बल्कि तमाम सन्नोसियों के लिए???"

मैंने उनके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। इसलिए कि मेरा विचार था कि सैयद अहमद का अंग्रेज़ों से अनावश्यक लड़ाई लड़ने का निर्णय, वह सबसे बड़ी घातक ग़लती थी, जो उन्होंने की।

सैयद अहमद ने बात जारी रखते हुये कहा—

"पर इस स्थिति में जबकि मुसलमानों का ख़लीफ़ा सहायता का इच्छुक हो मैं इसके अलावा और कर ही क्या सकता था। क्या मैं सत्य पर नहीं था या मैं पागल हो गया था? पर अल्लाह के अलावा कौन जानता है कि एक व्यक्ति सत्य पर हैं या पागल है, जबकि उसने अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ पर काम किया हो।"

सच तो यह है कि कौन कह सकता है।

सन्नोसी नेता का सिर कष्टप्रद पीणा के साथ दाहिने-बायें झुकने लगा। उनकी आंखें, उनके झुके हुये और शान्त पपोटों में छिप गयी थीं और यकायकी मुझे विश्वास-सा हो गया कि अब वे कभी आशा-ज्योति से जगमगा न सकेंगी।[१]

---

१ सैयद अहमद सन्नोसी का सन् १९३६ में मदीना में देहावसान हो गया